ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

पचासवाँ अध्याय

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भरतवंशशिरोमणि परीक्षित्! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। पतिकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे अपने पिताकी राजधानीमें चली गयीं॥ १॥ उन दोनोंका पिता था मगधराज जरासन्ध। उससे उन्होंने बड़े दुःखके साथ अपने विधवा होनेके कारणोंका वर्णन किया॥ २॥ परीक्षित्! यह अप्रिय समाचार सुनकर पहले तो जरासन्धको बड़ा शोक हुआ, परन्तु पीछे वह क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने यह निश्चय करके कि मैं पृथ्वीपर एक भी यदुवंशी नहीं रहने दूँगा, युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की॥ ३॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया॥ ४॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा—जरासन्धकी सेना क्या है, उमड़ता हुआ समुद्र है। उन्होंने यह भी देखा कि उसने चारों ओरसे हमारी राजधानी घेर ली है और हमारे स्वजन तथा पुरवासी भयभीत हो रहे हैं॥ ५॥ भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्यका-सा वेष धारण किये हुए हैं। अब उन्होंने विचार किया कि मेरे अवतारका क्या प्रयोजन है और इस समय इस स्थानपर मुझे क्या करना चाहिये;॥ ६॥ उन्होंने सोचा, यह बड़ा अच्छा हुआ कि मगधराज जरासन्धने अपने अधीनस्थ नरपतियोंकी पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथियोंसे युक्त कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी कर ली है। यह सब तो पृथ्वीका भार ही जुटकर मेरे पास आ पहुँचा है। मैं इसका नाश करूँगा। परन्तु अभी मगधराज जरासन्धको नहीं मारना चाहिये; क्योंकि वह जीवित रहेगा तो फिरसे असुरोंकी बहुत-सी सेना इकट्ठी कर लायेगा॥ ७-८॥ मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका बोझ हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार॥ ९॥ समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ॥ १०॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए दो रथ आ पहुँचे। उनमें युद्धकी सारी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं और दो सारथि उन्हें हाँक रहे थे॥ ११॥ इसी समय भगवान्‌के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये। उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—॥ १२॥ 'भाईजी! आप बड़े शक्तिशाली हैं। इस समय जो यदुवंशी आपको ही अपना स्वामी और रक्षक मानते हैं, जो आपसे ही सनाथ हैं, उनपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। देखिये, यह आपका रथ है और आपके प्यारे आयुध हल-मूसल भी आ पहुँचे हैं॥ १३॥ अब आप इस रथपर सवार होकर शत्रु-सेनाका संहार कीजिये और अपने स्वजनोंको इस विपत्तिसे बचाइये। भगवन्! साधुओंका कल्याण करनेके लिये ही हम दोनोंने अवतार ग्रहण किया है॥ १४॥ अतः अब आप यह तेईस अक्षौहिणी सेना, पृथ्वीका यह विपुल भार नष्ट

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

पचासवाँ अध्याय

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भरतवंशशिरोमणि परीक्षित्! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। पतिकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे अपने पिताकी राजधानीमें चली गयीं॥ १॥ उन दोनोंका पिता था मगधराज जरासन्ध। उससे उन्होंने बड़े दुःखके साथ अपने विधवा होनेके कारणोंका वर्णन किया॥ २॥ परीक्षित्! यह अप्रिय समाचार सुनकर पहले तो जरासन्धको बड़ा शोक हुआ, परन्तु पीछे वह क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने यह निश्चय करके कि मैं पृथ्वीपर एक भी यदुवंशी नहीं रहने दूँगा, युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की॥ ३॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया॥ ४॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा—जरासन्धकी सेना क्या है, उमड़ता हुआ समुद्र है। उन्होंने यह भी देखा कि उसने चारों ओरसे हमारी राजधानी घेर ली है और हमारे स्वजन तथा पुरवासी भयभीत हो रहे हैं॥ ५॥ भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्यका-सा वेष धारण किये हुए हैं। अब उन्होंने विचार किया कि मेरे अवतारका क्या प्रयोजन है और इस समय इस स्थानपर मुझे क्या करना चाहिये;॥ ६॥ उन्होंने सोचा, यह बड़ा अच्छा हुआ कि मगधराज जरासन्धने अपने अधीनस्थ नरपतियोंकी पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथियोंसे युक्त कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी कर ली है। यह सब तो पृथ्वीका भार ही जुटकर मेरे पास आ पहुँचा है। मैं इसका नाश करूँगा। परन्तु अभी मगधराज जरासन्धको नहीं मारना चाहिये; क्योंकि वह जीवित रहेगा तो फिरसे असुरोंकी बहुत-सी सेना इकट्ठी कर लायेगा॥ ७-८॥ मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका बोझ हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार॥ ९॥ समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ॥ १०॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए दो रथ आ पहुँचे। उनमें युद्धकी सारी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं और दो सारथि उन्हें हाँक रहे थे॥ ११॥ इसी समय भगवान्‌के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये। उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—॥ १२॥ 'भाईजी! आप बड़े शक्तिशाली हैं। इस समय जो यदुवंशी आपको ही अपना स्वामी और रक्षक मानते हैं, जो आपसे ही सनाथ हैं, उनपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। देखिये, यह आपका रथ है और आपके प्यारे आयुध हल-मूसल भी आ पहुँचे हैं॥ १३॥ अब आप इस रथपर सवार होकर शत्रु-सेनाका संहार कीजिये और अपने स्वजनोंको इस विपत्तिसे बचाइये। भगवन्! साधुओंका कल्याण करनेके लिये ही हम दोनोंने अवतार ग्रहण किया है॥ १४॥ अतः अब आप यह तेईस अक्षौहिणी सेना, पृथ्वीका यह विपुल भार नष्ट

कीजिये।' भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने यह सलाह करके कवच धारण किये और रथपर सवार होकर वे मथुरासे निकले। उस समय दोनों भाई अपने-अपने आयुध लिये हुए थे और छोटी-सी सेना उनके साथ-साथ चल रही थी। श्रीकृष्णका रथ हाँक रहा था दारुक। पुरीसे बाहर निकलकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया॥ १५-१६॥ उनके शङ्खकी भयङ्कर ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंका हृदय डरके मारे थर्रा उठा। उन्हें देखकर मगधराज जरासन्धने कहा—'पुरुषाधम कृष्ण! तू तो अभी निरा बच्चा है। अकेले तेरे साथ लड़नेमें मुझे लाज लग रही है। इतने दिनोंतक तू न जाने कहाँ-कहाँ छिपा फिरता था। मन्द! तू तो अपने मामाका हत्यारा है। इसलिये मैं तेरे साथ नहीं लड़ सकता। जा, मेरे सामनेसे भाग जा॥ १७-१८॥ बलराम! यदि तेरे चित्तमें यह श्रद्धा हो कि युद्धमें मरनेपर स्वर्ग मिलता है तो तू आ, हिम्मत बाँधकर मुझसे लड़। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए शरीरको यहाँ छोड़कर स्वर्गमें जा, अथवा यदि तुझमें शक्ति हो तो मुझे ही मार डाल'॥ १९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मगधराज! जो शूरवीर होते हैं, वे तुम्हारी तरह डींग नहीं हाँकते, वे तो अपना बल-पौरुष ही दिखलाते हैं। देखो, अब तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है। तुम वैसे ही अकबक कर रहे हो, जैसे मरनेके समय कोई सन्निपातका रोगी करे। बक लो, मैं तुम्हारी बातपर ध्यान नहीं देता॥ २०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे वायु बादलोंसे सूर्यको और धूएँसे आगको ढक लेती है, किन्तु वास्तवमें वे ढकते नहीं, उनका प्रकाश फिर फैलता ही है; वैसे ही मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आकर अपनी बहुत बड़ी बलवान् और अपार सेनाके द्वारा उन्हें चारों ओरसे घेर लिया—यहाँतक कि उनकी सेना, रथ, ध्वजा, घोड़ों और सारथियोंका दीखना भी बंद हो गया॥ २१॥ मथुरापुरीकी स्त्रियाँ अपने महलोंकी अटारियों, छज्जों और फाटकोंपर चढ़कर युद्धका कौतुक देख रही थीं। जब उन्होंने देखा कि युद्ध भूमिमें भगवान् श्रीकृष्णकी गरुड़चिह्नसे चिह्नित और बलरामजीकी तालचिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले रथ नहीं दीख रहे हैं, तब वे शोकके आवेगसे मूर्च्छित हो गयीं॥ २२॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि शत्रु-सेनाके वीर हमारी सेनापर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, मानो बादल पानीकी अनगिनत बूँदें बरसा रहे हों और हमारी सेना उससे अत्यन्त पीड़ित, व्यथित हो रही है; तब उन्होंने अपने देवता और असुर-दोनोंसे सम्मानित शार्ङ्गधनुषका टङ्कार किया॥ २३॥ इसके बाद वे तरकसमेंसे बाण निकालने, उन्हें धनुषपर चढ़ाने और धनुषकी डोरी खींचकर झुंड-के-झुंड बाण छोड़ने लगे। उस समय उनका वह धनुष इतनी फुर्तीसे घूम रहा था, मानो कोई बड़े वेगसे अलातचक्र (लुकारी) घुमा रहा हो। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धकी चतुरङ्गिणी—हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसेनाका संहार करने लगे॥ २४॥ इससे बहुत-से हाथियोंके सिर फट गये और वे मर-मरकर गिरने लगे। बाणोंकी बौछारसे अनेकों घोड़ोंके सिर धड़से अलग हो गये। घोड़े, ध्वजा, सारथि और रथियोंके नष्ट हो जानेसे बहुतसे रथ बेकाम हो गये। पैदल सेनाकी बाँहें, जाँघ और सिर आदि अंग-प्रत्यङ्ग कट-कटकर गिर पड़े॥ २५॥ उस युद्धमें अपार तेजस्वी भगवान् बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे बहुत-से मतवाले शत्रुओंको मार-मारकर उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे निकले हुए खूनकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। कहीं मनुष्य कट रहे हैं तो कहीं हाथी और घोड़े छटपटा रहे हैं। उन नदियोंमें मनुष्योंकी भुजाएँ साँपके समान जान पड़तीं और सिर इस प्रकार मालूम पड़ते, मानो कछुओंकी भीड़ लग गयी हो। मरे हुए हाथी दीप-जैसे और घोड़े ग्राहोंके समान जान पड़ते। हाथ और जाँघें मछलियोंकी तरह, मनुष्योंके केश सेवारके समान, धनुष तरङ्गोंकी भाँति और अस्त्र-शस्त्र लता एवं तिनकोंके समान जान पड़ते। ढालें ऐसी मालूम पड़तीं, मानो भयानक भँवर हों। बहुमूल्य मणियाँ और आभूषण पत्थरके रोड़ों तथा कंकड़ोंके समान बहे जा रहे थे। उन नदियोंको देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरोंका आपसमें खूब उत्साह बढ़ रहा था॥ २६-२८॥ परीक्षित्! जरासन्धकी वह सेना समुद्रके समान दुर्गम, भयावह और बड़ी कठिनाईसे जीतनेयोग्य थी। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने थोड़े ही समयमें उसे नष्ट कर डाला। वे सारे जगत्के स्वामी हैं। उनके लिये एक सेनाका नाश कर देना केवल खिलवाड़

७०८ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५०
कीजिये।' भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने यह सलाह करके कवच धारण किये और रथपर सवार होकर वे मथुरासे निकले। उस समय दोनों भाई अपने-अपने आयुध लिये हुए थे और छोटी-सी सेना उनके साथ-साथ चल रही थी। श्रीकृष्णका रथ हाँक रहा था दारुक। पुरीसे बाहर निकलकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया॥ १५-१६॥ उनके शङ्खकी भयङ्कर ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंका हृदय डरके मारे थर्रा उठा। उन्हें देखकर मगधराज जरासन्धने कहा—'पुरुषाधम कृष्ण! तू तो अभी निरा बच्चा है। अकेले तेरे साथ लड़नेमें मुझे लाज लग रही है। इतने दिनोंतक तू न जाने कहाँ-कहाँ छिपा फिरता था। मन्द! तू तो अपने मामाका हत्यारा है। इसलिये मैं तेरे साथ नहीं लड़ सकता। जा, मेरे सामनेसे भाग जा॥ १७-१८॥ बलराम! यदि तेरे चित्तमें यह श्रद्धा हो कि युद्धमें मरनेपर स्वर्ग मिलता है तो तू आ, हिम्मत बाँधकर मुझसे लड़। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए शरीरको यहाँ छोड़कर स्वर्गमें जा, अथवा यदि तुझमें शक्ति हो तो मुझे ही मार डाल'॥ १९॥
भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मगधराज! जो शूरवीर होते हैं, वे तुम्हारी तरह डींग नहीं हाँकते, वे तो अपना बल-पौरुष ही दिखलाते हैं। देखो, अब तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है। तुम वैसे ही अकबक कर रहे हो, जैसे मरनेके समय कोई सन्निपातका रोगी करे। बक लो, मैं तुम्हारी बातपर ध्यान नहीं देता॥ २०॥
श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे वायु बादलोंसे सूर्यको और धूएँसे आगको ढक लेती है, किन्तु वास्तवमें वे ढकते नहीं, उनका प्रकाश फिर फैलता ही है; वैसे ही मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आकर अपनी बहुत बड़ी बलवान् और अपार सेनाके द्वारा उन्हें चारों ओरसे घेर लिया—यहाँतक कि उनकी सेना, रथ, ध्वजा, घोड़ों और सारथियोंका दीखना भी बंद हो गया॥ २१॥ मथुरापुरीकी स्त्रियाँ अपने महलोंकी अटारियों, छज्जों और फाटकोंपर चढ़कर युद्धका कौतुक देख रही थीं। जब उन्होंने देखा कि युद्ध भूमिमें भगवान् श्रीकृष्णकी गरुड़चिह्नसे चिह्नित और बलरामजीकी तालचिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले रथ नहीं दीख रहे हैं, तब वे शोकके आवेगसे मूर्च्छित हो गयीं॥ २२॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि शत्रु-सेनाके वीर हमारी सेनापर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, मानो बादल पानीकी अनगिनत बूँदें बरसा रहे हों और हमारी सेना उससे अत्यन्त पीड़ित, व्यथित हो रही है; तब उन्होंने अपने देवता और असुर-दोनोंसे सम्मानित शार्ङ्गधनुषका टङ्कार किया॥ २३॥ इसके बाद वे तरकसमेंसे बाण निकालने, उन्हें धनुषपर चढ़ाने और धनुषकी डोरी खींचकर झुंड-के-झुंड बाण छोड़ने लगे। उस समय उनका वह धनुष इतनी फुर्तीसे घूम रहा था, मानो कोई बड़े वेगसे अलातचक्र (लुकारी) घुमा रहा हो। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धकी चतुरङ्गिणी—हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसेनाका संहार करने लगे॥ २४॥ इससे बहुत-से हाथियोंके सिर फट गये और वे मर-मरकर गिरने लगे। बाणोंकी बौछारसे अनेकों घोड़ोंके सिर धड़से अलग हो गये। घोड़े, ध्वजा, सारथि और रथियोंके नष्ट हो जानेसे बहुतसे रथ बेकाम हो गये। पैदल सेनाकी बाँहें, जाँघ और सिर आदि अंग-प्रत्यङ्ग कट-कटकर गिर पड़े॥ २५॥ उस युद्धमें अपार तेजस्वी भगवान् बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे बहुत-से मतवाले शत्रुओंको मार-मारकर उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे निकले हुए खूनकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। कहीं मनुष्य कट रहे हैं तो कहीं हाथी और घोड़े छटपटा रहे हैं। उन नदियोंमें मनुष्योंकी भुजाएँ साँपके समान जान पड़तीं और सिर इस प्रकार मालूम पड़ते, मानो कछुओंकी भीड़ लग गयी हो। मरे हुए हाथी दीप-जैसे और घोड़े ग्राहोंके समान जान पड़ते। हाथ और जाँघें मछलियोंकी तरह, मनुष्योंके केश सेवारके समान, धनुष तरङ्गोंकी भाँति और अस्त्र-शस्त्र लता एवं तिनकोंके समान जान पड़ते। ढालें ऐसी मालूम पड़तीं, मानो भयानक भँवर हों। बहुमूल्य मणियाँ और आभूषण पत्थरके रोड़ों तथा कंकड़ोंके समान बहे जा रहे थे। उन नदियोंको देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरोंका आपसमें खूब उत्साह बढ़ रहा था॥ २६-२८॥ परीक्षित्! जरासन्धकी वह सेना समुद्रके समान दुर्गम, भयावह और बड़ी कठिनाईसे जीतनेयोग्य थी। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने थोड़े ही समयमें उसे नष्ट कर डाला। वे सारे जगत्के स्वामी हैं। उनके लिये एक सेनाका नाश कर देना केवल खिलवाड़

ही तो है ॥ २९ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के गुण अनन्त हैं। वे खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि वे शत्रुओंकी सेनाका इस प्रकार बात-की-बातमें सत्यानाश कर दें। तथापि जब वे मनुष्यका-सा वेष धारण करके मनुष्यकी-सी लीला करते हैं, तब उसका भी वर्णन किया ही जाता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेना मारी गयी। रथ भी टूट गया। शरीरमें केवल प्राण बाकी रहे। तब भगवान् श्रीबलरामजीने जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ लेता है, वैसे ही बलपूर्वक महाबली जरासन्धको पकड़ लिया ॥ ३१ ॥ जरासन्धने पहले बहुतसे विपक्षी नरपतियोंका वध किया था, परन्तु आज उसे बलरामजी वरुणकी फाँसी और मनुष्योंके फंदेसे बाँध रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि यह छोड़ दिया जायगा तो और भी सेना इकट्ठी करके लायेगा तथा हम सहज ही पृथ्वीका भार उतार सकेंगे, बलरामजीको रोक दिया ॥ ३२ ॥ बड़े-बड़े शूरवीर जरासन्धका सम्मान करते थे। इसलिये उसे इस बातपर बड़ी लज्जा मालूम हुई कि मुझे श्रीकृष्ण और बलरामने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है। अब उसने तपस्या करनेका निश्चय किया। परन्तु रास्तेमें उसके साथी नरपतियोंने बहुत समझाया कि 'राजन्! यदुवंशियोंमें क्या रक्खा है? वे आपको बिल्कुल ही पराजित नहीं कर सकते थे। आपको प्रारब्धवश ही नीचा देखना पड़ा है।' उन लोगोंने भगवान्‌की इच्छा, फिर विजय प्राप्त करनेकी आशा आदि बतलाकर तथा लौकिक दृष्टान्त एवं युक्तियाँ दे-देकर यह बात समझा दी कि आपको तपस्या नहीं करनी चाहिये ॥ ३३-३४ ॥ परीक्षित्! उस समय मगधराज जरासन्धकी सारी सेना मर चुकी थी। भगवान् बलरामजीने उपेक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था, इससे वह बहुत उदास होकर अपने देश मगधको चला गया ॥ ३५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें किसीका बाल भी बाँका न हुआ और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनापर, जो समुद्रके समान थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली। उस समय बड़े-बड़े देवता उनपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा और उनके इस महान् कार्यका अनुमोदन—प्रशंसा कर रहे थे ॥ ३६ ॥ जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयरहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण आकर उनमें मिल गये। सूत, मागध और वन्दीजन उनकी विजयके गीत गा रहे थे ॥ ३७ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया, उस समय वहाँ शङ्ख, नगारे, भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे थे ॥ ३८ ॥ मथुराकी एक-एक सड़क और गलीमें छिड़काव कर दिया गया था। चारों ओर हँसते-खेलते नागरिकोंकी चहल-पहल थी। सारा नगर छोटी-छोटी झंडियों और बड़ी-बड़ी विजय-पताकाओंसे सजा दिया गया था। ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि गूँज रही थी और सब ओर आनन्दोत्सवके सूचक बंदनवार बाँध दिये गये थे ॥ ३९ ॥ जिस समय श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय नगरकी नारियाँ प्रेम और उत्कण्ठासे भरे हुए नेत्रोंसे उन्हें स्नेहपूर्वक निहार रही थीं और फूलोंके हार, दही, अक्षत और जौ आदिके अङ्कुरोंकी उनके ऊपर वर्षा कर रही थीं ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिसे अपार धन और वीरोंके आभूषण ले आये थे। वह सब उन्होंने यदुवंशियोंके राजा उग्रसेनके पास भेज दिया ॥ ४१ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंसे युद्ध किया ॥ ४२ ॥ किन्तु यादवोंने भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिसे हर बार उसकी सारी सेना नष्ट कर दी। जब सारी सेना नष्ट हो जाती, तब यदुवंशियोंके उपेक्षापूर्वक छोड़ देनेपर जरासन्ध अपनी राजधानीमें लौट जाता ॥ ४३ ॥ जिस समय अठारहवाँ संग्राम छिड़ने ही वाला था, उसी समय नारदजीका भेजा हुआ वीर कालयवन दिखायी पड़ा ॥ ४४ ॥ युद्धमें कालयवनके सामने खड़ा होनेवाला वीर संसारमें दूसरा कोई न था। उसने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे ही-जैसे बलवान् हैं और हमारा सामना कर सकते हैं, तब तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लेकर उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४५ ॥

कालयवनकी यह असमय चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ मिलकर विचार किया—

अ० ५०] * दशम स्कन्ध * ७०९

ही तो है ॥ २९ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के गुण अनन्त हैं। वे खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि वे शत्रुओंकी सेनाका इस प्रकार बात-की-बातमें सत्यानाश कर दें। तथापि जब वे मनुष्यका-सा वेष धारण करके मनुष्यकी-सी लीला करते हैं, तब उसका भी वर्णन किया ही जाता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेना मारी गयी। रथ भी टूट गया। शरीरमें केवल प्राण बाकी रहे। तब भगवान् श्रीबलरामजीने जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ लेता है, वैसे ही बलपूर्वक महाबली जरासन्धको पकड़ लिया ॥ ३१ ॥ जरासन्धने पहले बहुतसे विपक्षी नरपतियोंका वध किया था, परन्तु आज उसे बलरामजी वरुणकी फाँसी और मनुष्योंके फंदेसे बाँध रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि यह छोड़ दिया जायगा तो और भी सेना इकट्ठी करके लायेगा तथा हम सहज ही पृथ्वीका भार उतार सकेंगे, बलरामजीको रोक दिया ॥ ३२ ॥ बड़े-बड़े शूरवीर जरासन्धका सम्मान करते थे। इसलिये उसे इस बातपर बड़ी लज्जा मालूम हुई कि मुझे श्रीकृष्ण और बलरामने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है। अब उसने तपस्या करनेका निश्चय किया। परन्तु रास्तेमें उसके साथी नरपतियोंने बहुत समझाया कि 'राजन्! यदुवंशियोंमें क्या रक्खा है? वे आपको बिल्कुल ही पराजित नहीं कर सकते थे। आपको प्रारब्धवश ही नीचा देखना पड़ा है।' उन लोगोंने भगवान्‌की इच्छा, फिर विजय प्राप्त करनेकी आशा आदि बतलाकर तथा लौकिक दृष्टान्त एवं युक्तियाँ दे-देकर यह बात समझा दी कि आपको तपस्या नहीं करनी चाहिये ॥ ३३-३४ ॥ परीक्षित्! उस समय मगधराज जरासन्धकी सारी सेना मर चुकी थी। भगवान् बलरामजीने उपेक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था, इससे वह बहुत उदास होकर अपने देश मगधको चला गया ॥ ३५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें किसीका बाल भी बाँका न हुआ और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनापर, जो समुद्रके समान थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली। उस समय बड़े-बड़े देवता उनपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा और उनके इस महान् कार्यका अनुमोदन—प्रशंसा कर रहे थे ॥ ३६ ॥ जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयरहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण आकर उनमें मिल गये। सूत, मागध और वन्दीजन उनकी विजयके गीत गा रहे थे ॥ ३७ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया, उस समय वहाँ शङ्ख, नगारे, भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे थे ॥ ३८ ॥ मथुराकी एक-एक सड़क और गलीमें छिड़काव कर दिया गया था। चारों ओर हँसते-खेलते नागरिकोंकी चहल-पहल थी। सारा नगर छोटी-छोटी झंडियों और बड़ी-बड़ी विजय-पताकाओंसे सजा दिया गया था। ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि गूँज रही थी और सब ओर आनन्दोत्सवके सूचक बंदनवार बाँध दिये गये थे ॥ ३९ ॥ जिस समय श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय नगरकी नारियाँ प्रेम और उत्कण्ठासे भरे हुए नेत्रोंसे उन्हें स्नेहपूर्वक निहार रही थीं और फूलोंके हार, दही, अक्षत और जौ आदिके अङ्कुरोंकी उनके ऊपर वर्षा कर रही थीं ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिसे अपार धन और वीरोंके आभूषण ले आये थे। वह सब उन्होंने यदुवंशियोंके राजा उग्रसेनके पास भेज दिया ॥ ४१ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंसे युद्ध किया ॥ ४२ ॥ किन्तु यादवोंने भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिसे हर बार उसकी सारी सेना नष्ट कर दी। जब सारी सेना नष्ट हो जाती, तब यदुवंशियोंके उपेक्षापूर्वक छोड़ देनेपर जरासन्ध अपनी राजधानीमें लौट जाता ॥ ४३ ॥ जिस समय अठारहवाँ संग्राम छिड़ने ही वाला था, उसी समय नारदजीका भेजा हुआ वीर कालयवन दिखायी पड़ा ॥ ४४ ॥ युद्धमें कालयवनके सामने खड़ा होनेवाला वीर संसारमें दूसरा कोई न था। उसने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे ही-जैसे बलवान् हैं और हमारा सामना कर सकते हैं, तब तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लेकर उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४५ ॥

कालयवनकी यह असमय चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ मिलकर विचार किया—

'अहो! इस समय तो यदुवंशियोंपर जरासन्ध और कालयवन—ये दो-दो विपत्तियाँ एक साथ ही मँडरा रही हैं॥ ४६॥ आज इस परम बलशाली यवनने हमें आकर घेर लिया है और जरासन्ध भी आज, कल या परसोंमें आ ही जायगा॥ ४७॥ यदि हम दोनों भाई इसके साथ लड़नेमें लग गये और उसी समय जरासन्ध आ पहुँचा, तो वह हमारे बन्धुओंको मार डालेगा या तो कैद करके अपने नगरमें ले जायगा; क्योंकि वह बहुत बलवान् है॥ ४८॥ इसलिये आज हमलोग एक ऐसा दुर्ग—ऐसा किला बनायेंगे, जिसमें किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन होगा। अपने स्वजन-सम्बन्धियोंको उसी किलेमें पहुँचाकर फिर इस यवनका वध करायेंगे'॥ ४९॥ बलरामजीसे इस प्रकार सलाह करके भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर एक ऐसा दुर्गम नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और उस नगरकी लंबाई-चौड़ाई अड़तालीस कोसकी थी॥ ५०॥ उस नगरकी एक-एक वस्तुमें विश्वकर्माका विज्ञान (वास्तुविज्ञान) और शिल्पकलाकी निपुणता प्रकट होती थी। उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियोंका यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था॥ ५१॥ वह नगर ऐसे सुन्दर-सुन्दर उद्यानों और विचित्र-विचित्र उपवनोंसे युक्त था, जिनमें देवताओंके वृक्ष और लताएँ लहलहाती रहती थीं। सोनेके इतने ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, जो आकाशसे बातें करते थे। स्फटिकमणिकी अटारियाँ और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बड़े ही सुन्दर लगते थे॥ ५२॥ अन्न रखनेके लिये चाँदी और पीतलके बहुत-से कोठे बने हुए थे। वहाँके महल सोनेके बने हुए थे और उनपर कामदार सोनेके कलश सजे हुए थे। उनके शिखर रत्नोंके थे तथा गच पन्नेकी बनी हुई बहुत भली मालूम होती थी॥ ५३॥ इसके अतिरिक्त उस नगरमें वास्तुदेवताके मन्दिर और छज्जे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर बने हुए थे। उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे और सबके बीचमें यदुवंशियोंके प्रधान उग्रसेनजी, वसुदेवजी, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णके महल जगमगा रहे थे॥ ५४॥ परीक्षित्! उस समय देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णके लिये पारिजात वृक्ष और सुधर्मा-सभाको भेज दिया। वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठे हुए मनुष्यको भूख-प्यास आदि मर्त्यलोकके धर्म नहीं छू पाते थे॥ ५५॥ वरुणजीने ऐसे बहुतसे श्वेत घोड़े भेज दिये, जिनका एक-एक कान श्यामवर्णका था, और जिनकी चाल मनके समान तेज थी। धनपति कुबेरजीने अपनी आठों निधियाँ भेज दीं और दूसरे लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियाँ भगवान्‌के पास भेज दीं॥ ५६॥ परीक्षित्! सभी लोकपालोंको भगवान् श्रीकृष्णने ही उनके अधिकारके निर्वाहके लिये शक्तियाँ और सिद्धियाँ दी हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे, तब सभी सिद्धियाँ उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दीं॥ ५७॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने समस्त स्वजन-सम्बन्धियोंको अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके द्वारा द्वारकामें पहुँचा दिया। शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको मथुरापुरीमें रख दिया और उनसे सलाह लेकर गलेमें कमलोंकी माला पहने, बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये स्वयं नगरके बड़े दरवाजेसे बाहर निकल आये॥ ५८॥

इक्यावनवाँ अध्याय

कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरके मुख्य द्वारसे निकले, उस समय ऐसा मालूम पड़ा मानो पूर्व दिशासे चन्द्रोदय हो रहा हो। उनका श्यामल शरीर अत्यन्त ही दर्शनीय था, उसपर रेशमी पीताम्बरकी छटा निराली ही थी; वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें श्रीवत्स-चिह्न शोभा पा रहा था और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी। चार भुजाएँ थीं, जो लंबी-लंबी और कुछ मोटी-मोटी थीं।

७१० * श्रीमद्भागवत * [अ० ५१

'अहो! इस समय तो यदुवंशियोंपर जरासन्ध और कालयवन—ये दो-दो विपत्तियाँ एक साथ ही मँडरा रही हैं॥ ४६॥ आज इस परम बलशाली यवनने हमें आकर घेर लिया है और जरासन्ध भी आज, कल या परसोंमें आ ही जायगा॥ ४७॥ यदि हम दोनों भाई इसके साथ लड़नेमें लग गये और उसी समय जरासन्ध आ पहुँचा, तो वह हमारे बन्धुओंको मार डालेगा या तो कैद करके अपने नगरमें ले जायगा; क्योंकि वह बहुत बलवान् है॥ ४८॥ इसलिये आज हमलोग एक ऐसा दुर्ग—ऐसा किला बनायेंगे, जिसमें किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन होगा। अपने स्वजन-सम्बन्धियोंको उसी किलेमें पहुँचाकर फिर इस यवनका वध करायेंगे'॥ ४९॥ बलरामजीसे इस प्रकार सलाह करके भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर एक ऐसा दुर्गम नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और उस नगरकी लंबाई-चौड़ाई अड़तालीस कोसकी थी॥ ५०॥ उस नगरकी एक-एक वस्तुमें विश्वकर्माका विज्ञान (वास्तुविज्ञान) और शिल्पकलाकी निपुणता प्रकट होती थी। उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियोंका यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था॥ ५१॥ वह नगर ऐसे सुन्दर-सुन्दर उद्यानों और विचित्र-विचित्र उपवनोंसे युक्त था, जिनमें देवताओंके वृक्ष और लताएँ लहलहाती रहती थीं। सोनेके इतने ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, जो आकाशसे बातें करते थे। स्फटिकमणिकी अटारियाँ और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बड़े ही सुन्दर लगते थे॥ ५२॥ अन्न रखनेके लिये चाँदी और पीतलके बहुत-से कोठे बने हुए थे। वहाँके महल सोनेके बने हुए थे और उनपर कामदार सोनेके कलश सजे हुए थे। उनके शिखर रत्नोंके थे तथा गच पन्नेकी बनी हुई बहुत भली मालूम होती थी॥ ५३॥ इसके अतिरिक्त उस नगरमें वास्तुदेवताके मन्दिर और छज्जे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर बने हुए थे। उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे और सबके बीचमें यदुवंशियोंके प्रधान उग्रसेनजी, वसुदेवजी, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णके महल जगमगा रहे थे॥ ५४॥ परीक्षित्! उस समय देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णके लिये पारिजात वृक्ष और सुधर्मा-सभाको भेज दिया। वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठे हुए मनुष्यको भूख-प्यास आदि मर्त्यलोकके धर्म नहीं छू पाते थे॥ ५५॥ वरुणजीने ऐसे बहुतसे श्वेत घोड़े भेज दिये, जिनका एक-एक कान श्यामवर्णका था, और जिनकी चाल मनके समान तेज थी। धनपति कुबेरजीने अपनी आठों निधियाँ भेज दीं और दूसरे लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियाँ भगवान्‌के पास भेज दीं॥ ५६॥ परीक्षित्! सभी लोकपालोंको भगवान् श्रीकृष्णने ही उनके अधिकारके निर्वाहके लिये शक्तियाँ और सिद्धियाँ दी हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे, तब सभी सिद्धियाँ उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दीं॥ ५७॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने समस्त स्वजन-सम्बन्धियोंको अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके द्वारा द्वारकामें पहुँचा दिया। शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको मथुरापुरीमें रख दिया और उनसे सलाह लेकर गलेमें कमलोंकी माला पहने, बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये स्वयं नगरके बड़े दरवाजेसे बाहर निकल आये॥ ५८॥

इक्यावनवाँ अध्याय

कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरके मुख्य द्वारसे निकले, उस समय ऐसा मालूम पड़ा मानो पूर्व दिशासे चन्द्रोदय हो रहा हो। उनका श्यामल शरीर अत्यन्त ही दर्शनीय था, उसपर रेशमी पीताम्बरकी छटा निराली ही थी; वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें श्रीवत्स-चिह्न शोभा पा रहा था और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी। चार भुजाएँ थीं, जो लंबी-लंबी और कुछ मोटी-मोटी थीं।

हालके खिले हुए कमलके समान कोमल और रतनारे नेत्र थे। मुखकमलपर राशि-राशि आनन्द खेल रहा था। कपोलोंकी छटा निराली ही थी। मन्द-मन्द मुसकान देखनेवालोंका मन चुराये लेती थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल झलक रहे थे। उन्हें देखकर कालयवनने निश्चय किया कि 'यही पुरुष वासुदेव है; क्योंकि नारदजीने जो-जो लक्षण बतलाये थे—वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, चार भुजाएँ, कमलके-से नेत्र, गलेमें वनमाला और सुन्दरताकी सीमा; वे सब इसमें मिल रहे हैं। इसलिये यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय यह बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके पैदल ही इस ओर चला आ रहा है, इसलिये मैं भी इसके साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके ही लड़ूँगा॥ १-५॥

ऐसा निश्चय करके जब कालयवन भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमिसे भाग चले और उन योगिदुर्लभ प्रभुको पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा॥ ६॥ रणछोड़ भगवान् लीला करते हुए भाग रहे थे; कालयवन पग-पगपर यही समझता था कि अब पकड़ा, तब पकड़ा। इस प्रकार भगवान् उसे बहुत दूर एक पहाड़की गुफामें ले गये॥ ७॥ कालयवन पीछेसे बार-बार आक्षेप करता कि 'अरे भाई! तुम परम यशस्वी यदुवंशमें पैदा हुए हो, तुम्हारा इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।' परन्तु अभी उसके अशुभ निःशेष नहीं हुए थे, इसलिये वह भगवान्‌को पानेमें समर्थ न हो सका॥ ८॥ उसके आक्षेप करते रहनेपर भी भगवान् उस पर्वतकी गुफामें घुस गये। उनके पीछे कालयवन भी घुसा। वहाँ उसने एक दूसरे ही मनुष्यको सोते हुए देखा॥ ९॥ उसे देखकर कालयवनने सोचा 'देखो तो सही, यह मुझे इस प्रकार इतनी दूर ले आया और अब इस तरह-मानो इसे कुछ पता ही न हो—साधुबाबा बनकर सो रहा है।' यह सोचकर उस मूढ़ने उसे कसकर एक लात मारी॥ १०॥ वह पुरुष वहाँ बहुत दिनोंसे सोया हुआ था। पैरकी ठोकर लगनेसे वह उठ पड़ा और धीरे-धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। इधर-उधर देखनेपर पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखायी दिया॥ ११॥ परीक्षित्! वह पुरुष इस प्रकार ठोकर मारकर जगाये जानेसे कुछ रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवनके शरीरमें आग पैदा हो गयी और वह क्षणभरमें जलकर राखका ढेर हो गया॥ १२॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! जिसके दृष्टिपातमात्रसे कालयवन जलकर भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था? किस वंशका था? उसमें कैसी शक्ति थी और वह किसका पुत्र था? आप कृपा करके यह भी बतलाइये कि वह पर्वतकी गुफामें जाकर क्यों सो रहा था?॥ १३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वे इक्ष्वाकुवंशी महाराजा मान्धाताके पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, सत्यप्रतिज्ञ, संग्रामविजयी और महापुरुष थे॥ १४॥ एक बार इन्द्रादि देवता असुरोंसे अत्यन्त भयभीत हो गये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की और उन्होंने बहुत दिनोंतक उनकी रक्षा की॥ १५॥ जब बहुत दिनोंके बाद देवताओंको सेनापतिके रूपमें स्वामिकार्तिकेय मिल गये, तब उन लोगोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हम लोगोंकी रक्षाके लिये बहुत श्रम और कष्ट उठाया है। अब आप विश्राम कीजिये॥ १६॥ वीरशिरोमणे! आपने हमारी रक्षाके लिये मनुष्यलोकका अपना अकण्टक राज्य छोड़ दिया और जीवनकी अभिलाषाएँ तथा भोगोंका भी परित्याग कर दिया॥ १७॥ अब आपके पुत्र, रानियाँ, बन्धु-बान्धव और अमात्य-मन्त्री तथा आपके समयकी प्रजामेंसे कोई नहीं रहा है। सब-के-सब कालके गालमें चले गये॥ १८॥ काल समस्त बलवानोंसे भी बलवान् है। वह स्वयं परम समर्थ अविनाशी और भगवत्स्वरूप है। जैसे ग्वाले पशुओंको अपने वशमें रखते हैं, वैसे ही वह खेल-खेलमें सारी प्रजाको अपने अधीन रखता है॥ १९॥ राजन्! आपका कल्याण हो। आपकी जो इच्छा हो हमसे माँग लीजिये। हम कैवल्य-मोक्षके अतिरिक्त आपको सब कुछ दे सकते हैं। क्योंकि कैवल्य-मोक्ष देनेकी सामर्थ्य तो केवल अविनाशी भगवान् विष्णुमें ही है॥ २०॥ परम यशस्वी राजा मुचुकुन्दने देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उनकी वन्दना की और बहुत थके होनेके कारण निद्राका ही

अ० ५१] * दशम स्कन्ध * ७११

हालके खिले हुए कमलके समान कोमल और रतनारे नेत्र थे। मुखकमलपर राशि-राशि आनन्द खेल रहा था। कपोलोंकी छटा निराली ही थी। मन्द-मन्द मुसकान देखनेवालोंका मन चुराये लेती थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल झलक रहे थे। उन्हें देखकर कालयवनने निश्चय किया कि 'यही पुरुष वासुदेव है; क्योंकि नारदजीने जो-जो लक्षण बतलाये थे—वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, चार भुजाएँ, कमलके-से नेत्र, गलेमें वनमाला और सुन्दरताकी सीमा; वे सब इसमें मिल रहे हैं। इसलिये यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय यह बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके पैदल ही इस ओर चला आ रहा है, इसलिये मैं भी इसके साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके ही लड़ूँगा॥ १-५॥

ऐसा निश्चय करके जब कालयवन भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमिसे भाग चले और उन योगिदुर्लभ प्रभुको पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा॥ ६॥ रणछोड़ भगवान् लीला करते हुए भाग रहे थे; कालयवन पग-पगपर यही समझता था कि अब पकड़ा, तब पकड़ा। इस प्रकार भगवान् उसे बहुत दूर एक पहाड़की गुफामें ले गये॥ ७॥ कालयवन पीछेसे बार-बार आक्षेप करता कि 'अरे भाई! तुम परम यशस्वी यदुवंशमें पैदा हुए हो, तुम्हारा इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।' परन्तु अभी उसके अशुभ निःशेष नहीं हुए थे, इसलिये वह भगवान्‌को पानेमें समर्थ न हो सका॥ ८॥ उसके आक्षेप करते रहनेपर भी भगवान् उस पर्वतकी गुफामें घुस गये। उनके पीछे कालयवन भी घुसा। वहाँ उसने एक दूसरे ही मनुष्यको सोते हुए देखा॥ ९॥ उसे देखकर कालयवनने सोचा 'देखो तो सही, यह मुझे इस प्रकार इतनी दूर ले आया और अब इस तरह-मानो इसे कुछ पता ही न हो—साधुबाबा बनकर सो रहा है।' यह सोचकर उस मूढ़ने उसे कसकर एक लात मारी॥ १०॥ वह पुरुष वहाँ बहुत दिनोंसे सोया हुआ था। पैरकी ठोकर लगनेसे वह उठ पड़ा और धीरे-धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। इधर-उधर देखनेपर पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखायी दिया॥ ११॥ परीक्षित्! वह पुरुष इस प्रकार ठोकर मारकर जगाये जानेसे कुछ रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवनके शरीरमें आग पैदा हो गयी और वह क्षणभरमें जलकर राखका ढेर हो गया॥ १२॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! जिसके दृष्टिपातमात्रसे कालयवन जलकर भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था? किस वंशका था? उसमें कैसी शक्ति थी और वह किसका पुत्र था? आप कृपा करके यह भी बतलाइये कि वह पर्वतकी गुफामें जाकर क्यों सो रहा था?॥ १३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वे इक्ष्वाकुवंशी महाराजा मान्धाताके पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, सत्यप्रतिज्ञ, संग्रामविजयी और महापुरुष थे॥ १४॥ एक बार इन्द्रादि देवता असुरोंसे अत्यन्त भयभीत हो गये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की और उन्होंने बहुत दिनोंतक उनकी रक्षा की॥ १५॥ जब बहुत दिनोंके बाद देवताओंको सेनापतिके रूपमें स्वामिकार्तिकेय मिल गये, तब उन लोगोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हम लोगोंकी रक्षाके लिये बहुत श्रम और कष्ट उठाया है। अब आप विश्राम कीजिये॥ १६॥ वीरशिरोमणे! आपने हमारी रक्षाके लिये मनुष्यलोकका अपना अकण्टक राज्य छोड़ दिया और जीवनकी अभिलाषाएँ तथा भोगोंका भी परित्याग कर दिया॥ १७॥ अब आपके पुत्र, रानियाँ, बन्धु-बान्धव और अमात्य-मन्त्री तथा आपके समयकी प्रजामेंसे कोई नहीं रहा है। सब-के-सब कालके गालमें चले गये॥ १८॥ काल समस्त बलवानोंसे भी बलवान् है। वह स्वयं परम समर्थ अविनाशी और भगवत्स्वरूप है। जैसे ग्वाले पशुओंको अपने वशमें रखते हैं, वैसे ही वह खेल-खेलमें सारी प्रजाको अपने अधीन रखता है॥ १९॥ राजन्! आपका कल्याण हो। आपकी जो इच्छा हो हमसे माँग लीजिये। हम कैवल्य-मोक्षके अतिरिक्त आपको सब कुछ दे सकते हैं। क्योंकि कैवल्य-मोक्ष देनेकी सामर्थ्य तो केवल अविनाशी भगवान् विष्णुमें ही है॥ २०॥ परम यशस्वी राजा मुचुकुन्दने देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उनकी वन्दना की और बहुत थके होनेके कारण निद्राका ही

वर माँगा, तथा उनसे वर पाकर वे नींदसे भरकर पर्वतकी गुफामें जा सोये॥ २१॥ उस समय देवताओंने कह दिया था कि 'राजन्! सोते समय यदि आपको कोई मूर्ख बीचमें ही जगा देगा, तो वह आपकी दृष्टि पड़ते ही उसी क्षण भस्म हो जायगा'॥ २२॥

परीक्षित्! जब कालयवन भस्म हो गया, तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया। भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह वर्षाकालीन मेघके समान साँवला था। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और गलेमें कौस्तुभमणि अपनी दिव्य ज्योति बिखेर रहे थे। चार भुजाएँ थीं। वैजयन्ती माला अलग ही घुटनोंतक लटक रही थी। मुखकमल अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नतासे खिला हुआ था। कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। होठोंपर प्रेमभरी मुसकराहट थी और नेत्रोंकी चितवन अनुरागकी वर्षा कर रही थी। अत्यन्त दर्शनीय तरुण अवस्था और मतवाले सिंहके समान निर्भीक चाल! राजा मुचुकुन्द यद्यपि बड़े बुद्धिमान् और धीर पुरुष थे, फिर भी भगवान्‌की यह दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति देखकर कुछ चकित हो गये—उनके तेजसे हतप्रतिभ हो सकपका गये। भगवान् अपने तेजसे दुर्द्धर्ष जान पड़ते थे; राजाने तनिक शङ्कित होकर पूछा॥ २३-२७॥

राजा मुचुकुन्दने कहा—'आप कौन हैं? इस काँटोंसे भरे हुए घोर जंगलमें आप कमलके समान कोमल चरणोंसे क्यों विचर रहे हैं? और इस पर्वतकी गुफामें ही पधारनेका क्या प्रयोजन था?॥ २८॥ क्या आप समस्त तेजस्वियोंके मूर्तिमान् तेज अथवा भगवान् अग्निदेव तो नहीं हैं? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हैं?॥ २९॥ मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्यदेव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ही है; क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अङ्गकान्तिसे इस गुफाका अँधेरा भगा रहे हैं॥ ३०॥ पुरुषश्रेष्ठ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सच्चे हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक हैं॥ ३१॥ और पुरुषोत्तम! यदि आप हमारे बारेमें पूछें तो हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द। और प्रभु! मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ॥ ३२॥ बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था। निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था। अभी-अभी किसीने मुझे जगा दिया॥ ३३॥ अवश्य उसके पापोंने ही उसे जलाकर भस्म कर दिया है। इसके बाद शत्रुओंके नाश करनेवाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया॥ ३४॥ महाभाग! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं। आपके परम दिव्य और असह्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है। मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता॥ ३५॥ जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ३६॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता॥ ३७॥ यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमें पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर डाले; परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता॥ ३८॥ राजन्! सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते॥ ३९॥ प्रिय मुचुकुन्द! ऐसा होनेपर भी मैं अपने वर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहले ब्रह्माजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके भार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी॥ ४०॥ उन्हींकी प्रार्थनासे मैंने यदुवंशमें वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं॥ ४१॥ अबतक मैं कालनेमि असुरका, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों साधुद्रोही असुरोंका संहार कर चुका हूँ। राजन्! यह कालयवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया॥ ४२॥ वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुफामें आया हूँ।

७१२ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५१
वर माँगा, तथा उनसे वर पाकर वे नींदसे भरकर पर्वतकी गुफामें जा सोये॥ २१॥ उस समय देवताओंने कह दिया था कि 'राजन्! सोते समय यदि आपको कोई मूर्ख बीचमें ही जगा देगा, तो वह आपकी दृष्टि पड़ते ही उसी क्षण भस्म हो जायगा'॥ २२॥
परीक्षित्! जब कालयवन भस्म हो गया, तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया। भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह वर्षाकालीन मेघके समान साँवला था। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और गलेमें कौस्तुभमणि अपनी दिव्य ज्योति बिखेर रहे थे। चार भुजाएँ थीं। वैजयन्ती माला अलग ही घुटनोंतक लटक रही थी। मुखकमल अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नतासे खिला हुआ था। कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। होठोंपर प्रेमभरी मुसकराहट थी और नेत्रोंकी चितवन अनुरागकी वर्षा कर रही थी। अत्यन्त दर्शनीय तरुण अवस्था और मतवाले सिंहके समान निर्भीक चाल! राजा मुचुकुन्द यद्यपि बड़े बुद्धिमान् और धीर पुरुष थे, फिर भी भगवान्‌की यह दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति देखकर कुछ चकित हो गये—उनके तेजसे हतप्रतिभ हो सकपका गये। भगवान् अपने तेजसे दुर्द्धर्ष जान पड़ते थे; राजाने तनिक शङ्कित होकर पूछा॥ २३-२७॥
राजा मुचुकुन्दने कहा—'आप कौन हैं? इस काँटोंसे भरे हुए घोर जंगलमें आप कमलके समान कोमल चरणोंसे क्यों विचर रहे हैं? और इस पर्वतकी गुफामें ही पधारनेका क्या प्रयोजन था?॥ २८॥ क्या आप समस्त तेजस्वियोंके मूर्तिमान् तेज अथवा भगवान् अग्निदेव तो नहीं हैं? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हैं?॥ २९॥ मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्यदेव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ही है; क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अङ्गकान्तिसे इस गुफाका अँधेरा भगा रहे हैं॥ ३०॥ पुरुषश्रेष्ठ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सच्चे हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक हैं॥ ३१॥ और पुरुषोत्तम! यदि आप हमारे बारेमें पूछें तो हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द। और प्रभु! मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ॥ ३२॥ बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था। निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था। अभी-अभी किसीने मुझे जगा दिया॥ ३३॥ अवश्य उसके पापोंने ही उसे जलाकर भस्म कर दिया है। इसके बाद शत्रुओंके नाश करनेवाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया॥ ३४॥ महाभाग! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं। आपके परम दिव्य और असह्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है। मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता॥ ३५॥ जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ३६॥
भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता॥ ३७॥ यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमें पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर डाले; परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता॥ ३८॥ राजन्! सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते॥ ३९॥ प्रिय मुचुकुन्द! ऐसा होनेपर भी मैं अपने वर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। पहले ब्रह्माजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके भार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी॥ ४०॥ उन्हींकी प्रार्थनासे मैंने यदुवंशमें वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं॥ ४१॥ अबतक मैं कालनेमि असुरका, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों साधुद्रोही असुरोंका संहार कर चुका हूँ। राजन्! यह कालयवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया॥ ४२॥ वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुफामें आया हूँ।

तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ भक्तवत्सल ॥ ४३ ॥ इसलिये राजर्षे ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसके लिये वह शोक करे ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा मुचुकुन्दको वृद्ध गर्गका यह कथन याद आ गया कि यदुवंशमें भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं। आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की ॥ ४५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—'प्रभो ! जगत्‌के सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। वे आपसे विमुख होकर अनर्थमें ही फँसे रहते हैं और आपका भजन नहीं करते। वे सुखके लिये घर गृहस्थीके उन झंझटोंमें फँस जाते हैं, जो सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं। इस तरह स्त्री और पुरुष सभी ठगे जा रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है। अपने परम सौभाग्य और भगवान्‌की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें पड़े रहते हैं—भगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते, वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे अँधेरे कूएँमें गिर जाता है ॥ ४७ ॥ भगवन् ! मैं राजा था, राज्यलक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था। इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और राजकुमार,रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ-मोहमें ही फँसा हुआ था। उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन-रात मेरे गले लगी रहती थी। इस प्रकार मेरे जीवनका यह अमूल्य समय बिल्कुल निष्फल—व्यर्थ चला गया ॥ ४८ ॥ जो शरीर प्रत्यक्ष ही घड़े और भीतके समान मिट्टीका है और दृश्य होनेके कारण उन्हींके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान बैठा था 'नरदेव' ! इस प्रकार मैंने मदान्ध होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेना तथा सेनापतियोंसे घिरकर मैं पृथ्वीमें इधर-उधर घूमता रहता ॥ ४९ ॥ मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्योंकी चिन्तामें पड़कर मनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्तिसे विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है, असावधान हो जाता है। संसारमें बाँध रखनेवाले विषयोंके लिये उसकी लालसा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है। परन्तु जैसे भूखके कारण जीभ लपलपाता हुआ साँप असावधान चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहनेवाले आप एकाएक उस प्रमादग्रस्त प्राणीपर टूट पड़ते हैं और उसे ले बीतते हैं ॥ ५० ॥ जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चलता था और नरदेव कहलाता था, वही शरीर आपके अबाध कालका ग्रास बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विष्ठा, धरतीमें गाड़ देनेपर सड़कर कीड़ा और आगमें जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है ॥ ५१ ॥ प्रभो ! जिसने सारी दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़नेवाला संसारमें कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठता है और बड़े-बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर झुकाते हैं, वही पुरुष जब विषय-सुख भोगनेके लिये, जो घर-गृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, स्त्रियोंके पास जाता है, तब उनके हाथका खिलौना, उनका पालतू पशु बन जाता है ॥ ५२ ॥ बहुत-से लोग विषय-भोग छोड़कर पुनः राज्यादि भोग मिलनेकी इच्छासे ही दान-पुण्य करते हैं और 'मैं फिर जन्म लेकर सबसे बड़ा परम स्वतन्त्र सम्राट् होऊँ।' ऐसी कामना रखकर तपस्यामें भलीभाँति स्थित हो शुभकर्म करते हैं। इस प्रकार जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वह कदापि सुखी नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन् ! जीव अनादिकालसे जन्ममृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है।

अ० ५१] * दशम स्कन्ध * ७१३

तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ भक्तवत्सल ॥ ४३ ॥ इसलिये राजर्षे ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसके लिये वह शोक करे ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा मुचुकुन्दको वृद्ध गर्गका यह कथन याद आ गया कि यदुवंशमें भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं। आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की ॥ ४५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—'प्रभो ! जगत्‌के सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। वे आपसे विमुख होकर अनर्थमें ही फँसे रहते हैं और आपका भजन नहीं करते। वे सुखके लिये घर गृहस्थीके उन झंझटोंमें फँस जाते हैं, जो सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं। इस तरह स्त्री और पुरुष सभी ठगे जा रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है। अपने परम सौभाग्य और भगवान्‌की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें पड़े रहते हैं—भगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते, वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे अँधेरे कूएँमें गिर जाता है ॥ ४७ ॥ भगवन् ! मैं राजा था, राज्यलक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था। इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और राजकुमार,रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ-मोहमें ही फँसा हुआ था। उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन-रात मेरे गले लगी रहती थी। इस प्रकार मेरे जीवनका यह अमूल्य समय बिल्कुल निष्फल—व्यर्थ चला गया ॥ ४८ ॥ जो शरीर प्रत्यक्ष ही घड़े और भीतके समान मिट्टीका है और दृश्य होनेके कारण उन्हींके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान बैठा था 'नरदेव' ! इस प्रकार मैंने मदान्ध होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेना तथा सेनापतियोंसे घिरकर मैं पृथ्वीमें इधर-उधर घूमता रहता ॥ ४९ ॥ मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्योंकी चिन्तामें पड़कर मनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्तिसे विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है, असावधान हो जाता है। संसारमें बाँध रखनेवाले विषयोंके लिये उसकी लालसा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है। परन्तु जैसे भूखके कारण जीभ लपलपाता हुआ साँप असावधान चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहनेवाले आप एकाएक उस प्रमादग्रस्त प्राणीपर टूट पड़ते हैं और उसे ले बीतते हैं ॥ ५० ॥ जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चलता था और नरदेव कहलाता था, वही शरीर आपके अबाध कालका ग्रास बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विष्ठा, धरतीमें गाड़ देनेपर सड़कर कीड़ा और आगमें जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है ॥ ५१ ॥ प्रभो ! जिसने सारी दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़नेवाला संसारमें कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठता है और बड़े-बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर झुकाते हैं, वही पुरुष जब विषय-सुख भोगनेके लिये, जो घर-गृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, स्त्रियोंके पास जाता है, तब उनके हाथका खिलौना, उनका पालतू पशु बन जाता है ॥ ५२ ॥ बहुत-से लोग विषय-भोग छोड़कर पुनः राज्यादि भोग मिलनेकी इच्छासे ही दान-पुण्य करते हैं और 'मैं फिर जन्म लेकर सबसे बड़ा परम स्वतन्त्र सम्राट् होऊँ।' ऐसी कामना रखकर तपस्यामें भलीभाँति स्थित हो शुभकर्म करते हैं। इस प्रकार जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वह कदापि सुखी नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन् ! जीव अनादिकालसे जन्ममृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है।

यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके आश्रय, कार्य-कारणरूप जगत्के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है॥ ५४॥ भगवन्! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रहकी वर्षा की, क्योंकि बिना किसी परिश्रमके—अनायास ही मेरे राज्यका बन्धन टूट गया। साधु-स्वभावके चक्रवर्ती राजा भी जब अपना राज्य छोड़कर एकान्तमें भजन-साधन करनेके उद्देश्यसे वनमें जाना चाहते हैं, तब उसके ममता-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये बड़े प्रेमसे आपसे प्रार्थना किया करते हैं॥ ५५॥ अन्तर्यामी प्रभो! आपसे क्या छिपा है? मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता; क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह नहीं है अथवा जो उसके अभिमानसे रहित हैं, वे लोग भी केवल उसीके लिये प्रार्थना करते रहते हैं। भगवन्! भला, बतलाइये तो सही—मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बाँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे॥ ५६॥ इसलिये प्रभो! मैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त कामनाओंको छोड़कर केवल मायाके लेशमात्र सम्बन्धसे रहित, गुणातीत, एक-अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ५७॥ भगवन्! मैं अनादिकालसे अपने कर्मफलोंको भोगते-भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दुःखद ज्वाला रात-दिन मुझे जलाती रहती थी। मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी। कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली। शरणदाता! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। सारे जगत्के एकमात्र स्वामी! परमात्मन्! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ५८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'सार्वभौम महाराज! तुम्हारी मति, तुम्हारा निश्चय बड़ा ही पवित्र और ऊँची कोटिका है। यद्यपि मैंने तुम्हें बार-बार वर देनेका प्रलोभन दिया, फिर भी तुम्हारी बुद्धि कामनाओंके अधीन न हुई॥ ५९॥ मैंने तुम्हें जो वर देनेका प्रलोभन दिया, वह केवल तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिये। मेरे जो अनन्य भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि कभी कामनाओंसे इधर-उधर नहीं भटकती॥ ६०॥ जो लोग मेरे भक्त नहीं होते, वे चाहे प्राणायाम आदिके द्वारा अपने मनको वशमें करनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, उनकी वासनाएँ क्षीण नहीं होतीं और राजन्! उनका मन फिरसे विषयोंके लिये मचल पड़ता है॥ ६१॥ तुम अपने मन और सारे मनोभावोंको मुझे समर्पित कर दो, मुझमें लगा दो और फिर स्वच्छन्दरूपसे पृथ्वीपर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी विषय-वासनाशून्य निर्मल भक्ति सदा बनी रहेगी॥ ६२॥ तुमने क्षत्रियधर्मका आचरण करते समय शिकार आदिके अवसरोंपर बहुतसे पशुओंका वध किया है। अब एकाग्रचित्तसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो॥ ६३॥ राजन्! अगले जन्ममें तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी, परम सुहृद् होओगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानघन परमात्माको प्राप्त करोगे'॥ ६४॥

बावनवाँ अध्याय

द्वारकागमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका सन्देशा लेकर ब्राह्मणका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्यारे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार इक्ष्वाकुनन्दन राजा मुचुकुन्दपर अनुग्रह किया। अब उन्होंने भगवान्की परिक्रमा की, उन्हें नमस्कार किया और गुफासे बाहर निकले॥ १॥ उन्होंने बाहर आकर देखा कि सब-के-सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष-वनस्पति पहलेकी अपेक्षा बहुत छोटे-छोटे आकारके हो गये हैं। इससे यह जानकर कि कलियुग आ गया, वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये॥ २॥ महाराज मुचुकुन्द तपस्या, श्रद्धा, धैर्य तथा अनासक्तिसे युक्त एवं संशय-सन्देहसे मुक्त थे। वे

७१४ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५२
यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके आश्रय, कार्य-कारणरूप जगत्के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है॥ ५४॥ भगवन्! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रहकी वर्षा की, क्योंकि बिना किसी परिश्रमके—अनायास ही मेरे राज्यका बन्धन टूट गया। साधु-स्वभावके चक्रवर्ती राजा भी जब अपना राज्य छोड़कर एकान्तमें भजन-साधन करनेके उद्देश्यसे वनमें जाना चाहते हैं, तब उसके ममता-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये बड़े प्रेमसे आपसे प्रार्थना किया करते हैं॥ ५५॥ अन्तर्यामी प्रभो! आपसे क्या छिपा है? मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता; क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह नहीं है अथवा जो उसके अभिमानसे रहित हैं, वे लोग भी केवल उसीके लिये प्रार्थना करते रहते हैं। भगवन्! भला, बतलाइये तो सही—मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बाँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे॥ ५६॥ इसलिये प्रभो! मैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त कामनाओंको छोड़कर केवल मायाके लेशमात्र सम्बन्धसे रहित, गुणातीत, एक-अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ५७॥ भगवन्! मैं अनादिकालसे अपने कर्मफलोंको भोगते-भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दुःखद ज्वाला रात-दिन मुझे जलाती रहती थी। मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी। कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली। शरणदाता! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। सारे जगत्के एकमात्र स्वामी! परमात्मन्! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ५८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'सार्वभौम महाराज! तुम्हारी मति, तुम्हारा निश्चय बड़ा ही पवित्र और ऊँची कोटिका है। यद्यपि मैंने तुम्हें बार-बार वर देनेका प्रलोभन दिया, फिर भी तुम्हारी बुद्धि कामनाओंके अधीन न हुई॥ ५९॥ मैंने तुम्हें जो वर देनेका प्रलोभन दिया, वह केवल तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिये। मेरे जो अनन्य भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि कभी कामनाओंसे इधर-उधर नहीं भटकती॥ ६०॥ जो लोग मेरे भक्त नहीं होते, वे चाहे प्राणायाम आदिके द्वारा अपने मनको वशमें करनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, उनकी वासनाएँ क्षीण नहीं होतीं और राजन्! उनका मन फिरसे विषयोंके लिये मचल पड़ता है॥ ६१॥ तुम अपने मन और सारे मनोभावोंको मुझे समर्पित कर दो, मुझमें लगा दो और फिर स्वच्छन्दरूपसे पृथ्वीपर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी विषय-वासनाशून्य निर्मल भक्ति सदा बनी रहेगी॥ ६२॥ तुमने क्षत्रियधर्मका आचरण करते समय शिकार आदिके अवसरोंपर बहुतसे पशुओंका वध किया है। अब एकाग्रचित्तसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो॥ ६३॥ राजन्! अगले जन्ममें तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी, परम सुहृद् होओगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानघन परमात्माको प्राप्त करोगे'॥ ६४॥

बावनवाँ अध्याय

द्वारकागमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका सन्देशा लेकर ब्राह्मणका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्यारे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार इक्ष्वाकुनन्दन राजा मुचुकुन्दपर अनुग्रह किया। अब उन्होंने भगवान्की परिक्रमा की, उन्हें नमस्कार किया और गुफासे बाहर निकले॥ १॥ उन्होंने बाहर आकर देखा कि सब-के-सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष-वनस्पति पहलेकी अपेक्षा बहुत छोटे-छोटे आकारके हो गये हैं। इससे यह जानकर कि कलियुग आ गया, वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये॥ २॥ महाराज मुचुकुन्द तपस्या, श्रद्धा, धैर्य तथा अनासक्तिसे युक्त एवं संशय-सन्देहसे मुक्त थे। वे

अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे॥ ३॥ भगवान् नर-नारायणके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर बड़े शान्तभावसे गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्व सहते हुए वे तपस्याके द्वारा भगवान्‌की आराधना करने लगे॥ ४॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें लौट आये। अबतक कालयवनकी सेनाने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने म्लेच्छोंकी सेनाका संहार किया और उसका सारा धन छीनकर द्वारकाको ले चले॥ ५॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णके आज्ञानुसार मनुष्यों और बैलोंपर वह धन ले जाया जाने लगा, उसी समय मगधराज जरासन्ध फिर (अठारहवीं बार) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ धमका॥ ६॥ परीक्षित्! शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए उसके सामनेसे बड़ी फुर्तीके साथ भाग निकले॥ ७॥ उनके मनमें तनिक भी भय न था। फिर भी मानो अत्यन्त भयभीत हो गये हों—इस प्रकारका नाट्य करते हुए, वह सब-का-सब धन वहीं छोड़कर अनेक योजनोंतक वे अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंसे ही—पैदल भागते चले गये॥ ८॥ जब महाबली मगधराज जरासन्धने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम तो भाग रहे हैं, तब वह हँसने लगा और अपनी रथ-सेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। उसे भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके ऐश्वर्य, प्रभाव आदिका ज्ञान न था॥ ९॥ बहुत दूरतक दौड़नेके कारण दोनों भाई कुछ थक-से गये। अब वे बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतका 'प्रवर्षण' नाम इसलिये पड़ा था कि वहाँ सदा ही मेघ वर्षा किया करते थे॥ १०॥ परीक्षित्! जब जरासन्धने देखा कि वे दोनों पहाड़में छिप गये और बहुत ढूँढ़नेपर भी पता न चला, तब उसने ईंधनसे भरे हुए प्रवर्षण पर्वतके चारों ओर आग लगवाकर उसे जला दिया॥ ११॥ जब भगवान्‌ने देखा कि पर्वतके छोर जलने लगे हैं, तब दोनों भाई जरासन्धकी सेनाके घेरेको लाँघते हुए बड़े वेगसे उस ग्यारह योजन (चौवालीस कोस) ऊँचे पर्वतसे एकदम नीचे धरतीपर कूद आये॥ १२॥ राजन्! उन्हें जरासन्धने अथवा उसके किसी सैनिकने देखा नहीं और वे दोनों भाई वहाँसे चलकर फिर अपनी समुद्रसे घिरी हुई द्वारकापुरीमें चले आये॥ १३॥ जरासन्धने झूठमूठ ऐसा मान लिया कि श्रीकृष्ण और बलराम तो जल गये और फिर वह अपनी बहुत बड़ी सेना लौटाकर मगधदेशको चला गया॥ १४॥

यह बात मैं तुमसे पहले ही (नवम स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि आनर्तदेशके राजा श्रीमान् रैवतजीने अपनी रेवती नामकी कन्या ब्रह्माजीकी प्रेरणासे बलरामजीके साथ ब्याह दी॥ १५॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयंवरमें आये हुए शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि नरपतियोंको बलपूर्वक हराकर सबके देखते-देखते, जैसे गरुड़ने सुधाका हरण किया था, वैसे ही विदर्भदेशकी राजकुमारी रुक्मिणीको हर लाये और उनसे विवाह कर लिया। रुक्मिणीजी राजा भीष्मककी कन्या और स्वयं भगवती लक्ष्मीजीका अवतार थीं॥ १६-१७॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मकनन्दिनी परमसुन्दरी रुक्मिणीदेवीको बलपूर्वक हरण करके राक्षसविधिसे उनके साथ विवाह किया था॥ १८॥ महाराज! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि परम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्ध, शाल्व आदि नरपतियोंको जीतकर जिस प्रकार रुक्मिणीका हरण किया?॥ १९॥ ब्रह्मर्षे! भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें क्या कहना है? वे स्वयं तो पवित्र हैं ही,सारे जगत्‌का मल धो-बहाकर उसे भी पवित्र कर देनेवाली हैं। उनमें ऐसी लोकोत्तर माधुरी है, जिसे दिन-रात सेवन करते रहनेपर भी नित्य नया-नया रस मिलता रहता है। भला ऐसा कौन रसिक, कौन मर्मज्ञ है, जो उन्हें सुनकर तृप्त न हो जाय॥ २०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! महाराज भीष्मक विदर्भदेशके अधिपति थे। उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी॥ २१॥ सबसे बड़े पुत्रका नाम था रुक्मी और चार छोटे थे—जिनके नाम थे क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली। इनकी बहिन थी सती रुक्मिणी॥ २२॥ जब उसने भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, गुण और वैभवकी प्रशंसा सुनी—जो उसके महलमें आनेवाले अतिथि प्रायः गाया ही करते थे—तब उसने यही निश्चय किया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे अनुरूप पति हैं॥ २३॥ भगवान् श्रीकृष्ण

अ० ५२] * दशम स्कन्ध * ७१५

अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे॥ ३॥ भगवान् नर-नारायणके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर बड़े शान्तभावसे गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्व सहते हुए वे तपस्याके द्वारा भगवान्‌की आराधना करने लगे॥ ४॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें लौट आये। अबतक कालयवनकी सेनाने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने म्लेच्छोंकी सेनाका संहार किया और उसका सारा धन छीनकर द्वारकाको ले चले॥ ५॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णके आज्ञानुसार मनुष्यों और बैलोंपर वह धन ले जाया जाने लगा, उसी समय मगधराज जरासन्ध फिर (अठारहवीं बार) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ धमका॥ ६॥ परीक्षित्! शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए उसके सामनेसे बड़ी फुर्तीके साथ भाग निकले॥ ७॥ उनके मनमें तनिक भी भय न था। फिर भी मानो अत्यन्त भयभीत हो गये हों—इस प्रकारका नाट्य करते हुए, वह सब-का-सब धन वहीं छोड़कर अनेक योजनोंतक वे अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंसे ही—पैदल भागते चले गये॥ ८॥ जब महाबली मगधराज जरासन्धने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम तो भाग रहे हैं, तब वह हँसने लगा और अपनी रथ-सेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। उसे भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके ऐश्वर्य, प्रभाव आदिका ज्ञान न था॥ ९॥ बहुत दूरतक दौड़नेके कारण दोनों भाई कुछ थक-से गये। अब वे बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतका 'प्रवर्षण' नाम इसलिये पड़ा था कि वहाँ सदा ही मेघ वर्षा किया करते थे॥ १०॥ परीक्षित्! जब जरासन्धने देखा कि वे दोनों पहाड़में छिप गये और बहुत ढूँढ़नेपर भी पता न चला, तब उसने ईंधनसे भरे हुए प्रवर्षण पर्वतके चारों ओर आग लगवाकर उसे जला दिया॥ ११॥ जब भगवान्‌ने देखा कि पर्वतके छोर जलने लगे हैं, तब दोनों भाई जरासन्धकी सेनाके घेरेको लाँघते हुए बड़े वेगसे उस ग्यारह योजन (चौवालीस कोस) ऊँचे पर्वतसे एकदम नीचे धरतीपर कूद आये॥ १२॥ राजन्! उन्हें जरासन्धने अथवा उसके किसी सैनिकने देखा नहीं और वे दोनों भाई वहाँसे चलकर फिर अपनी समुद्रसे घिरी हुई द्वारकापुरीमें चले आये॥ १३॥ जरासन्धने झूठमूठ ऐसा मान लिया कि श्रीकृष्ण और बलराम तो जल गये और फिर वह अपनी बहुत बड़ी सेना लौटाकर मगधदेशको चला गया॥ १४॥

यह बात मैं तुमसे पहले ही (नवम स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि आनर्तदेशके राजा श्रीमान् रैवतजीने अपनी रेवती नामकी कन्या ब्रह्माजीकी प्रेरणासे बलरामजीके साथ ब्याह दी॥ १५॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयंवरमें आये हुए शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि नरपतियोंको बलपूर्वक हराकर सबके देखते-देखते, जैसे गरुड़ने सुधाका हरण किया था, वैसे ही विदर्भदेशकी राजकुमारी रुक्मिणीको हर लाये और उनसे विवाह कर लिया। रुक्मिणीजी राजा भीष्मककी कन्या और स्वयं भगवती लक्ष्मीजीका अवतार थीं॥ १६-१७॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मकनन्दिनी परमसुन्दरी रुक्मिणीदेवीको बलपूर्वक हरण करके राक्षसविधिसे उनके साथ विवाह किया था॥ १८॥ महाराज! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि परम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्ध, शाल्व आदि नरपतियोंको जीतकर जिस प्रकार रुक्मिणीका हरण किया?॥ १९॥ ब्रह्मर्षे! भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें क्या कहना है? वे स्वयं तो पवित्र हैं ही,सारे जगत्‌का मल धो-बहाकर उसे भी पवित्र कर देनेवाली हैं। उनमें ऐसी लोकोत्तर माधुरी है, जिसे दिन-रात सेवन करते रहनेपर भी नित्य नया-नया रस मिलता रहता है। भला ऐसा कौन रसिक, कौन मर्मज्ञ है, जो उन्हें सुनकर तृप्त न हो जाय॥ २०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! महाराज भीष्मक विदर्भदेशके अधिपति थे। उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी॥ २१॥ सबसे बड़े पुत्रका नाम था रुक्मी और चार छोटे थे—जिनके नाम थे क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली। इनकी बहिन थी सती रुक्मिणी॥ २२॥ जब उसने भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, गुण और वैभवकी प्रशंसा सुनी—जो उसके महलमें आनेवाले अतिथि प्रायः गाया ही करते थे—तब उसने यही निश्चय किया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे अनुरूप पति हैं॥ २३॥ भगवान् श्रीकृष्ण

भी समझते थे कि 'रुक्मिणीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर लक्षण हैं, वह परम बुद्धिमती है; उदारता, सौन्दर्य शीलस्वभाव और गुणोंमें भी अद्वितीय है। इसलिये रुक्मिणी ही मेरे अनुरूप पत्नी है।' अतः भगवान्‌ने रुक्मिणीजीसे विवाह करनेका निश्चय किया॥ २४॥ रुक्मिणीजीके भाई-बन्धु भी चाहते थे कि हमारी बहिनका विवाह श्रीकृष्णसे ही हो। परन्तु रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था, उसने उन्हें विवाह करनेसे रोक दिया और शिशुपालको ही अपनी बहिनके योग्य वर समझा॥ २५॥

जब परमसुन्दरी रुक्मिणीको यह मालूम हुआ कि मेरा बड़ा भाई रुक्मी शिशुपालके साथ मेरा विवाह करना चाहता है, तब वे बहुत उदास हो गयीं। उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचारकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मणको तुरंत श्रीकृष्णके पास भेजा॥ २६॥ जब वे ब्राह्मणदेवता द्वारकापुरीमें पहुँचे, तब द्वारपाल उन्हें राजमहलके भीतर ले गये। वहाँ जाकर ब्राह्मणदेवताने देखा कि आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हैं॥ २७॥ ब्राह्मणोंके परमभक्त भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताको देखते ही अपने आसनसे नीचे उतर गये और उन्हें अपने आसनपर बैठाकर वैसी ही पूजा की, जैसे देवतालोग उनकी (भगवान्‌की) किया करते हैं॥ २८॥ आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्नके अनन्तर जब ब्राह्मणदेवता खा-पी चुके, आराम-विश्राम कर चुके तब संतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोमल हाथोंसे उनके पैर सहलाते हुए बड़े शान्त भावसे पूछने लगे— ॥ २९॥ 'ब्राह्मणशिरोमणे! आपका चित्त तो सदा-सर्वदा सन्तुष्ट रहता है न? आपको अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा स्वीकृत धर्मका पालन करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं होती॥ ३०॥ ब्राह्मण यदि जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे और अपने धर्मका पालन करे, उससे च्युत न हो, तो वह सन्तोष ही उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है॥ ३१॥ यदि इन्द्रका पद पाकर भी किसीको सन्तोष न हो तो उसे सुखके लिये एक लोकसे दूसरे लोकमें बार-बार भटकना पड़ेगा, वह कहीं भी शान्तिसे बैठ नहीं सकेगा। परन्तु जिसके पास तनिक भी संग्रह-परिग्रह नहीं है और जो उसी अवस्थामें सन्तुष्ट है, वह सब प्रकारसे सन्तापरहित होकर सुखकी नींद सोता है॥ ३२॥ जो स्वयं प्राप्त हुई वस्तुसे सन्तोष कर लेते हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही मधुर है और जो समस्त प्राणियोंके परम हितैषी, अहङ्काररहित और शान्त हैं—उन ब्राह्मणोंको मैं सदा सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ॥ ३३॥ ब्राह्मणदेवता! राजाकी ओरसे तो आपलोगोंको सब प्रकारकी सुविधा है न? जिसके राज्यमें प्रजाका अच्छी तरह पालन होता है और वह आनन्दसे रहती है, वह राजा मुझे बहुत ही प्रिय है॥ ३४॥ ब्राह्मणदेवता! आप कहाँसे, किस हेतुसे और किस अभिलाषासे इतना कठिन मार्ग तय करके यहाँ पधारे हैं? यदि कोई बात विशेष गोपनीय न हो तो हमसे कहिये। हम आपकी क्या सेवा करें?'॥ ३५॥ परीक्षित्! लीलासे ही मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार ब्राह्मणदेवतासे पूछा, तब उन्होंने सारी बात कह सुनायी। इसके बाद वे भगवान्‌से रुक्मिणीजीका सन्देश कहने लगे॥ ३६॥

रुक्मिणीजीने कहा है—त्रिभुवनसुन्दर! आपके गुणोंको, जो सुननेवालोंके कानोंके रास्ते हृदयमें प्रवेश करके एक-एक अङ्गके ताप, जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं तथा अपने रूप-सौन्दर्यको जो नेत्रवाले जीवोंके नेत्रोंके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके फल एवं स्वार्थ-परमार्थ सब कुछ हैं, श्रवण करके प्यारे अच्युत! मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है॥ ३७॥ प्रेमस्वरूप श्यामसुन्दर! चाहे जिस दृष्टिसे देखें; कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन-धाम—सभीमें आप अद्वितीय हैं, अपने ही समान हैं। मनुष्य-लोकमें जितने भी प्राणी हैं, सबका मन आपको देखकर शान्तिका अनुभव करता है, आनन्दित होता है। अब पुरुषभूषण! आप ही बतलाइये—ऐसी कौन-सी कुलवती, महागुणवती और धैर्यवती कन्या होगी, जो विवाहके योग्य समय आनेपर आपको ही पतिके रूपमें वरण न करेगी?॥ ३८॥ इसीलिये प्रियतम! मैंने आपको पतिरूपसे वरण किया है। मैं आपको आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ। आप अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदयकी बात आपसे छिपी नहीं है। आप यहाँ पधारकर मुझे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये। कमलनयन! प्राणवल्लभ! मैं आप-सरीखे

७१६ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५२

भी समझते थे कि 'रुक्मिणीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर लक्षण हैं, वह परम बुद्धिमती है; उदारता, सौन्दर्य शीलस्वभाव और गुणोंमें भी अद्वितीय है। इसलिये रुक्मिणी ही मेरे अनुरूप पत्नी है।' अतः भगवान्‌ने रुक्मिणीजीसे विवाह करनेका निश्चय किया॥ २४॥ रुक्मिणीजीके भाई-बन्धु भी चाहते थे कि हमारी बहिनका विवाह श्रीकृष्णसे ही हो। परन्तु रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था, उसने उन्हें विवाह करनेसे रोक दिया और शिशुपालको ही अपनी बहिनके योग्य वर समझा॥ २५॥

जब परमसुन्दरी रुक्मिणीको यह मालूम हुआ कि मेरा बड़ा भाई रुक्मी शिशुपालके साथ मेरा विवाह करना चाहता है, तब वे बहुत उदास हो गयीं। उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचारकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मणको तुरंत श्रीकृष्णके पास भेजा॥ २६॥ जब वे ब्राह्मणदेवता द्वारकापुरीमें पहुँचे, तब द्वारपाल उन्हें राजमहलके भीतर ले गये। वहाँ जाकर ब्राह्मणदेवताने देखा कि आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हैं॥ २७॥ ब्राह्मणोंके परमभक्त भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताको देखते ही अपने आसनसे नीचे उतर गये और उन्हें अपने आसनपर बैठाकर वैसी ही पूजा की, जैसे देवतालोग उनकी (भगवान्‌की) किया करते हैं॥ २८॥ आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्नके अनन्तर जब ब्राह्मणदेवता खा-पी चुके, आराम-विश्राम कर चुके तब संतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोमल हाथोंसे उनके पैर सहलाते हुए बड़े शान्त भावसे पूछने लगे— ॥ २९॥ 'ब्राह्मणशिरोमणे! आपका चित्त तो सदा-सर्वदा सन्तुष्ट रहता है न? आपको अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा स्वीकृत धर्मका पालन करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं होती॥ ३०॥ ब्राह्मण यदि जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे और अपने धर्मका पालन करे, उससे च्युत न हो, तो वह सन्तोष ही उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है॥ ३१॥ यदि इन्द्रका पद पाकर भी किसीको सन्तोष न हो तो उसे सुखके लिये एक लोकसे दूसरे लोकमें बार-बार भटकना पड़ेगा, वह कहीं भी शान्तिसे बैठ नहीं सकेगा। परन्तु जिसके पास तनिक भी संग्रह-परिग्रह नहीं है और जो उसी अवस्थामें सन्तुष्ट है, वह सब प्रकारसे सन्तापरहित होकर सुखकी नींद सोता है॥ ३२॥ जो स्वयं प्राप्त हुई वस्तुसे सन्तोष कर लेते हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही मधुर है और जो समस्त प्राणियोंके परम हितैषी, अहङ्काररहित और शान्त हैं—उन ब्राह्मणोंको मैं सदा सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ॥ ३३॥ ब्राह्मणदेवता! राजाकी ओरसे तो आपलोगोंको सब प्रकारकी सुविधा है न? जिसके राज्यमें प्रजाका अच्छी तरह पालन होता है और वह आनन्दसे रहती है, वह राजा मुझे बहुत ही प्रिय है॥ ३४॥ ब्राह्मणदेवता! आप कहाँसे, किस हेतुसे और किस अभिलाषासे इतना कठिन मार्ग तय करके यहाँ पधारे हैं? यदि कोई बात विशेष गोपनीय न हो तो हमसे कहिये। हम आपकी क्या सेवा करें?'॥ ३५॥ परीक्षित्! लीलासे ही मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार ब्राह्मणदेवतासे पूछा, तब उन्होंने सारी बात कह सुनायी। इसके बाद वे भगवान्‌से रुक्मिणीजीका सन्देश कहने लगे॥ ३६॥

रुक्मिणीजीने कहा है—त्रिभुवनसुन्दर! आपके गुणोंको, जो सुननेवालोंके कानोंके रास्ते हृदयमें प्रवेश करके एक-एक अङ्गके ताप, जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं तथा अपने रूप-सौन्दर्यको जो नेत्रवाले जीवोंके नेत्रोंके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके फल एवं स्वार्थ-परमार्थ सब कुछ हैं, श्रवण करके प्यारे अच्युत! मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है॥ ३७॥ प्रेमस्वरूप श्यामसुन्दर! चाहे जिस दृष्टिसे देखें; कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन-धाम—सभीमें आप अद्वितीय हैं, अपने ही समान हैं। मनुष्य-लोकमें जितने भी प्राणी हैं, सबका मन आपको देखकर शान्तिका अनुभव करता है, आनन्दित होता है। अब पुरुषभूषण! आप ही बतलाइये—ऐसी कौन-सी कुलवती, महागुणवती और धैर्यवती कन्या होगी, जो विवाहके योग्य समय आनेपर आपको ही पतिके रूपमें वरण न करेगी?॥ ३८॥ इसीलिये प्रियतम! मैंने आपको पतिरूपसे वरण किया है। मैं आपको आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ। आप अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदयकी बात आपसे छिपी नहीं है। आप यहाँ पधारकर मुझे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये। कमलनयन! प्राणवल्लभ! मैं आप-सरीखे

वीरको समर्पित हो चुकी हूँ, आपकी हूँ। अब जैसे सिंहका भाग सियार छू जाय, वैसे कहीं शिशुपाल निकटसे आकर मेरा स्पर्श न कर जाय॥ ३९॥ मैंने यदि जन्म-जन्ममें पूर्त (कुआँ, बावली आदि खुदवाना), इष्ट (यज्ञादि करना), दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरु आदिकी पूजाके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी ही आराधना की हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो भगवान् श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें; शिशुपाल अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके॥ ४०॥ प्रभो! आप अजित हैं। जिस दिन मेरा विवाह होनेवाला हो, उसके एक दिन पहले आप हमारी राजधानीमें गुप्तरूपसे आ जाइये और फिर बड़े-बड़े सेनापतियोंके साथ शिशुपाल तथा जरासन्धकी सेनाओंको मथ डालिये, तहस-नहस कर दीजिये और बलपूर्वक राक्षस-विधिसे वीरताका मूल्य देकर मेरा पाणिग्रहण कीजिये॥ ४१॥ यदि आप यह सोचते हों कि 'तुम तो अन्तःपुरमें—भीतरके जनाने महलोंमें पहरेके अंदर रहती हो, तुम्हारे भाई-बन्धुओंको मारे बिना मैं तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ?' तो इसका उपाय मैं आपको बतलाये देती हूँ। हमारे कुलका ऐसा नियम है कि विवाहके पहले दिन कुलदेवीका दर्शन करनेके लिये एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जुलूस निकलता है—जिसमें विवाही जानेवाली कन्याको—दुलहिनको नगरके बाहर गिरिजादेवीके मन्दिरमें जाना पड़ता है॥ ४२॥ कमलनयन! उमापति भगवान् शङ्करके समान बड़े-बड़े महापुरुष भी आत्मशुद्धिके लिये आपके चरणकमलोंकी धूलसे स्नान करना चाहते हैं। यदि मैं आपका वह प्रसाद, आपकी वह चरणधूल नहीं प्राप्त कर सकी तो व्रतद्वारा शरीरको सुखाकर प्राण छोड़ दूँगी। चाहे उसके लिये सैकड़ों जन्म क्यों न लेने पड़ें, कभी-न-कभी तो आपका वह प्रसाद अवश्य ही मिलेगा॥ ४३॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—यदुवंशशिरोमणे! यही रुक्मिणीके अत्यन्त गोपनीय सन्देश हैं, जिन्हें लेकर मैं आपके पास आया हूँ। इसके सम्बन्धमें जो कुछ करना हो, विचार कर लीजिये और तुरंत ही उसके अनुसार कार्य कीजिये॥ ४४॥

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणीहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका यह सन्देश सुनकर अपने हाथसे ब्राह्मणदेवताका हाथ पकड़ लिया और हँसते हुए यों बोले॥ १॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणदेवता! जैसे विदर्भराजकुमारी मुझे चाहती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें चाहता हूँ। मेरा चित्त उन्हींमें लगा रहता है। कहाँतक कहूँ, मुझे रातके समय नींदतक नहीं आती। मैं जानता हूँ कि रुक्मीने द्वेषवश मेरा विवाह रोक दिया है॥ २॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता! आप देखियेगा, जैसे लकड़ियोंको मथकर—एक दूसरेसे रगड़कर मनुष्य उनमेंसे आग निकाल लेता है, वैसे ही युद्धमें उन नामधारी क्षत्रियकुल-कलङ्कोंको तहस-नहस करके अपनेसे प्रेम करनेवाली परमसुन्दरी राजकुमारीको मैं निकाल लाऊँगा॥ ३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मधुसूदन श्रीकृष्णने यह जानकर कि रुक्मिणीके विवाहकी लग्न परसों रात्रिमें ही है, सारथिको आज्ञा दी कि 'दारुक! तनिक भी विलम्ब न करके रथ जोत लाओ'॥ ४॥ दारुक भगवान्‌के रथमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके चार घोड़े जोतकर उसे ले आया और हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया॥ ५॥ शूरनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणदेवताको पहले रथपर चढ़ाकर फिर आप भी सवार हुए और उन शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा एक ही रातमें आनर्तदेशसे विदर्भदेशमें जा पहुँचे॥ ६॥

कुण्डिननरेश महाराज भीष्मक अपने बड़े लड़के रुक्मीके स्नेहवश अपनी कन्या शिशुपालको देनेके लिये

अ० ५३] * दशम स्कन्ध * ७१७

वीरको समर्पित हो चुकी हूँ, आपकी हूँ। अब जैसे सिंहका भाग सियार छू जाय, वैसे कहीं शिशुपाल निकटसे आकर मेरा स्पर्श न कर जाय॥ ३९॥ मैंने यदि जन्म-जन्ममें पूर्त (कुआँ, बावली आदि खुदवाना), इष्ट (यज्ञादि करना), दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरु आदिकी पूजाके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी ही आराधना की हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो भगवान् श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें; शिशुपाल अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके॥ ४०॥ प्रभो! आप अजित हैं। जिस दिन मेरा विवाह होनेवाला हो, उसके एक दिन पहले आप हमारी राजधानीमें गुप्तरूपसे आ जाइये और फिर बड़े-बड़े सेनापतियोंके साथ शिशुपाल तथा जरासन्धकी सेनाओंको मथ डालिये, तहस-नहस कर दीजिये और बलपूर्वक राक्षस-विधिसे वीरताका मूल्य देकर मेरा पाणिग्रहण कीजिये॥ ४१॥ यदि आप यह सोचते हों कि 'तुम तो अन्तःपुरमें—भीतरके जनाने महलोंमें पहरेके अंदर रहती हो, तुम्हारे भाई-बन्धुओंको मारे बिना मैं तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ?' तो इसका उपाय मैं आपको बतलाये देती हूँ। हमारे कुलका ऐसा नियम है कि विवाहके पहले दिन कुलदेवीका दर्शन करनेके लिये एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जुलूस निकलता है—जिसमें विवाही जानेवाली कन्याको—दुलहिनको नगरके बाहर गिरिजादेवीके मन्दिरमें जाना पड़ता है॥ ४२॥ कमलनयन! उमापति भगवान् शङ्करके समान बड़े-बड़े महापुरुष भी आत्मशुद्धिके लिये आपके चरणकमलोंकी धूलसे स्नान करना चाहते हैं। यदि मैं आपका वह प्रसाद, आपकी वह चरणधूल नहीं प्राप्त कर सकी तो व्रतद्वारा शरीरको सुखाकर प्राण छोड़ दूँगी। चाहे उसके लिये सैकड़ों जन्म क्यों न लेने पड़ें, कभी-न-कभी तो आपका वह प्रसाद अवश्य ही मिलेगा॥ ४३॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—यदुवंशशिरोमणे! यही रुक्मिणीके अत्यन्त गोपनीय सन्देश हैं, जिन्हें लेकर मैं आपके पास आया हूँ। इसके सम्बन्धमें जो कुछ करना हो, विचार कर लीजिये और तुरंत ही उसके अनुसार कार्य कीजिये॥ ४४॥

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणीहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका यह सन्देश सुनकर अपने हाथसे ब्राह्मणदेवताका हाथ पकड़ लिया और हँसते हुए यों बोले॥ १॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणदेवता! जैसे विदर्भराजकुमारी मुझे चाहती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें चाहता हूँ। मेरा चित्त उन्हींमें लगा रहता है। कहाँतक कहूँ, मुझे रातके समय नींदतक नहीं आती। मैं जानता हूँ कि रुक्मीने द्वेषवश मेरा विवाह रोक दिया है॥ २॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता! आप देखियेगा, जैसे लकड़ियोंको मथकर—एक दूसरेसे रगड़कर मनुष्य उनमेंसे आग निकाल लेता है, वैसे ही युद्धमें उन नामधारी क्षत्रियकुल-कलङ्कोंको तहस-नहस करके अपनेसे प्रेम करनेवाली परमसुन्दरी राजकुमारीको मैं निकाल लाऊँगा॥ ३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मधुसूदन श्रीकृष्णने यह जानकर कि रुक्मिणीके विवाहकी लग्न परसों रात्रिमें ही है, सारथिको आज्ञा दी कि 'दारुक! तनिक भी विलम्ब न करके रथ जोत लाओ'॥ ४॥ दारुक भगवान्‌के रथमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके चार घोड़े जोतकर उसे ले आया और हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया॥ ५॥ शूरनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणदेवताको पहले रथपर चढ़ाकर फिर आप भी सवार हुए और उन शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा एक ही रातमें आनर्तदेशसे विदर्भदेशमें जा पहुँचे॥ ६॥

कुण्डिननरेश महाराज भीष्मक अपने बड़े लड़के रुक्मीके स्नेहवश अपनी कन्या शिशुपालको देनेके लिये

विवाहोत्सवकी तैयारी करा रहे थे ॥ ७ ॥ नगरके राजपथ, चौराहे तथा गली-कूचे झाड़-बुहार दिये गये थे, उनपर छिड़काव किया जा चुका था। चित्र-विचित्र, रंग-बिरंगी, छोटी-बड़ी झंडियाँ और पताकाएँ लगा दी गयी थीं। तोरन बाँध दिये गये थे ॥ ८ ॥ वहाँके स्त्री-पुरुष पुष्प, माला, हार, इत्र-फुलेल, चन्दन, गहने और निर्मल वस्त्रोंसे सजे हुए थे। वहाँके सुन्दर-सुन्दर घरोंमेंसे अगरके धूपकी सुगन्ध फैल रही थी ॥ ९ ॥ परीक्षित्! राजा भीष्मकने पितर और देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और नियमानुसार स्वस्तिवाचन भी ॥ १० ॥ सुशोभित दाँतोंवाली परमसुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणीजीको स्नान कराया गया, उनके हाथोंमें मङ्गलसूत्र कङ्कण पहनाये गये, कोहबर बनाया गया, दो नये-नये वस्त्र उन्हें पहनाये गये और वे उत्तम-उत्तम आभूषणोंसे विभूषित की गयीं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे उनकी रक्षा की और अथर्ववेदके विद्वान् पुरोहितने ग्रहशान्तिके लिये हवन किया ॥ १२ ॥ राजा भीष्मक कुलपरम्परा और शास्त्रीय विधियोंके बड़े जानकार थे। उन्होंने सोना, चाँदी, वस्त्र, गुड़ मिले हुए तिल और गौएँ ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥

इसी प्रकार चेदिनरेश राजा दमघोषने भी अपने पुत्र शिशुपालके लिये मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंसे अपने पुत्रके विवाह सम्बन्धी मङ्गलकृत्य कराये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे मद चुआते हुए हाथियों, सोनेकी मालाओंसे सजाये हुए रथों, पैदलों तथा घुड़सवारोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुर जा पहुँचे ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने आगे आकर उनका स्वागत-सत्कार और प्रथाके अनुसार अर्चन-पूजन किया। इसके बाद उन लोगोंको पहलेसे ही निश्चित किये हुए जनवासोंमें आनन्दपूर्वक ठहरा दिया ॥ १६ ॥ उस बारातमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि शिशुपालके सहस्रों मित्र नरपति आये थे ॥ १७ ॥ वे सब राजा श्रीकृष्ण और बलरामजीके विरोधी थे और राजकुमारी रुक्मिणी शिशुपालको ही मिले, इस विचारसे आये थे। उन्होंने अपने-अपने मनमें यह पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा था कि यदि श्रीकृष्ण बलराम आदि यदुवंशियोंके साथ आकर कन्याको हरनेकी चेष्टा करेगा तो हम सब मिलकर उससे लड़ेंगे। यही कारण था कि उन राजाओंने अपनी-अपनी पूरी सेना और रथ, घोड़े, हाथी आदि भी अपने साथ ले लिये थे ॥ १८-१९ ॥

विपक्षी राजाओंकी इस तैयारीका पता भगवान् बलरामजीको लग गया और जब उन्होंने यह सुना कि भैया श्रीकृष्ण अकेले ही राजकुमारीका हरण करनेके लिये चले गये हैं, तब उन्हें वहाँ लड़ाई-झगड़ेकी बड़ी आशङ्का हुई ॥ २० ॥ यद्यपि वे श्रीकृष्णका बल-विक्रम जानते थे, फिर भी भ्रातृस्नेहसे उनका हृदय भर आया; वे तुरंत ही हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुरके लिये चल पड़े ॥ २१ ॥

इधर, परमसुन्दरी रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने देखा श्रीकृष्णकी तो कौन कहे, अभी ब्राह्मणदेवता भी नहीं लौटे! तो वे बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं; सोचने लगीं ॥ २२ ॥ 'अहो! अब मुझ अभागिनीके विवाहमें केवल एक रातकी देरी है। परन्तु मेरे जीवनसर्वस्व कमलनयन भगवान् अब भी नहीं पधारे! इसका क्या कारण हो सकता है, कुछ निश्चय नहीं मालूम पड़ता। यही नहीं, मेरे सन्देश ले जानेवाले ब्राह्मणदेवता भी तो अभीतक नहीं लौटे ॥ २३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप परम शुद्ध है और विशुद्ध पुरुष ही उनसे प्रेम कर सकते हैं। उन्होंने मुझमें कुछ-न-कुछ बुराई देखी होगी, तभी तो मेरा हाथ पकड़नेके लिये—मुझे स्वीकार करनेके लिये उद्यत होकर वे यहाँ नहीं पधार रहे हैं ॥ २४ ॥ ठीक है, मेरे भाग्य ही मन्द हैं! विधाता और भगवान् शङ्कर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते। यह भी सम्भव है कि रुद्रपत्नी गिरिराजकुमारी सती पार्वतीजी मुझसे अप्रसन्न हों' ॥ २५ ॥ परीक्षित्! रुक्मिणीजी इसी उधेड़-बुनमें पड़ी हुई थीं। उनका सम्पूर्ण मन और उनके सारे मनोभाव भक्तमनचोर भगवान्ने चुरा लिये थे। उन्होंने उन्हींको सोचते-सोचते 'अभी समय है' ऐसा समझकर अपने आँसू भरे नेत्र बन्द कर लिये ॥ २६ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उसी समय उनकी बायीं जाँघ, भुजा और नेत्र फड़कने लगे, जो प्रियतमके आगमनका प्रिय संवाद सूचित कर रहे थे ॥ २७ ॥ इतनेमें

७१८ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५३
विवाहोत्सवकी तैयारी करा रहे थे ॥ ७ ॥ नगरके राजपथ, चौराहे तथा गली-कूचे झाड़-बुहार दिये गये थे, उनपर छिड़काव किया जा चुका था। चित्र-विचित्र, रंग-बिरंगी, छोटी-बड़ी झंडियाँ और पताकाएँ लगा दी गयी थीं। तोरन बाँध दिये गये थे ॥ ८ ॥ वहाँके स्त्री-पुरुष पुष्प, माला, हार, इत्र-फुलेल, चन्दन, गहने और निर्मल वस्त्रोंसे सजे हुए थे। वहाँके सुन्दर-सुन्दर घरोंमेंसे अगरके धूपकी सुगन्ध फैल रही थी ॥ ९ ॥ परीक्षित्! राजा भीष्मकने पितर और देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और नियमानुसार स्वस्तिवाचन भी ॥ १० ॥ सुशोभित दाँतोंवाली परमसुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणीजीको स्नान कराया गया, उनके हाथोंमें मङ्गलसूत्र कङ्कण पहनाये गये, कोहबर बनाया गया, दो नये-नये वस्त्र उन्हें पहनाये गये और वे उत्तम-उत्तम आभूषणोंसे विभूषित की गयीं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे उनकी रक्षा की और अथर्ववेदके विद्वान् पुरोहितने ग्रहशान्तिके लिये हवन किया ॥ १२ ॥ राजा भीष्मक कुलपरम्परा और शास्त्रीय विधियोंके बड़े जानकार थे। उन्होंने सोना, चाँदी, वस्त्र, गुड़ मिले हुए तिल और गौएँ ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥

इसी प्रकार चेदिनरेश राजा दमघोषने भी अपने पुत्र शिशुपालके लिये मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंसे अपने पुत्रके विवाह सम्बन्धी मङ्गलकृत्य कराये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे मद चुआते हुए हाथियों, सोनेकी मालाओंसे सजाये हुए रथों, पैदलों तथा घुड़सवारोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुर जा पहुँचे ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने आगे आकर उनका स्वागत-सत्कार और प्रथाके अनुसार अर्चन-पूजन किया। इसके बाद उन लोगोंको पहलेसे ही निश्चित किये हुए जनवासोंमें आनन्दपूर्वक ठहरा दिया ॥ १६ ॥ उस बारातमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि शिशुपालके सहस्रों मित्र नरपति आये थे ॥ १७ ॥ वे सब राजा श्रीकृष्ण और बलरामजीके विरोधी थे और राजकुमारी रुक्मिणी शिशुपालको ही मिले, इस विचारसे आये थे। उन्होंने अपने-अपने मनमें यह पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा था कि यदि श्रीकृष्ण बलराम आदि यदुवंशियोंके साथ आकर कन्याको हरनेकी चेष्टा करेगा तो हम सब मिलकर उससे लड़ेंगे। यही कारण था कि उन राजाओंने अपनी-अपनी पूरी सेना और रथ, घोड़े, हाथी आदि भी अपने साथ ले लिये थे ॥ १८-१९ ॥

विपक्षी राजाओंकी इस तैयारीका पता भगवान् बलरामजीको लग गया और जब उन्होंने यह सुना कि भैया श्रीकृष्ण अकेले ही राजकुमारीका हरण करनेके लिये चले गये हैं, तब उन्हें वहाँ लड़ाई-झगड़ेकी बड़ी आशङ्का हुई ॥ २० ॥ यद्यपि वे श्रीकृष्णका बल-विक्रम जानते थे, फिर भी भ्रातृस्नेहसे उनका हृदय भर आया; वे तुरंत ही हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुरके लिये चल पड़े ॥ २१ ॥

इधर, परमसुन्दरी रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने देखा श्रीकृष्णकी तो कौन कहे, अभी ब्राह्मणदेवता भी नहीं लौटे! तो वे बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं; सोचने लगीं ॥ २२ ॥ 'अहो! अब मुझ अभागिनीके विवाहमें केवल एक रातकी देरी है। परन्तु मेरे जीवनसर्वस्व कमलनयन भगवान् अब भी नहीं पधारे! इसका क्या कारण हो सकता है, कुछ निश्चय नहीं मालूम पड़ता। यही नहीं, मेरे सन्देश ले जानेवाले ब्राह्मणदेवता भी तो अभीतक नहीं लौटे ॥ २३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप परम शुद्ध है और विशुद्ध पुरुष ही उनसे प्रेम कर सकते हैं। उन्होंने मुझमें कुछ-न-कुछ बुराई देखी होगी, तभी तो मेरा हाथ पकड़नेके लिये—मुझे स्वीकार करनेके लिये उद्यत होकर वे यहाँ नहीं पधार रहे हैं ॥ २४ ॥ ठीक है, मेरे भाग्य ही मन्द हैं! विधाता और भगवान् शङ्कर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते। यह भी सम्भव है कि रुद्रपत्नी गिरिराजकुमारी सती पार्वतीजी मुझसे अप्रसन्न हों' ॥ २५ ॥ परीक्षित्! रुक्मिणीजी इसी उधेड़-बुनमें पड़ी हुई थीं। उनका सम्पूर्ण मन और उनके सारे मनोभाव भक्तमनचोर भगवान्ने चुरा लिये थे। उन्होंने उन्हींको सोचते-सोचते 'अभी समय है' ऐसा समझकर अपने आँसू भरे नेत्र बन्द कर लिये ॥ २६ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उसी समय उनकी बायीं जाँघ, भुजा और नेत्र फड़कने लगे, जो प्रियतमके आगमनका प्रिय संवाद सूचित कर रहे थे ॥ २७ ॥ इतनेमें

ही भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए वे ब्राह्मणदेवता आ गये और उन्होंने अन्तःपुरमें राजकुमारी रुक्मिणीको इस प्रकार देखा, मानो कोई ध्यानमग्न देवी हो ॥ २८ ॥ सती रुक्मिणीजीने देखा ब्राह्मण देवताका मुख प्रफुल्लित है। उनके मन और चेहरेपर किसी प्रकारकी घबड़ाहट नहीं है। वे उन्हें देखकर लक्षणोंसे ही समझ गयीं कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये। फिर प्रसन्नतासे खिलकर उन्होंने ब्राह्मणदेवतासे पूछा ॥ २९ ॥ तब ब्राह्मणदेवताने निवेदन किया कि 'भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधार गये हैं।' और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह भी बतलाया कि 'राजकुमारीजी ! आपको ले जानेकी उन्होंने सत्य प्रतिज्ञा की है' ॥ ३० ॥ भगवान्‌के शुभागमनका समाचार सुनकर रुक्मिणीजीका हृदय आनन्दातिरेकसे भर गया। उन्होंने इसके बदलेमें ब्राह्मणके लिये भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ प्रिय न देखकर उन्होंने केवल नमस्कार कर लिया। अर्थात् जगत्‌की समग्र लक्ष्मी ब्राह्मणदेवताको सौंप दी ॥ ३१ ॥

राजा भीष्मकने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुकतावश यहाँ पधारे हैं। तब तुरही, भेरी आदि बाजे बजवाते हुए पूजाकी सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी की ॥ ३२ ॥ और मधुपर्क, निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-उत्तम भेंट देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ ३३ ॥ भीष्मकजी बड़े बुद्धिमान् थे । भगवान्‌के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। उन्होंने भगवान्‌को सेना और साथियोंके सहित समस्त सामग्रियोंसे युक्त निवासस्थानमें ठहराया और उनका यथावत् आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३४ ॥ विदर्भराज भीष्मकजीके यहाँ निमन्त्रणमें जितने राजा आये थे, उन्होंने उनके पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सारी इच्छित वस्तुएँ देकर सबका खूब सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भ देशके नागरिकोंने जब सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तब वे लोग भगवान्‌के निवासस्थानपर आये और अपने नयनोंकी अंजलिमें भर-भरकर उनके वदनारविन्दका मधुर मकरन्द-रस पान करने लगे ॥ ३६ ॥ वे आपसमें इस प्रकार बातचीत करते थे—रुक्मिणी इन्हींकी अर्द्धाङ्गिनी होनेके योग्य है, और ये परम पवित्रमूर्ति श्यामसुन्दर रुक्मिणीके ही योग्य पति हैं। दूसरी कोई इनकी पत्नी होनेके योग्य नहीं है ॥ ३७ ॥ यदि हमने अपने पूर्वजन्म या इस जन्ममें कुछ भी सत्कर्म किया हो, तो त्रिलोक-विधाता भगवान् हमपर प्रसन्न हों और ऐसी कृपा करें कि श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण ही विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका पाणिग्रहण करें' ॥ ३८ ॥

परीक्षित् ! जिस समय प्रेम-परवश होकर पुरवासी-लोग परस्पर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, उसी समय रुक्मिणीजी अन्तःपुरसे निकलकर देवीजीके मन्दिरके लिये चलीं। बहुतसे सैनिक उनकी रक्षामें नियुक्त थे ॥ ३९ ॥ वे प्रेममूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका चिन्तन करती हुई भगवती भवानीके पादपल्लवोंका दर्शन करनेके लिये पैदल ही चलीं ॥ ४० ॥ वे स्वयं मौन थीं और माताएँ तथा सखी-सहेलियाँ सब ओरसे उन्हें घेरे हुए थीं। शूरवीर राजसैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र उठाये, कवच पहने उनकी रक्षा कर रहे थे। उस समय मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, तुरही और भेरी आदि बाजे बज रहे थे ॥ ४१ ॥ बहुत-सी ब्राह्मणपत्नियाँ पुष्पमाला, चन्दन आदि सुगन्ध-द्रव्य और गहने-कपड़ोंसे सज-धजकर साथ-साथ चल रही थीं और अनेकों प्रकारके उपहार तथा पूजन आदिकी सामग्री लेकर सहस्रों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ भी साथ थीं ॥ ४२ ॥ गवैये गाते जाते थे, बाजेवाले बाजे बजाते चलते थे और सूत, मागध तथा वंदीजन दुलहिनके चारों ओर जय-जयकार करते—विरद बखानते जा रहे थे ॥ ४३ ॥ देवीजीके मन्दिरमें पहुँचकर रुक्मिणीजीने अपने कमलके सदृश सुकोमल हाथ-पैर धोये, आचमन किया; इसके बाद बाहर-भीतरसे पवित्र एवं शान्तभावसे युक्त होकर अम्बिकादेवीके मन्दिरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ बहुत-सी विधि-विधान जाननेवाली बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मणियाँ उनके साथ थीं। उन्होंने भगवान् शङ्करकी अर्द्धाङ्गिनी भवानीको और भगवान् शङ्करजीको भी रुक्मिणीजीसे प्रणाम करवाया ॥ ४५ ॥ रुक्मिणीजीने भगवतीसे प्रार्थना की—'अम्बिका माता ! आपकी गोदमें बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजीको तथा आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरी अभिलाषा पूर्ण हो। भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों' ॥ ४६ ॥ इसके बाद रुक्मिणीजीने जल, गन्ध, अक्षत,

अ० ५३] * दशम स्कन्ध * ७१९

ही भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए वे ब्राह्मणदेवता आ गये और उन्होंने अन्तःपुरमें राजकुमारी रुक्मिणीको इस प्रकार देखा, मानो कोई ध्यानमग्न देवी हो ॥ २८ ॥ सती रुक्मिणीजीने देखा ब्राह्मण देवताका मुख प्रफुल्लित है। उनके मन और चेहरेपर किसी प्रकारकी घबड़ाहट नहीं है। वे उन्हें देखकर लक्षणोंसे ही समझ गयीं कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये। फिर प्रसन्नतासे खिलकर उन्होंने ब्राह्मणदेवतासे पूछा ॥ २९ ॥ तब ब्राह्मणदेवताने निवेदन किया कि 'भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधार गये हैं।' और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह भी बतलाया कि 'राजकुमारीजी ! आपको ले जानेकी उन्होंने सत्य प्रतिज्ञा की है' ॥ ३० ॥ भगवान्‌के शुभागमनका समाचार सुनकर रुक्मिणीजीका हृदय आनन्दातिरेकसे भर गया। उन्होंने इसके बदलेमें ब्राह्मणके लिये भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ प्रिय न देखकर उन्होंने केवल नमस्कार कर लिया। अर्थात् जगत्‌की समग्र लक्ष्मी ब्राह्मणदेवताको सौंप दी ॥ ३१ ॥

राजा भीष्मकने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुकतावश यहाँ पधारे हैं। तब तुरही, भेरी आदि बाजे बजवाते हुए पूजाकी सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी की ॥ ३२ ॥ और मधुपर्क, निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-उत्तम भेंट देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ ३३ ॥ भीष्मकजी बड़े बुद्धिमान् थे । भगवान्‌के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। उन्होंने भगवान्‌को सेना और साथियोंके सहित समस्त सामग्रियोंसे युक्त निवासस्थानमें ठहराया और उनका यथावत् आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३४ ॥ विदर्भराज भीष्मकजीके यहाँ निमन्त्रणमें जितने राजा आये थे, उन्होंने उनके पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सारी इच्छित वस्तुएँ देकर सबका खूब सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भ देशके नागरिकोंने जब सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तब वे लोग भगवान्‌के निवासस्थानपर आये और अपने नयनोंकी अंजलिमें भर-भरकर उनके वदनारविन्दका मधुर मकरन्द-रस पान करने लगे ॥ ३६ ॥ वे आपसमें इस प्रकार बातचीत करते थे—रुक्मिणी इन्हींकी अर्द्धाङ्गिनी होनेके योग्य है, और ये परम पवित्रमूर्ति श्यामसुन्दर रुक्मिणीके ही योग्य पति हैं। दूसरी कोई इनकी पत्नी होनेके योग्य नहीं है ॥ ३७ ॥ यदि हमने अपने पूर्वजन्म या इस जन्ममें कुछ भी सत्कर्म किया हो, तो त्रिलोक-विधाता भगवान् हमपर प्रसन्न हों और ऐसी कृपा करें कि श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण ही विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका पाणिग्रहण करें' ॥ ३८ ॥

परीक्षित् ! जिस समय प्रेम-परवश होकर पुरवासी-लोग परस्पर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, उसी समय रुक्मिणीजी अन्तःपुरसे निकलकर देवीजीके मन्दिरके लिये चलीं। बहुतसे सैनिक उनकी रक्षामें नियुक्त थे ॥ ३९ ॥ वे प्रेममूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका चिन्तन करती हुई भगवती भवानीके पादपल्लवोंका दर्शन करनेके लिये पैदल ही चलीं ॥ ४० ॥ वे स्वयं मौन थीं और माताएँ तथा सखी-सहेलियाँ सब ओरसे उन्हें घेरे हुए थीं। शूरवीर राजसैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र उठाये, कवच पहने उनकी रक्षा कर रहे थे। उस समय मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, तुरही और भेरी आदि बाजे बज रहे थे ॥ ४१ ॥ बहुत-सी ब्राह्मणपत्नियाँ पुष्पमाला, चन्दन आदि सुगन्ध-द्रव्य और गहने-कपड़ोंसे सज-धजकर साथ-साथ चल रही थीं और अनेकों प्रकारके उपहार तथा पूजन आदिकी सामग्री लेकर सहस्रों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ भी साथ थीं ॥ ४२ ॥ गवैये गाते जाते थे, बाजेवाले बाजे बजाते चलते थे और सूत, मागध तथा वंदीजन दुलहिनके चारों ओर जय-जयकार करते—विरद बखानते जा रहे थे ॥ ४३ ॥ देवीजीके मन्दिरमें पहुँचकर रुक्मिणीजीने अपने कमलके सदृश सुकोमल हाथ-पैर धोये, आचमन किया; इसके बाद बाहर-भीतरसे पवित्र एवं शान्तभावसे युक्त होकर अम्बिकादेवीके मन्दिरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ बहुत-सी विधि-विधान जाननेवाली बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मणियाँ उनके साथ थीं। उन्होंने भगवान् शङ्करकी अर्द्धाङ्गिनी भवानीको और भगवान् शङ्करजीको भी रुक्मिणीजीसे प्रणाम करवाया ॥ ४५ ॥ रुक्मिणीजीने भगवतीसे प्रार्थना की—'अम्बिका माता ! आपकी गोदमें बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजीको तथा आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरी अभिलाषा पूर्ण हो। भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों' ॥ ४६ ॥ इसके बाद रुक्मिणीजीने जल, गन्ध, अक्षत,

धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, हार, आभूषण, अनेकों प्रकारके नैवेद्य, भेंट और आरती आदि सामग्रियोंसे अम्बिका-देवीकी पूजा की॥ ४७॥ तदनन्तर उक्त सामग्रियोंसे तथा नमक, पूआ, पान, कण्ठसूत्र, फल और ईखसे सुहागिन ब्राह्मणियोंकी भी पूजा की॥ ४८॥ तब ब्राह्मणियोंने उन्हें प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये और दुलहिनने ब्राह्मणियों और माता अम्बिकाको नमस्कार करके प्रसाद ग्रहण किया॥ ४९॥ पूजा-अर्चाकी विधि समाप्त हो जानेपर उन्होंने मौनव्रत तोड़ दिया और रत्नजटित अँगूठीसे जगमगाते हुए करकमलके द्वारा एक सहेलीका हाथ पकड़कर वे गिरिजामन्दिरसे बाहर निकलीं॥ ५०॥

परीक्षित्! रुक्मिणीजी भगवान्‌की मायाके समान ही बड़े-बड़े धीर-वीरोंको भी मोहित कर लेनेवाली थीं। उनका कटिभाग बहुत ही सुन्दर और पतला था। मुखमण्डलपर कुण्डलोंकी शोभा जगमगा रही थी। वे किशोर और तरुण अवस्थाकी सन्धिमें स्थित थीं। नितम्बपर जड़ाऊ करधनी शोभायमान हो रही थी, वक्षःस्थल कुछ उभरे हुए थे और उनकी दृष्टि लटकती हुई अलकोंके कारण कुछ चञ्चल हो रही थी॥ ५१॥ उनके होठोंपर मनोहर मुसकान थी। उनके दाँतोंकी पाँत थी तो कुन्दकलीके समान परम उज्ज्वल, परन्तु पके हुए कुँदरूके समान लाल-लाल होठोंकी चमकसे उसपर भी लालिमा आ गयी थी। उनके पाँवोंके पायजेब चमक रहे थे और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे घुँघरू रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। वे अपने सुकुमार चरण-कमलोंसे पैदल ही राजहंसकी गतिसे चल रही थीं। उनकी वह अपूर्व छबि देखकर वहाँ आये हुए बड़े-बड़े यशस्वी वीर सब मोहित हो गये। कामदेवने ही भगवान्‌का कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने बाणोंसे उनका हृदय जर्जर कर दिया॥ ५२॥

रुक्मिणीजी इस प्रकार इस उत्सव-यात्राके बहाने मन्द-मन्द गतिसे चलकर भगवान् श्रीकृष्णपर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं। उन्हें देखकर और उनकी खुली मुसकान तथा लजीली चितवनपर अपना चित्त लुटाकर वे बड़े-बड़े नरपति एवं वीर इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र छूटकर गिर पड़े और वे स्वयं भी रथ, हाथी तथा घोड़ोंसे धरतीपर आ गिरे॥ ५३॥ इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा करती हुई अपने कमलकी कलीके समान सुकुमार चरणोंको बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं। उन्होंने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे मुखकी ओर लटकती हुई अलकें हटायीं और वहाँ आये हुए नरपतियोंकी ओर लजीली चितवनसे देखा। उसी समय उन्हें श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए॥ ५४॥ राजकुमारी रुक्मिणीजी रथपर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्णने समस्त शत्रुओंके देखते-देखते उनकी भीड़मेंसे रुक्मिणीजीको उठा लिया और उन सैकड़ों राजाओंके सिरपर पाँव रखकर उन्हें अपने उस रथपर बैठा लिया, जिसकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न लगा हुआ था॥ ५५॥ इसके बाद जैसे सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही रुक्मिणीजीको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी आदि यदुवंशियोंके साथ वहाँसे चल पड़े॥ ५६॥ उस समय जरासन्धके वशवर्ती अभिमानी राजाओंको अपना यह बड़ा भारी तिरस्कार और यश-कीर्तिका नाश सहन न हुआ। वे सब-के-सब चिढ़कर कहने लगे—'अहो, हमें धिक्कार है। आज हमलोग धनुष धारण करके खड़े ही रहे और ये ग्वाले, जैसे सिंहके भागको हरिन ले जायँ, उसी प्रकार हमारा सारा यश छीन ले गये'॥ ५७॥

चौवनवाँ अध्याय

शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कह सुनकर सब-के-सब राजा क्रोधसे आगबबूला हो उठे और कवच पहनकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो गये। अपनी-अपनी सेनाके साथ सब धनुष ले-लेकर भगवान्

७२० * श्रीमद्भागवत * [अ० ५४

धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, हार, आभूषण, अनेकों प्रकारके नैवेद्य, भेंट और आरती आदि सामग्रियोंसे अम्बिका-देवीकी पूजा की॥ ४७॥ तदनन्तर उक्त सामग्रियोंसे तथा नमक, पूआ, पान, कण्ठसूत्र, फल और ईखसे सुहागिन ब्राह्मणियोंकी भी पूजा की॥ ४८॥ तब ब्राह्मणियोंने उन्हें प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये और दुलहिनने ब्राह्मणियों और माता अम्बिकाको नमस्कार करके प्रसाद ग्रहण किया॥ ४९॥ पूजा-अर्चाकी विधि समाप्त हो जानेपर उन्होंने मौनव्रत तोड़ दिया और रत्नजटित अँगूठीसे जगमगाते हुए करकमलके द्वारा एक सहेलीका हाथ पकड़कर वे गिरिजामन्दिरसे बाहर निकलीं॥ ५०॥

परीक्षित्! रुक्मिणीजी भगवान्‌की मायाके समान ही बड़े-बड़े धीर-वीरोंको भी मोहित कर लेनेवाली थीं। उनका कटिभाग बहुत ही सुन्दर और पतला था। मुखमण्डलपर कुण्डलोंकी शोभा जगमगा रही थी। वे किशोर और तरुण अवस्थाकी सन्धिमें स्थित थीं। नितम्बपर जड़ाऊ करधनी शोभायमान हो रही थी, वक्षःस्थल कुछ उभरे हुए थे और उनकी दृष्टि लटकती हुई अलकोंके कारण कुछ चञ्चल हो रही थी॥ ५१॥ उनके होठोंपर मनोहर मुसकान थी। उनके दाँतोंकी पाँत थी तो कुन्दकलीके समान परम उज्ज्वल, परन्तु पके हुए कुँदरूके समान लाल-लाल होठोंकी चमकसे उसपर भी लालिमा आ गयी थी। उनके पाँवोंके पायजेब चमक रहे थे और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे घुँघरू रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। वे अपने सुकुमार चरण-कमलोंसे पैदल ही राजहंसकी गतिसे चल रही थीं। उनकी वह अपूर्व छबि देखकर वहाँ आये हुए बड़े-बड़े यशस्वी वीर सब मोहित हो गये। कामदेवने ही भगवान्‌का कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने बाणोंसे उनका हृदय जर्जर कर दिया॥ ५२॥

रुक्मिणीजी इस प्रकार इस उत्सव-यात्राके बहाने मन्द-मन्द गतिसे चलकर भगवान् श्रीकृष्णपर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं। उन्हें देखकर और उनकी खुली मुसकान तथा लजीली चितवनपर अपना चित्त लुटाकर वे बड़े-बड़े नरपति एवं वीर इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र छूटकर गिर पड़े और वे स्वयं भी रथ, हाथी तथा घोड़ोंसे धरतीपर आ गिरे॥ ५३॥ इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा करती हुई अपने कमलकी कलीके समान सुकुमार चरणोंको बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं। उन्होंने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे मुखकी ओर लटकती हुई अलकें हटायीं और वहाँ आये हुए नरपतियोंकी ओर लजीली चितवनसे देखा। उसी समय उन्हें श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए॥ ५४॥ राजकुमारी रुक्मिणीजी रथपर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्णने समस्त शत्रुओंके देखते-देखते उनकी भीड़मेंसे रुक्मिणीजीको उठा लिया और उन सैकड़ों राजाओंके सिरपर पाँव रखकर उन्हें अपने उस रथपर बैठा लिया, जिसकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न लगा हुआ था॥ ५५॥ इसके बाद जैसे सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही रुक्मिणीजीको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी आदि यदुवंशियोंके साथ वहाँसे चल पड़े॥ ५६॥ उस समय जरासन्धके वशवर्ती अभिमानी राजाओंको अपना यह बड़ा भारी तिरस्कार और यश-कीर्तिका नाश सहन न हुआ। वे सब-के-सब चिढ़कर कहने लगे—'अहो, हमें धिक्कार है। आज हमलोग धनुष धारण करके खड़े ही रहे और ये ग्वाले, जैसे सिंहके भागको हरिन ले जायँ, उसी प्रकार हमारा सारा यश छीन ले गये'॥ ५७॥

चौवनवाँ अध्याय

शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कह सुनकर सब-के-सब राजा क्रोधसे आगबबूला हो उठे और कवच पहनकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो गये। अपनी-अपनी सेनाके साथ सब धनुष ले-लेकर भगवान्

श्रीकृष्णके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ राजन्! जब यदुवंशियोंके सेनापतियोंने देखा कि शत्रुदल हमपर चढ़ा आ रहा है, तब उन्होंने भी अपने-अपने धनुषका टङ्कार किया और घूमकर उनके सामने डट गये ॥ २ ॥ जरासन्धकी सेनाके लोग कोई घोड़ेपर, कोई हाथीपर, तो कोई रथपर चढ़े हुए थे। वे सभी धनुर्वेदके बड़े मर्मज्ञ थे। वे यदुवंशियोंपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, मानो दल-के-दल बादल पहाड़ोंपर मूसलधार पानी बरसा रहे हों ॥ ३ ॥ परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने देखा कि उनके पति श्रीकृष्णकी सेना बाण-वर्षासे ढक गयी है। तब उन्होंने लज्जाके साथ भयभीत नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा ॥ ४ ॥ भगवान्ने हँसकर कहा—'सुन्दरी! डरो मत। तुम्हारी सेना अभी तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको नष्ट किये डालती है' ॥ ५ ॥ इधर गद और सङ्कर्षण आदि यदुवंशी वीर अपने शत्रुओंका पराक्रम और अधिक न सह सके। वे अपने बाणोंसे शत्रुओंके हाथी, घोड़े तथा रथोंको छिन्न-भिन्न करने लगे ॥ ६ ॥ उनके बाणोंसे रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठे विपक्षी वीरोंके कुण्डल, किरीट और पगड़ियोंसे सुशोभित करोड़ों सिर, खड्ग, गदा और धनुषयुक्त हाथ, पहुँचे, जाँघें और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। इसी प्रकार घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और मनुष्योंके सिर भी कट-कटकर रणभूमिमें लोटने लगे ॥ ७-८ ॥ अन्तमें विजयकी सच्ची आकाङ्क्षावाले यदुवंशियोंने शत्रुओंकी सेना तहस-नहस कर डाली। जरासन्ध आदि सभी राजा युद्धसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए ॥ ९ ॥

उधर शिशुपाल अपनी भावी पत्नीके छिन जानेके कारण मरणासन्न-सा हो रहा था। न तो उसके हृदयमें उत्साह रह गया था और न तो शरीरपर कान्ति। उसका मुँह सूख रहा था। उसके पास जाकर जरासन्ध कहने लगा— ॥ १० ॥ 'शिशुपालजी! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं, यह उदासी छोड़ दीजिये। क्योंकि राजन्! कोई भी बात सर्वदा अपने मनके अनुकूल ही हो या प्रतिकूल ही हो, इस सम्बन्धमें कुछ स्थिरता किसी भी प्राणीके जीवनमें नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ जैसे कठपुतली बाजीगरकी इच्छाके अनुसार नाचती है, वैसे ही यह जीव भी भगवदिच्छाके अधीन रहकर सुख और दुःखके सम्बन्धमें यथाशक्ति चेष्टा करता रहता है ॥ १२ ॥ देखिये, श्रीकृष्णने मुझे तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेनाओंके साथ सत्रह बार हरा दिया, मैंने केवल एक बार—अठारहवीं बार उनपर विजय प्राप्त की ॥ १३ ॥ फिर भी इस बातको लेकर मैं न तो कभी शोक करता हूँ और न तो कभी हर्ष; क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रारब्धके अनुसार काल भगवान् ही इस चराचर जगत्को झकझोरते रहते हैं ॥ १४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बड़े-बड़े वीर सेनापतियोंके भी नायक हैं। फिरभी, इस समय श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेनाने हमें हरा दिया है ॥ १५ ॥ इस बार हमारे शत्रुओंकी ही जीत हुई, क्योंकि काल उन्हींके अनुकूल था। जब काल हमारे दाहिने होगा, तब हम भी उन्हें जीत लेंगे' ॥ १६ ॥ परीक्षित्! जब मित्रोंने इस प्रकार समझाया, तब चेदिराज शिशुपाल अपने अनुयायियोंके साथ अपनी राजधानीको लौट गया और उसके मित्र राजा भी, जो मरनेसे बचे थे, अपने-अपने नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥

रुक्मिणीजीका बड़ा भाई रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णसे बहुत द्वेष रखता था। उसको यह बात बिल्कुल सहन न हुई कि मेरी बहिनको श्रीकृष्ण हर ले जायँ और राक्षसरीतिसे बलपूर्वक उसके साथ विवाह करें। रुक्मी बली तो था ही, उसने एक अक्षौहिणी सेना साथ ले ली और श्रीकृष्णका पीछा किया ॥ १८ ॥ महाबाहु रुक्मी क्रोधके मारे जल रहा था। उसने कवच पहनकर और धनुष धारण करके समस्त नरपतियोंके सामने यह प्रतिज्ञा की— ॥ १९ ॥ 'मैं आपलोगोंके बीचमें यह शपथ करता हूँ कि यदि मैं युद्धमें श्रीकृष्णको न मार सका और अपनी बहिन रुक्मिणीको न लौटा सका तो अपनी राजधानी कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा' ॥ २० ॥ परीक्षित्! यह कहकर वह रथपर सवार हो गया और सारथिसे बोला—'जहाँ कृष्ण हो वहाँ शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ ले चलो। आज मेरा उसीके साथ युद्ध होगा ॥ २१ ॥ आज मैं अपने तीखे बाणोंसे उस खोटी बुद्धिवाले ग्वालेके बलवीर्यका घमंड चूर-चूर कर दूँगा। देखो तो उसका साहस, वह हमारी बहिनको बलपूर्वक हर ले गया है' ॥ २२ ॥ परीक्षित्! रुक्मीकी बुद्धि बिगड़ गयी थी। वह भगवान्के तेज-प्रभावको बिल्कुल नहीं जानता था। इसीसे इस प्रकार बहक-बहककर बातें करता हुआ वह एक ही रथसे श्रीकृष्णके पास पहुँचकर ललकारने

अ० ५४] * दशम स्कन्ध * ७२१

श्रीकृष्णके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ राजन्! जब यदुवंशियोंके सेनापतियोंने देखा कि शत्रुदल हमपर चढ़ा आ रहा है, तब उन्होंने भी अपने-अपने धनुषका टङ्कार किया और घूमकर उनके सामने डट गये ॥ २ ॥ जरासन्धकी सेनाके लोग कोई घोड़ेपर, कोई हाथीपर, तो कोई रथपर चढ़े हुए थे। वे सभी धनुर्वेदके बड़े मर्मज्ञ थे। वे यदुवंशियोंपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, मानो दल-के-दल बादल पहाड़ोंपर मूसलधार पानी बरसा रहे हों ॥ ३ ॥ परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने देखा कि उनके पति श्रीकृष्णकी सेना बाण-वर्षासे ढक गयी है। तब उन्होंने लज्जाके साथ भयभीत नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा ॥ ४ ॥ भगवान्ने हँसकर कहा—'सुन्दरी! डरो मत। तुम्हारी सेना अभी तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको नष्ट किये डालती है' ॥ ५ ॥ इधर गद और सङ्कर्षण आदि यदुवंशी वीर अपने शत्रुओंका पराक्रम और अधिक न सह सके। वे अपने बाणोंसे शत्रुओंके हाथी, घोड़े तथा रथोंको छिन्न-भिन्न करने लगे ॥ ६ ॥ उनके बाणोंसे रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठे विपक्षी वीरोंके कुण्डल, किरीट और पगड़ियोंसे सुशोभित करोड़ों सिर, खड्ग, गदा और धनुषयुक्त हाथ, पहुँचे, जाँघें और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। इसी प्रकार घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और मनुष्योंके सिर भी कट-कटकर रणभूमिमें लोटने लगे ॥ ७-८ ॥ अन्तमें विजयकी सच्ची आकाङ्क्षावाले यदुवंशियोंने शत्रुओंकी सेना तहस-नहस कर डाली। जरासन्ध आदि सभी राजा युद्धसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए ॥ ९ ॥

उधर शिशुपाल अपनी भावी पत्नीके छिन जानेके कारण मरणासन्न-सा हो रहा था। न तो उसके हृदयमें उत्साह रह गया था और न तो शरीरपर कान्ति। उसका मुँह सूख रहा था। उसके पास जाकर जरासन्ध कहने लगा— ॥ १० ॥ 'शिशुपालजी! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं, यह उदासी छोड़ दीजिये। क्योंकि राजन्! कोई भी बात सर्वदा अपने मनके अनुकूल ही हो या प्रतिकूल ही हो, इस सम्बन्धमें कुछ स्थिरता किसी भी प्राणीके जीवनमें नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ जैसे कठपुतली बाजीगरकी इच्छाके अनुसार नाचती है, वैसे ही यह जीव भी भगवदिच्छाके अधीन रहकर सुख और दुःखके सम्बन्धमें यथाशक्ति चेष्टा करता रहता है ॥ १२ ॥ देखिये, श्रीकृष्णने मुझे तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेनाओंके साथ सत्रह बार हरा दिया, मैंने केवल एक बार—अठारहवीं बार उनपर विजय प्राप्त की ॥ १३ ॥ फिर भी इस बातको लेकर मैं न तो कभी शोक करता हूँ और न तो कभी हर्ष; क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रारब्धके अनुसार काल भगवान् ही इस चराचर जगत्को झकझोरते रहते हैं ॥ १४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बड़े-बड़े वीर सेनापतियोंके भी नायक हैं। फिरभी, इस समय श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेनाने हमें हरा दिया है ॥ १५ ॥ इस बार हमारे शत्रुओंकी ही जीत हुई, क्योंकि काल उन्हींके अनुकूल था। जब काल हमारे दाहिने होगा, तब हम भी उन्हें जीत लेंगे' ॥ १६ ॥ परीक्षित्! जब मित्रोंने इस प्रकार समझाया, तब चेदिराज शिशुपाल अपने अनुयायियोंके साथ अपनी राजधानीको लौट गया और उसके मित्र राजा भी, जो मरनेसे बचे थे, अपने-अपने नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥

रुक्मिणीजीका बड़ा भाई रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णसे बहुत द्वेष रखता था। उसको यह बात बिल्कुल सहन न हुई कि मेरी बहिनको श्रीकृष्ण हर ले जायँ और राक्षसरीतिसे बलपूर्वक उसके साथ विवाह करें। रुक्मी बली तो था ही, उसने एक अक्षौहिणी सेना साथ ले ली और श्रीकृष्णका पीछा किया ॥ १८ ॥ महाबाहु रुक्मी क्रोधके मारे जल रहा था। उसने कवच पहनकर और धनुष धारण करके समस्त नरपतियोंके सामने यह प्रतिज्ञा की— ॥ १९ ॥ 'मैं आपलोगोंके बीचमें यह शपथ करता हूँ कि यदि मैं युद्धमें श्रीकृष्णको न मार सका और अपनी बहिन रुक्मिणीको न लौटा सका तो अपनी राजधानी कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा' ॥ २० ॥ परीक्षित्! यह कहकर वह रथपर सवार हो गया और सारथिसे बोला—'जहाँ कृष्ण हो वहाँ शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ ले चलो। आज मेरा उसीके साथ युद्ध होगा ॥ २१ ॥ आज मैं अपने तीखे बाणोंसे उस खोटी बुद्धिवाले ग्वालेके बलवीर्यका घमंड चूर-चूर कर दूँगा। देखो तो उसका साहस, वह हमारी बहिनको बलपूर्वक हर ले गया है' ॥ २२ ॥ परीक्षित्! रुक्मीकी बुद्धि बिगड़ गयी थी। वह भगवान्के तेज-प्रभावको बिल्कुल नहीं जानता था। इसीसे इस प्रकार बहक-बहककर बातें करता हुआ वह एक ही रथसे श्रीकृष्णके पास पहुँचकर ललकारने

लगा—'खड़ा रह ! खड़ा रह !' ॥ २३ ॥ उसने अपने धनुषको बलपूर्वक खींचकर भगवान् श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा—'एक क्षण मेरे सामने ठहर ! यदुवंशियोंके कुलकलङ्क ! जैसे कौआ होमकी सामग्री चुराकर उड़ जाय, वैसे ही तू मेरी बहिनको चुराकर कहाँ भागा जा रहा है ? अरे मन्द ! तू बड़ा मायावी और कपट-युद्धमें कुशल है। आज मैं तेरा सारा गर्व खर्व किये डालता हूँ ॥ २४-२५ ॥ देख ! जबतक मेरे बाण तुझे धरतीपर सुला नहीं देते, उसके पहले ही इस बच्चीको छोड़कर भाग जा।' रुक्मीकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे। उन्होंने उसका धनुष काट डाला और उसपर छः बाण छोड़े ॥ २६ ॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने आठ बाण उसके चार घोड़ोंपर और दो सारथि पर छोड़े और तीन बाणोंसे उसके रथकी ध्वजाको काट डाला। तब रुक्मीने दूसरा धनुष उठाया और भगवान् श्रीकृष्णको पाँच बाण मारे ॥ २७ ॥ उन बाणोंके लगनेपर उन्होंने उसका वह धनुष भी काट डाला। रुक्मीने इसके बाद एक और धनुष लिया, परन्तु हाथमें लेते-ही-लेते अविनाशी अच्युतने उसे भी काट डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार रुक्मीने परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति और तोमर—जितने अस्त्र-शस्त्र उठाये, उन सभीको भगवान्‌ने प्रहार करनेके पहले ही काट डाला ॥ २९ ॥ अब रुक्मी क्रोधवश हाथमें तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे रथसे कूद पड़ा और इस प्रकार उनकी ओर झपटा, जैसे पतिंगा आगकी ओर लपकता है ॥ ३० ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि रुक्मी मुझपर चोट करना चाहता है, तब उन्होंने अपने बाणोंसे उसकी ढाल-तलवारको तिल-तिल करके काट दिया और उसको मार डालनेके लिये हाथमें तीखी तलवार निकाल ली ॥ ३१ ॥ जब रुक्मिणीजीने देखा कि ये तो हमारे भाईको अब मार ही डालना चाहते हैं, तब वे भयसे विह्वल हो गयीं और अपने प्रियतम पति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर गिरकर करुण-स्वरमें बोलीं— ॥ ३२ ॥ 'देवताओंके भी आराध्यदेव ! जगत्पते ! आप योगेश्वर हैं। आपके स्वरूप और इच्छाओंको कोई जान नहीं सकता। आप परम बलवान् हैं; परन्तु कल्याण-स्वरूप भी तो हैं। प्रभो ! मेरे भैयाको मारना आपके योग्य काम नहीं है' ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रुक्मिणीजीका एक-एक अङ्ग भयके मारे थर-थर काँप रहा था। शोककी प्रबलतासे मुँह सूख गया था, गला रुँध गया था। आतुरतावश सोनेका हार गलेसे गिर पड़ा था और इसी अवस्थामें वे भगवान्‌के चरणकमल पकड़े हुए थीं। परमदयालु भगवान् उन्हें भयभीत देखकर करुणासे द्रवित हो गये। उन्होंने रुक्मीको मार डालनेका विचार छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ फिर भी रुक्मी उनके अनिष्टकी चेष्टासे विमुख न हुआ। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसको उसीके दुपट्टेसे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी-मूँछ तथा केश कई जगहसे मूँड़कर उसे कुरूप बना दिया। तबतक यदुवंशी वीरोंने शत्रुकी अद्भुत सेनाको तहस-नहस कर डाला—ठीक वैसे ही, जैसे हाथी कमलवनको रौंद डालता है ॥ ३५ ॥ फिर वे लोग उधरसे लौटकर श्रीकृष्णके पास आये, तो देखा कि रुक्मी दुपट्टेसे बँधा हुआ अधमरी अवस्थामें पड़ा हुआ है। उसे देखकर सर्वशक्तिमान् भगवान् बलरामजीको बड़ी दया आयी और उन्होंने उसके बन्धन खोलकर उसे छोड़ दिया तथा श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३६ ॥ 'कृष्ण ! तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह निन्दित कार्य हमलोगोंके योग्य नहीं है। अपने सम्बन्धीकी दाढ़ी-मूँछ मूँड़कर उसे कुरूप कर देना, यह तो एक प्रकारका वध ही है' ॥ ३७ ॥ इसके बाद बलरामजीने रुक्मिणीको सम्बोधन करके कहा—'साध्वी ! तुम्हारे भाईका रूप विकृत कर दिया गया है, यह सोचकर हमलोगोंसे बुरा न मानना; क्योंकि जीवको सुख-दुख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है। उसे तो अपने ही कर्मका फल भोगना पड़ता है' ॥ ३८ ॥ अब श्रीकृष्णसे बोले—'कृष्ण ! यदि अपना सगा-सम्बन्धी वध करनेयोग्य अपराध करे, तो भी अपने ही सम्बन्धियोंके द्वारा उसका मारा जाना उचित नहीं है। उसे छोड़ देना चाहिये। वह तो अपने अपराधसे ही मर चुका है, मरे हुएको फिर क्या मारना ?' ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी ! ब्रह्माजीने क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा बना दिया है कि सगा भाई भी अपने भाईको मार डालता है। इसलिये यह क्षात्रधर्म अत्यन्त घोर है' ॥ ४० ॥ इसके बाद श्रीकृष्णसे बोले—'भाई कृष्ण !

७२२ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५४

लगा—'खड़ा रह ! खड़ा रह !' ॥ २३ ॥ उसने अपने धनुषको बलपूर्वक खींचकर भगवान् श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा—'एक क्षण मेरे सामने ठहर ! यदुवंशियोंके कुलकलङ्क ! जैसे कौआ होमकी सामग्री चुराकर उड़ जाय, वैसे ही तू मेरी बहिनको चुराकर कहाँ भागा जा रहा है ? अरे मन्द ! तू बड़ा मायावी और कपट-युद्धमें कुशल है। आज मैं तेरा सारा गर्व खर्व किये डालता हूँ ॥ २४-२५ ॥ देख ! जबतक मेरे बाण तुझे धरतीपर सुला नहीं देते, उसके पहले ही इस बच्चीको छोड़कर भाग जा।' रुक्मीकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे। उन्होंने उसका धनुष काट डाला और उसपर छः बाण छोड़े ॥ २६ ॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने आठ बाण उसके चार घोड़ोंपर और दो सारथि पर छोड़े और तीन बाणोंसे उसके रथकी ध्वजाको काट डाला। तब रुक्मीने दूसरा धनुष उठाया और भगवान् श्रीकृष्णको पाँच बाण मारे ॥ २७ ॥ उन बाणोंके लगनेपर उन्होंने उसका वह धनुष भी काट डाला। रुक्मीने इसके बाद एक और धनुष लिया, परन्तु हाथमें लेते-ही-लेते अविनाशी अच्युतने उसे भी काट डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार रुक्मीने परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति और तोमर—जितने अस्त्र-शस्त्र उठाये, उन सभीको भगवान्‌ने प्रहार करनेके पहले ही काट डाला ॥ २९ ॥ अब रुक्मी क्रोधवश हाथमें तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे रथसे कूद पड़ा और इस प्रकार उनकी ओर झपटा, जैसे पतिंगा आगकी ओर लपकता है ॥ ३० ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि रुक्मी मुझपर चोट करना चाहता है, तब उन्होंने अपने बाणोंसे उसकी ढाल-तलवारको तिल-तिल करके काट दिया और उसको मार डालनेके लिये हाथमें तीखी तलवार निकाल ली ॥ ३१ ॥ जब रुक्मिणीजीने देखा कि ये तो हमारे भाईको अब मार ही डालना चाहते हैं, तब वे भयसे विह्वल हो गयीं और अपने प्रियतम पति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर गिरकर करुण-स्वरमें बोलीं— ॥ ३२ ॥ 'देवताओंके भी आराध्यदेव ! जगत्पते ! आप योगेश्वर हैं। आपके स्वरूप और इच्छाओंको कोई जान नहीं सकता। आप परम बलवान् हैं; परन्तु कल्याण-स्वरूप भी तो हैं। प्रभो ! मेरे भैयाको मारना आपके योग्य काम नहीं है' ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रुक्मिणीजीका एक-एक अङ्ग भयके मारे थर-थर काँप रहा था। शोककी प्रबलतासे मुँह सूख गया था, गला रुँध गया था। आतुरतावश सोनेका हार गलेसे गिर पड़ा था और इसी अवस्थामें वे भगवान्‌के चरणकमल पकड़े हुए थीं। परमदयालु भगवान् उन्हें भयभीत देखकर करुणासे द्रवित हो गये। उन्होंने रुक्मीको मार डालनेका विचार छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ फिर भी रुक्मी उनके अनिष्टकी चेष्टासे विमुख न हुआ। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसको उसीके दुपट्टेसे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी-मूँछ तथा केश कई जगहसे मूँड़कर उसे कुरूप बना दिया। तबतक यदुवंशी वीरोंने शत्रुकी अद्भुत सेनाको तहस-नहस कर डाला—ठीक वैसे ही, जैसे हाथी कमलवनको रौंद डालता है ॥ ३५ ॥ फिर वे लोग उधरसे लौटकर श्रीकृष्णके पास आये, तो देखा कि रुक्मी दुपट्टेसे बँधा हुआ अधमरी अवस्थामें पड़ा हुआ है। उसे देखकर सर्वशक्तिमान् भगवान् बलरामजीको बड़ी दया आयी और उन्होंने उसके बन्धन खोलकर उसे छोड़ दिया तथा श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३६ ॥ 'कृष्ण ! तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह निन्दित कार्य हमलोगोंके योग्य नहीं है। अपने सम्बन्धीकी दाढ़ी-मूँछ मूँड़कर उसे कुरूप कर देना, यह तो एक प्रकारका वध ही है' ॥ ३७ ॥ इसके बाद बलरामजीने रुक्मिणीको सम्बोधन करके कहा—'साध्वी ! तुम्हारे भाईका रूप विकृत कर दिया गया है, यह सोचकर हमलोगोंसे बुरा न मानना; क्योंकि जीवको सुख-दुख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है। उसे तो अपने ही कर्मका फल भोगना पड़ता है' ॥ ३८ ॥ अब श्रीकृष्णसे बोले—'कृष्ण ! यदि अपना सगा-सम्बन्धी वध करनेयोग्य अपराध करे, तो भी अपने ही सम्बन्धियोंके द्वारा उसका मारा जाना उचित नहीं है। उसे छोड़ देना चाहिये। वह तो अपने अपराधसे ही मर चुका है, मरे हुएको फिर क्या मारना ?' ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी ! ब्रह्माजीने क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा बना दिया है कि सगा भाई भी अपने भाईको मार डालता है। इसलिये यह क्षात्रधर्म अत्यन्त घोर है' ॥ ४० ॥ इसके बाद श्रीकृष्णसे बोले—'भाई कृष्ण !

यह ठीक है कि जो लोग धनके नशेमें अंधे हो रहे हैं और अभिमानी हैं, वे राज्य, पृथ्वी, पैसा, स्त्री, मान, तेज अथवा किसी और कारणसे अपने बन्धुओंका भी तिरस्कार कर दिया करते हैं' ॥ ४१ ॥ अब वे रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी ! तुम्हारे भाई-बन्धु समस्त प्राणियोंके प्रति दुर्भाव रखते हैं। हमने उनके मङ्गलके लिये ही उनके प्रति दण्डविधान किया है। उसे तुम अज्ञानियोंकी भाँति अमङ्गल मान रही हो, यह तुम्हारी बुद्धिकी विषमता है ॥ ४२ ॥ देवि ! जो लोग भगवान्‌की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा मान बैठते हैं, उन्हींको ऐसा आत्ममोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है ॥ ४३ ॥ समस्त देहधारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जल और घड़ा आदि उपाधियोंके भेदसे जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशयुक्त पदार्थ और आकाश भिन्न-भिन्न मालूम पड़ते हैं; परन्तु हैं एक ही, वैसे ही मूर्ख लोग शरीरके भेदसे आत्माका भेद मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह शरीर आदि और अन्तवाला है। पञ्चभूत, पञ्चप्राण, तन्मात्रा और त्रिगुण ही इसका स्वरूप है। आत्मामें उसके अज्ञानसे ही इसकी कल्पना हुई है और वह कल्पित शरीर ही, जो उसे 'मैं समझता हैं', उसको जन्म-मृत्युके चक्करमें ले जाता है ॥ ४५ ॥ साध्वी ! नेत्र और रूप दोनों ही सूर्यके द्वारा प्रकाशित होते हैं। सूर्य ही उनका कारण है। इसलिये सूर्यके साथ नेत्र और रूपका न तो कभी वियोग होता है और न संयोग। इसी प्रकार समस्त संसारकी सत्ता आत्मसत्ताके कारण जान पड़ती है, समस्त संसारका प्रकाशक आत्मा ही है। फिर आत्माके साथ दूसरे असत् पदार्थोंका संयोग या वियोग हो ही कैसे सकता है ? ॥ ४६ ॥ जन्म लेना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और मरना—ये सारे विकार शरीरके ही होते हैं, आत्माके नहीं। जैसे कृष्णपक्षमें कलाओंका ही क्षय होता है, चन्द्रमाका नहीं, परंतु अमावस्याके दिन व्यवहारमें लोग चन्द्रमाका ही क्षय हुआ कहते-सुनते हैं; वैसे ही जन्म-मृत्यु आदि सारे विकार शरीरके ही होते हैं, परन्तु लोग उसे भ्रमवश अपना—अपने आत्माका मान लेते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न होनेपर भी स्वप्नमें भोक्ता, भोग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानी लोग झूठमूठ संसार-चक्रका अनुभव करते हैं ॥ ४८ ॥ इसलिये साध्वी ! अज्ञानके कारण होनेवाले इस शोकको त्याग दो। यह शोक अन्तःकरणको मुरझा देता है, मोहित कर देता है। इसलिये इसे छोड़कर तुम अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ' ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब बलरामजीने इस प्रकार समझाया, तब परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने अपने मनका मैल मिटाकर विवेक-बुद्धिसे उसका समाधान किया ॥ ५० ॥ रुक्मीकी सेना और उसके तेजका नाश हो चुका था। केवल प्राण बच रहे थे। उसके चित्तकी सारी आशा-अभिलाषाएँ व्यर्थ हो चुकी थीं और शत्रुओंने अपमानित करके उसे छोड़ दिया था। उसे अपने विरूप किये जानेकी कष्टदायक स्मृति भूल नहीं पाती थी ॥ ५१ ॥ अतः उसने अपने रहनेके लिये भोजकट नामकी एक बहुत बड़ी नगरी बसायी। उसने पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'दुर्बुद्धि कृष्णको मारे बिना और अपनी छोटी बहिनको लौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा।' इसलिये क्रोध करके वह वहीं रहने लगा ॥ ५२ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सब राजाओंको जीत लिया और विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीको द्वारकामें लाकर उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर-घर बड़ा ही उत्सव मनाया जाने लगा। क्यों न हो, वहाँके सभी लोगोंका यदुपति श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम जो था ॥ ५४ ॥ वहाँके सभी नर-नारी मणियोंके चमकीले कुण्डल धारण किये हुए थे। उन्होंने आनन्दसे भरकर चित्र-विचित्र वस्त्र पहने दूल्हा और दुलहिनको अनेकों भेंटकी सामग्रियाँ उपहारमें दीं ॥ ५५ ॥ उस समय द्वारकाकी अपूर्व शोभा हो रही थी। कहीं बड़ी-बड़ी पताकाएँ बहुत ऊँचेतक फहरा रही थीं। चित्र-विचित्र मालाएँ, वस्त्र और रत्नोंके तोरन बँधे हुए थे। द्वार-द्वारपर दूब, खील आदि मङ्गलकी वस्तुएँ सजायी हुई थीं। जलभरे कलश, अरगजा और धूपकी सुगन्ध तथा दीपावलीसे बड़ी ही विलक्षण शोभा हो रही थी ॥ ५६ ॥ मित्र नरपति आमन्त्रित किये गये थे। उनके मतवाले हाथियोंके मदसे द्वारकाकी सड़क और गलियोंका

अ० ५४] * दशम स्कन्ध * ७२३

यह ठीक है कि जो लोग धनके नशेमें अंधे हो रहे हैं और अभिमानी हैं, वे राज्य, पृथ्वी, पैसा, स्त्री, मान, तेज अथवा किसी और कारणसे अपने बन्धुओंका भी तिरस्कार कर दिया करते हैं' ॥ ४१ ॥ अब वे रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी ! तुम्हारे भाई-बन्धु समस्त प्राणियोंके प्रति दुर्भाव रखते हैं। हमने उनके मङ्गलके लिये ही उनके प्रति दण्डविधान किया है। उसे तुम अज्ञानियोंकी भाँति अमङ्गल मान रही हो, यह तुम्हारी बुद्धिकी विषमता है ॥ ४२ ॥ देवि ! जो लोग भगवान्‌की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा मान बैठते हैं, उन्हींको ऐसा आत्ममोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है ॥ ४३ ॥ समस्त देहधारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जल और घड़ा आदि उपाधियोंके भेदसे जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशयुक्त पदार्थ और आकाश भिन्न-भिन्न मालूम पड़ते हैं; परन्तु हैं एक ही, वैसे ही मूर्ख लोग शरीरके भेदसे आत्माका भेद मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह शरीर आदि और अन्तवाला है। पञ्चभूत, पञ्चप्राण, तन्मात्रा और त्रिगुण ही इसका स्वरूप है। आत्मामें उसके अज्ञानसे ही इसकी कल्पना हुई है और वह कल्पित शरीर ही, जो उसे 'मैं समझता हैं', उसको जन्म-मृत्युके चक्करमें ले जाता है ॥ ४५ ॥ साध्वी ! नेत्र और रूप दोनों ही सूर्यके द्वारा प्रकाशित होते हैं। सूर्य ही उनका कारण है। इसलिये सूर्यके साथ नेत्र और रूपका न तो कभी वियोग होता है और न संयोग। इसी प्रकार समस्त संसारकी सत्ता आत्मसत्ताके कारण जान पड़ती है, समस्त संसारका प्रकाशक आत्मा ही है। फिर आत्माके साथ दूसरे असत् पदार्थोंका संयोग या वियोग हो ही कैसे सकता है ? ॥ ४६ ॥ जन्म लेना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और मरना—ये सारे विकार शरीरके ही होते हैं, आत्माके नहीं। जैसे कृष्णपक्षमें कलाओंका ही क्षय होता है, चन्द्रमाका नहीं, परंतु अमावस्याके दिन व्यवहारमें लोग चन्द्रमाका ही क्षय हुआ कहते-सुनते हैं; वैसे ही जन्म-मृत्यु आदि सारे विकार शरीरके ही होते हैं, परन्तु लोग उसे भ्रमवश अपना—अपने आत्माका मान लेते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न होनेपर भी स्वप्नमें भोक्ता, भोग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानी लोग झूठमूठ संसार-चक्रका अनुभव करते हैं ॥ ४८ ॥ इसलिये साध्वी ! अज्ञानके कारण होनेवाले इस शोकको त्याग दो। यह शोक अन्तःकरणको मुरझा देता है, मोहित कर देता है। इसलिये इसे छोड़कर तुम अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ' ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब बलरामजीने इस प्रकार समझाया, तब परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने अपने मनका मैल मिटाकर विवेक-बुद्धिसे उसका समाधान किया ॥ ५० ॥ रुक्मीकी सेना और उसके तेजका नाश हो चुका था। केवल प्राण बच रहे थे। उसके चित्तकी सारी आशा-अभिलाषाएँ व्यर्थ हो चुकी थीं और शत्रुओंने अपमानित करके उसे छोड़ दिया था। उसे अपने विरूप किये जानेकी कष्टदायक स्मृति भूल नहीं पाती थी ॥ ५१ ॥ अतः उसने अपने रहनेके लिये भोजकट नामकी एक बहुत बड़ी नगरी बसायी। उसने पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'दुर्बुद्धि कृष्णको मारे बिना और अपनी छोटी बहिनको लौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा।' इसलिये क्रोध करके वह वहीं रहने लगा ॥ ५२ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सब राजाओंको जीत लिया और विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीको द्वारकामें लाकर उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर-घर बड़ा ही उत्सव मनाया जाने लगा। क्यों न हो, वहाँके सभी लोगोंका यदुपति श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम जो था ॥ ५४ ॥ वहाँके सभी नर-नारी मणियोंके चमकीले कुण्डल धारण किये हुए थे। उन्होंने आनन्दसे भरकर चित्र-विचित्र वस्त्र पहने दूल्हा और दुलहिनको अनेकों भेंटकी सामग्रियाँ उपहारमें दीं ॥ ५५ ॥ उस समय द्वारकाकी अपूर्व शोभा हो रही थी। कहीं बड़ी-बड़ी पताकाएँ बहुत ऊँचेतक फहरा रही थीं। चित्र-विचित्र मालाएँ, वस्त्र और रत्नोंके तोरन बँधे हुए थे। द्वार-द्वारपर दूब, खील आदि मङ्गलकी वस्तुएँ सजायी हुई थीं। जलभरे कलश, अरगजा और धूपकी सुगन्ध तथा दीपावलीसे बड़ी ही विलक्षण शोभा हो रही थी ॥ ५६ ॥ मित्र नरपति आमन्त्रित किये गये थे। उनके मतवाले हाथियोंके मदसे द्वारकाकी सड़क और गलियोंका

छिड़काव हो गया था। प्रत्येक दरवाजेपर केलोंके खंभे और सुपारीके पेड़ रोपे हुए बहुत ही भले मालूम होते थे॥ ५७॥ उस उत्सवमें कुतूहलवश इधर-उधर दौड़-धूप करते हुए बन्धुवर्गोंमें कुरु, सृञ्जय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग परस्पर आनन्द मना रहे थे॥ ५८॥ जहाँ-तहाँ रुक्मिणी-हरणकी ही गाथा गायी जाने लगी। उसे सुनकर राजा और राजकन्याएँ अत्यन्त विस्मित हो गयीं॥ ५९॥ महाराज! भगवती लक्ष्मीजीको रुक्मिणीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णके साथ देखकर द्वारकावासी नर-नारियोंको परम आनन्द हुआ॥ ६०॥

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कामदेव भगवान् वासुदेवके ही अंश हैं। वे पहले रुद्रभगवान्की क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे। अब फिर शरीर-प्राप्तिके लिये उन्होंने अपने अंशी भगवान् वासुदेवका ही आश्रय लिया॥ १॥ वे ही काम अबकी बार भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीजीके गर्भसे उत्पन्न हुए और प्रद्युम्न नामसे जगत्में प्रसिद्ध हुए। सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुणोंमें भगवान् श्रीकृष्णसे वे किसी प्रकार कम न थे॥ २॥ बालक प्रद्युम्न अभी दस दिनके भी न हुए थे कि कामरूपी शम्बरासुर वेष बदलकर सूतिकागृहसे उन्हें हर ले गया और समुद्रमें फेंककर अपने घर लौट गया। उसे मालूम हो गया था कि यह मेरा भावी शत्रु है॥ ३॥ समुद्रमें बालक प्रद्युम्नको एक बड़ा भारी मच्छ निगल गया। तदनन्तर मछुओंने अपने बहुत बड़े जालमें फँसाकर दूसरी मछलियोंके साथ उस मच्छको भी पकड़ लिया॥ ४॥ और उन्होंने उसे ले जाकर शम्बरासुरको भेंटके रूपमें दे दिया। शम्बरासुरके रसोइये उस अद्भुत मच्छको उठाकर रसोईघरमें ले आये और कुल्हाड़ियोंसे उसे काटने लगे॥ ५॥ रसोइयोंने मत्स्यके पेटमें बालक देखकर उसे शम्बरासुरकी दासी मायावतीको समर्पित किया। उसके मनमें बड़ी शंका हुई। तब नारदजीने आकर बालकका कामदेव होना, श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणीके गर्भसे जन्म लेना, मच्छके पेटमें जाना सब कुछ कह सुनाया॥ ६॥ परीक्षित्! वह मायावती कामदेवकी यशस्विनी पत्नी रति ही थी। जिस दिन शङ्करजीके क्रोधसे कामदेवका शरीर भस्म हो गया था, उसी दिनसे वह उसकी देहके पुनः उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी॥ ७॥ उसी रतिको शम्बरासुरने अपने यहाँ दाल-भात बनानेके काममें नियुक्त कर रक्खा था। जब उसे मालूम हुआ कि इस शिशुके रूपमें मेरे पति कामदेव ही हैं, तब वह उसके प्रति बहुत प्रेम करने लगी॥ ८॥ श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रद्युम्न बहुत थोड़े दिनोंमें जवान हो गये। उनका रूप-लावण्य इतना अद्भुत था कि जो स्त्रियाँ उनकी ओर देखतीं, उनके मनमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन हो जाता॥ ९॥ कमलदलके समान कोमल एवं विशाल नेत्र, घुटनोंतक लंबी-लंबी बाँहें और मनुष्यलोकमें सबसे सुन्दर शरीर! रति सलज्ज हास्यके साथ भौंह मटकाकर उनकी ओर देखती और प्रेमसे भरकर स्त्री-पुरुषसम्बन्धी भाव व्यक्त करती हुई उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती॥ १०॥ श्रीकृष्णनन्दन भगवान् प्रद्युम्नने उसके भावोंमें परिवर्तन देखकर कहा—'देवि! तुम तो मेरी माँके समान हो। तुम्हारी बुद्धि उलटी कैसे हो गयी? मैं देखता हूँ कि तुम माताका भाव छोड़कर कामिनीके समान हाव-भाव दिखा रही हो'॥ ११॥

रतिने कहा—'प्रभो! आप स्वयं भगवान् नारायणके पुत्र हैं। शम्बरासुर आपको सूतिकागृहसे चुरा लाया था। आप मेरे पति स्वयं कामदेव हैं और मैं आपकी सदाकी धर्मपत्नी रति हूँ॥ १२॥ मेरे स्वामी! जब आप दस दिनके भी न थे, तब इस शम्बरासुरने आपको हरकर समुद्रमें डाल दिया था। वहाँ एक मच्छ आपको निगल गया और उसीके पेटसे आप यहाँ मुझे प्राप्त हुए हैं॥ १३॥ यह शम्बरासुर सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है। इसको अपने वशमें कर लेना या जीत लेना बहुत ही कठिन है। आप अपने इस शत्रुको मोहन आदि मायाओंके द्वारा नष्ट कर डालिये॥ १४॥ स्वामिन्! अपनी सन्तान आपके खो

७२४ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५५
छिड़काव हो गया था। प्रत्येक दरवाजेपर केलोंके खंभे और सुपारीके पेड़ रोपे हुए बहुत ही भले मालूम होते थे॥ ५७॥ उस उत्सवमें कुतूहलवश इधर-उधर दौड़-धूप करते हुए बन्धुवर्गोंमें कुरु, सृञ्जय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग परस्पर आनन्द मना रहे थे॥ ५८॥ जहाँ-तहाँ रुक्मिणी-हरणकी ही गाथा गायी जाने लगी। उसे सुनकर राजा और राजकन्याएँ अत्यन्त विस्मित हो गयीं॥ ५९॥ महाराज! भगवती लक्ष्मीजीको रुक्मिणीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णके साथ देखकर द्वारकावासी नर-नारियोंको परम आनन्द हुआ॥ ६०॥
पचपनवाँ अध्याय
प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध
श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कामदेव भगवान् वासुदेवके ही अंश हैं। वे पहले रुद्रभगवान्की क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे। अब फिर शरीर-प्राप्तिके लिये उन्होंने अपने अंशी भगवान् वासुदेवका ही आश्रय लिया॥ १॥ वे ही काम अबकी बार भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीजीके गर्भसे उत्पन्न हुए और प्रद्युम्न नामसे जगत्में प्रसिद्ध हुए। सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुणोंमें भगवान् श्रीकृष्णसे वे किसी प्रकार कम न थे॥ २॥ बालक प्रद्युम्न अभी दस दिनके भी न हुए थे कि कामरूपी शम्बरासुर वेष बदलकर सूतिकागृहसे उन्हें हर ले गया और समुद्रमें फेंककर अपने घर लौट गया। उसे मालूम हो गया था कि यह मेरा भावी शत्रु है॥ ३॥ समुद्रमें बालक प्रद्युम्नको एक बड़ा भारी मच्छ निगल गया। तदनन्तर मछुओंने अपने बहुत बड़े जालमें फँसाकर दूसरी मछलियोंके साथ उस मच्छको भी पकड़ लिया॥ ४॥ और उन्होंने उसे ले जाकर शम्बरासुरको भेंटके रूपमें दे दिया। शम्बरासुरके रसोइये उस अद्भुत मच्छको उठाकर रसोईघरमें ले आये और कुल्हाड़ियोंसे उसे काटने लगे॥ ५॥ रसोइयोंने मत्स्यके पेटमें बालक देखकर उसे शम्बरासुरकी दासी मायावतीको समर्पित किया। उसके मनमें बड़ी शंका हुई। तब नारदजीने आकर बालकका कामदेव होना, श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणीके गर्भसे जन्म लेना, मच्छके पेटमें जाना सब कुछ कह सुनाया॥ ६॥ परीक्षित्! वह मायावती कामदेवकी यशस्विनी पत्नी रति ही थी। जिस दिन शङ्करजीके क्रोधसे कामदेवका शरीर भस्म हो गया था, उसी दिनसे वह उसकी देहके पुनः उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी॥ ७॥ उसी रतिको शम्बरासुरने अपने यहाँ दाल-भात बनानेके काममें नियुक्त कर रक्खा था। जब उसे मालूम हुआ कि इस शिशुके रूपमें मेरे पति कामदेव ही हैं, तब वह उसके प्रति बहुत प्रेम करने लगी॥ ८॥ श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रद्युम्न बहुत थोड़े दिनोंमें जवान हो गये। उनका रूप-लावण्य इतना अद्भुत था कि जो स्त्रियाँ उनकी ओर देखतीं, उनके मनमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन हो जाता॥ ९॥ कमलदलके समान कोमल एवं विशाल नेत्र, घुटनोंतक लंबी-लंबी बाँहें और मनुष्यलोकमें सबसे सुन्दर शरीर! रति सलज्ज हास्यके साथ भौंह मटकाकर उनकी ओर देखती और प्रेमसे भरकर स्त्री-पुरुषसम्बन्धी भाव व्यक्त करती हुई उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती॥ १०॥ श्रीकृष्णनन्दन भगवान् प्रद्युम्नने उसके भावोंमें परिवर्तन देखकर कहा—'देवि! तुम तो मेरी माँके समान हो। तुम्हारी बुद्धि उलटी कैसे हो गयी? मैं देखता हूँ कि तुम माताका भाव छोड़कर कामिनीके समान हाव-भाव दिखा रही हो'॥ ११॥
रतिने कहा—'प्रभो! आप स्वयं भगवान् नारायणके पुत्र हैं। शम्बरासुर आपको सूतिकागृहसे चुरा लाया था। आप मेरे पति स्वयं कामदेव हैं और मैं आपकी सदाकी धर्मपत्नी रति हूँ॥ १२॥ मेरे स्वामी! जब आप दस दिनके भी न थे, तब इस शम्बरासुरने आपको हरकर समुद्रमें डाल दिया था। वहाँ एक मच्छ आपको निगल गया और उसीके पेटसे आप यहाँ मुझे प्राप्त हुए हैं॥ १३॥ यह शम्बरासुर सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है। इसको अपने वशमें कर लेना या जीत लेना बहुत ही कठिन है। आप अपने इस शत्रुको मोहन आदि मायाओंके द्वारा नष्ट कर डालिये॥ १४॥ स्वामिन्! अपनी सन्तान आपके खो

जानेसे आपकी माता पुत्रस्नेहसे व्याकुल हो रही हैं, वे आतुर होकर अत्यन्त दीनतासे रात-दिन चिन्ता करती रहती हैं। उनकी ठीक वैसी ही दशा हो रही है, जैसी बच्चा खो जानेपर कुररी पक्षीकी अथवा बछड़ा खो जानेपर बेचारी गायकी होती है' ॥ १५ ॥ मायावती रतिने इस प्रकार कहकर परमशक्तिशाली प्रद्युम्नको महामाया नामकी विद्या सिखायी । यह विद्या ऐसी है, जो सब प्रकारकी मायाओंका नाश कर देती है ॥ १६ ॥ अब प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके पास जाकर उसपर बड़े कटु-कटु आक्षेप करने लगे । वे चाहते थे कि यह किसी प्रकार झगड़ा कर बैठे । इतना ही नहीं, उन्होंने युद्धके लिये उसे स्पष्टरूपसे ललकारा ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नजीके कटुवचनोंकी चोटसे शम्बरासुर तिलमिला उठा । मानो किसीने विषैले साँपको पैरसे ठोकर मार दी हो । उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं । वह हाथमें गदा लेकर बाहर निकल आया ॥ १८ ॥ उसने अपनी गदा बड़े जोरसे आकाशमें घुमायी और इसके बाद प्रद्युम्नजीपर चला दी । गदा चलाते समय उसने इतना कर्कश सिंहनाद किया, मानो बिजली कड़क रही हो ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! भगवान् प्रद्युम्नने देखा कि उसकी गदा बड़े वेगसे मेरी ओर आ रही है । तब उन्होंने अपनी गदाके प्रहारसे उसकी गदा गिरा दी और क्रोधमें भरकर अपनी गदा उसपर चलायी ॥ २० ॥ तब वह दैत्य मयासुरकी बतलायी हुई आसुरी मायाका आश्रय लेकर आकाशमें चला गया और वहींसे प्रद्युम्नजीपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ महारथी प्रद्युम्नजीपर बहुत-सी अस्त्र-वर्षा करके जब वह उन्हें पीड़ित करने लगा, तब उन्होंने समस्त मायाओंको शान्त करनेवाली सत्त्वमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर शम्बरासुरने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोग किया; परन्तु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने अपनी महाविद्यासे उन सबका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ इसके बाद उन्होंने एक तीक्ष्ण तलवार उठायी और शम्बरासुरका किरीट एवं कुण्डलसे सुशोभित सिर, जो लाल-लाल दाढ़ी, मूँछोंसे बड़ा भयङ्कर लग रहा था, काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ देवतालोग पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे और इसके बाद मायावती रति, जो आकाशमें चलना जानती थी, अपने पति प्रद्युम्नजीको आकाशमार्गसे द्वारकापुरीमें ले गयी ॥ २५ ॥

परीक्षित् ! आकाशमें अपनी गोरी पत्नीके साथ साँवले प्रद्युम्नजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजली और मेघका जोड़ा हो । इस प्रकार उन्होंने भगवान्‌के उस उत्तम अन्तःपुरमें प्रवेश किया, जिसमें सैकड़ों श्रेष्ठ रमणियाँ निवास करती थीं ॥ २६ ॥ अन्तःपुरकी नारियोंने देखा कि प्रद्युम्नजीका शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामवर्ण है । रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए हैं । घुटनोंतक लंबी भुजाएँ हैं, रतनारे नेत्र हैं और सुन्दर मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी अनूठी ही छटा है । उनके मुखारविन्दपर घुँघराली और नीली अलकें इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं, मानो भौंरें खेल रहे हों । वे सब उन्हें श्रीकृष्ण समझकर सकुचा गयीं और घरोंमें इधर-उधर लुक-छिप गयीं ॥ २७-२८ ॥ फिर धीरे-धीरे स्त्रियोंको यह मालूम हो गया कि ये श्रीकृष्ण नहीं हैं; क्योंकि उनकी अपेक्षा इनमें कुछ विलक्षणता अवश्य है । अब वे अत्यन्त आनन्द और विस्मयसे भरकर इस श्रेष्ठ दम्पतिके पास आ गयीं ॥ २९ ॥ इसी समय वहाँ रुक्मिणीजी आ पहुँचीं । परीक्षित् ! उनके नेत्र कजरारे और वाणी अत्यन्त मधुर थी । इस नवीन दम्पतिको देखते ही उन्हें अपने खोये हुए पुत्रकी याद हो आयी । वात्सल्यस्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी सोचने लगीं—'यह नररत्न कौन है ? यह कमलनयन किसका पुत्र है ? किस बड़भागिनीने इसे अपने गर्भमें धारण किया होगा ? इसे यह कौन सौभाग्यवती पत्नीरूपमें प्राप्त हुई है ? ॥ ३१ ॥ मेरा भी एक नन्हा-सा शिशु खो गया था। न जाने कौन उसे सूतिकागृहसे उठा ले गया ! यदि वह कहीं जीता-जागता होगा तो उसकी अवस्था तथा रूप भी इसीके समान हुआ होगा ॥ ३२ ॥ मैं तो इस बातसे हैरान हूँ कि इसे भगवान् श्यामसुन्दरकी-सी रूप-रेखा, अङ्गोंकी गठन, चाल-ढाल, मुसकान-चितवन और बोल-चाल कहाँसे प्राप्त हुई ? ॥ ३३ ॥ हो-न-हो यह वही बालक है, जिसे मैंने अपने गर्भमें धारण किया था; क्योंकि स्वभावसे ही मेरा स्नेह इसके प्रति उमड़ रहा है और मेरी बायीं बाँह भी फड़क रही है' ॥ ३४ ॥

जिस समय रुक्मिणीजी इस प्रकार सोच-विचार कर

अ० ५५] * दशम स्कन्ध * ७२५

जानेसे आपकी माता पुत्रस्नेहसे व्याकुल हो रही हैं, वे आतुर होकर अत्यन्त दीनतासे रात-दिन चिन्ता करती रहती हैं। उनकी ठीक वैसी ही दशा हो रही है, जैसी बच्चा खो जानेपर कुररी पक्षीकी अथवा बछड़ा खो जानेपर बेचारी गायकी होती है' ॥ १५ ॥ मायावती रतिने इस प्रकार कहकर परमशक्तिशाली प्रद्युम्नको महामाया नामकी विद्या सिखायी । यह विद्या ऐसी है, जो सब प्रकारकी मायाओंका नाश कर देती है ॥ १६ ॥ अब प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके पास जाकर उसपर बड़े कटु-कटु आक्षेप करने लगे । वे चाहते थे कि यह किसी प्रकार झगड़ा कर बैठे । इतना ही नहीं, उन्होंने युद्धके लिये उसे स्पष्टरूपसे ललकारा ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नजीके कटुवचनोंकी चोटसे शम्बरासुर तिलमिला उठा । मानो किसीने विषैले साँपको पैरसे ठोकर मार दी हो । उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं । वह हाथमें गदा लेकर बाहर निकल आया ॥ १८ ॥ उसने अपनी गदा बड़े जोरसे आकाशमें घुमायी और इसके बाद प्रद्युम्नजीपर चला दी । गदा चलाते समय उसने इतना कर्कश सिंहनाद किया, मानो बिजली कड़क रही हो ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! भगवान् प्रद्युम्नने देखा कि उसकी गदा बड़े वेगसे मेरी ओर आ रही है । तब उन्होंने अपनी गदाके प्रहारसे उसकी गदा गिरा दी और क्रोधमें भरकर अपनी गदा उसपर चलायी ॥ २० ॥ तब वह दैत्य मयासुरकी बतलायी हुई आसुरी मायाका आश्रय लेकर आकाशमें चला गया और वहींसे प्रद्युम्नजीपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ महारथी प्रद्युम्नजीपर बहुत-सी अस्त्र-वर्षा करके जब वह उन्हें पीड़ित करने लगा, तब उन्होंने समस्त मायाओंको शान्त करनेवाली सत्त्वमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर शम्बरासुरने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोग किया; परन्तु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने अपनी महाविद्यासे उन सबका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ इसके बाद उन्होंने एक तीक्ष्ण तलवार उठायी और शम्बरासुरका किरीट एवं कुण्डलसे सुशोभित सिर, जो लाल-लाल दाढ़ी, मूँछोंसे बड़ा भयङ्कर लग रहा था, काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ देवतालोग पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे और इसके बाद मायावती रति, जो आकाशमें चलना जानती थी, अपने पति प्रद्युम्नजीको आकाशमार्गसे द्वारकापुरीमें ले गयी ॥ २५ ॥

परीक्षित् ! आकाशमें अपनी गोरी पत्नीके साथ साँवले प्रद्युम्नजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजली और मेघका जोड़ा हो । इस प्रकार उन्होंने भगवान्‌के उस उत्तम अन्तःपुरमें प्रवेश किया, जिसमें सैकड़ों श्रेष्ठ रमणियाँ निवास करती थीं ॥ २६ ॥ अन्तःपुरकी नारियोंने देखा कि प्रद्युम्नजीका शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामवर्ण है । रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए हैं । घुटनोंतक लंबी भुजाएँ हैं, रतनारे नेत्र हैं और सुन्दर मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी अनूठी ही छटा है । उनके मुखारविन्दपर घुँघराली और नीली अलकें इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं, मानो भौंरें खेल रहे हों । वे सब उन्हें श्रीकृष्ण समझकर सकुचा गयीं और घरोंमें इधर-उधर लुक-छिप गयीं ॥ २७-२८ ॥ फिर धीरे-धीरे स्त्रियोंको यह मालूम हो गया कि ये श्रीकृष्ण नहीं हैं; क्योंकि उनकी अपेक्षा इनमें कुछ विलक्षणता अवश्य है । अब वे अत्यन्त आनन्द और विस्मयसे भरकर इस श्रेष्ठ दम्पतिके पास आ गयीं ॥ २९ ॥ इसी समय वहाँ रुक्मिणीजी आ पहुँचीं । परीक्षित् ! उनके नेत्र कजरारे और वाणी अत्यन्त मधुर थी । इस नवीन दम्पतिको देखते ही उन्हें अपने खोये हुए पुत्रकी याद हो आयी । वात्सल्यस्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी सोचने लगीं—'यह नररत्न कौन है ? यह कमलनयन किसका पुत्र है ? किस बड़भागिनीने इसे अपने गर्भमें धारण किया होगा ? इसे यह कौन सौभाग्यवती पत्नीरूपमें प्राप्त हुई है ? ॥ ३१ ॥ मेरा भी एक नन्हा-सा शिशु खो गया था। न जाने कौन उसे सूतिकागृहसे उठा ले गया ! यदि वह कहीं जीता-जागता होगा तो उसकी अवस्था तथा रूप भी इसीके समान हुआ होगा ॥ ३२ ॥ मैं तो इस बातसे हैरान हूँ कि इसे भगवान् श्यामसुन्दरकी-सी रूप-रेखा, अङ्गोंकी गठन, चाल-ढाल, मुसकान-चितवन और बोल-चाल कहाँसे प्राप्त हुई ? ॥ ३३ ॥ हो-न-हो यह वही बालक है, जिसे मैंने अपने गर्भमें धारण किया था; क्योंकि स्वभावसे ही मेरा स्नेह इसके प्रति उमड़ रहा है और मेरी बायीं बाँह भी फड़क रही है' ॥ ३४ ॥

जिस समय रुक्मिणीजी इस प्रकार सोच-विचार कर

रही थीं—निश्चय और सन्देहके झूलेमें झूल रही थीं, उसी समय पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी-वसुदेवजीके साथ वहाँ पधारे॥ ३५॥ भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ जानते थे। परन्तु वे कुछ न बोले, चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें ही नारदजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने प्रद्युम्नजीको शम्बरासुरका हर ले जाना, समुद्रमें फेंक देना आदि जितनी भी घटनाएँ घटित हुई थीं, वे सब कह सुनायीं॥ ३६॥ नारदजीके द्वारा यह महान् आश्चर्यमयी घटना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ चकित हो गयीं और बहुत वर्षोंतक खोये रहनेके बाद लौटे हुए प्रद्युम्नजीका इस प्रकार अभिनन्दन करने लगीं, मानो कोई मरकर जी उठा हो॥ ३७॥ देवकीजी, वसुदेवजी, भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी और स्त्रियाँ—सब उस नवदम्पतिको हृदयसे लगाकर बहुत ही आनन्दित हुए॥ ३८॥ जब द्वारकावासी नर-नारियोंको यह मालूम हुआ कि खोये हुए प्रद्युम्नजी लौट आये हैं, तब वे परस्पर कहने लगे—'अहो, कैसे सौभाग्यकी बात है कि यह बालक मानो मरकर फिर लौट आया'॥ ३९॥ परीक्षित्! प्रद्युम्नजीका रूप-रंग भगवान् श्रीकृष्णसे इतना मिलता-जुलता था कि उन्हें देखकर उनकी माताएँ भी उन्हें अपना पतिदेव श्रीकृष्ण समझकर मधुरभावमें मग्न हो जाती थीं और उनके सामनेसे हटकर एकान्तमें चली जाती थीं। श्रीनिकेतन भगवान्के प्रतिबिम्बस्वरूप कामावतार भगवान् प्रद्युम्नके दीख जानेपर ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। फिर उन्हें देखकर दूसरी स्त्रियोंकी विचित्र दशा हो जाती थी, इसमें तो कहना ही क्या है॥ ४०॥

छप्पनवाँ अध्याय

स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सत्राजित्ने श्रीकृष्णको झूठा कलङ्क लगाया था। फिर उस अपराधका मार्जन करनेके लिये उसने स्वयं स्यमन्तकमणि सहित अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णको सौंप दी॥ १॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! सत्राजित्ने भगवान् श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था? उसे स्यमन्तकमणि कहाँसे मिली? और उसने अपनी कन्या उन्हें क्यों दी?॥ २॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! सत्राजित् भगवान् सूर्यका बहुत बड़ा भक्त था। वे उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके बहुत बड़े मित्र बन गये थे। सूर्य भगवान्ने ही प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उसे स्यमन्तकमणि दी थी॥ ३॥ सत्राजित् उस मणिको गलेमें धारणकर ऐसा चमकने लगा, मानो स्वयं सूर्य ही हो। परीक्षित्! जब सत्राजित् द्वारकामें आया, तब अत्यन्त तेजस्विताके कारण लोग उसे पहचान न सके॥ ४॥ दूरसे ही उसे देखकर लोगोंकी आँखें उसके तेजसे चौंधिया गयीं। लोगोंने समझा कि कदाचित् स्वयं भगवान् सूर्य आ रहे हैं। उन लोगोंने भगवान्के पास आकर उन्हें इस बातकी सूचना दी। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चौसर खेल रहे थे॥ ५॥ लोगोंने कहा—'शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण! कमलनयन दामोदर! यदुवंशशिरोमणि गोविन्द! आपको नमस्कार है॥ ६॥ जगदीश्वर! देखिये, अपनी चमकीली किरणोंसे लोगोंके नेत्रोंको चौंधियाते हुए प्रचण्डरश्मि भगवान् सूर्य आपका दर्शन करने आ रहे हैं॥ ७॥ प्रभो! सभी श्रेष्ठ देवता त्रिलोकीमें आपकी प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ते रहते हैं; किन्तु उसे पाते नहीं। आज आपको यदुवंशमें छिपा हुआ जानकर स्वयं सूर्यनारायण आपका दर्शन करने आ रहे हैं'॥ ८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अनजान पुरुषोंकी यह बात सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने कहा—'अरे, ये सूर्यदेव नहीं हैं। यह तो सत्राजित् है, जो मणिके कारण इतना चमक रहा है'॥ ९॥ इसके बाद सत्राजित् अपने समृद्ध घरमें चला आया। घरपर उसके शुभागमनके उपलक्ष्यमें मङ्गल-उत्सव मनाया जा रहा था। उसने ब्राह्मणोंके द्वारा स्यमन्तकमणिको एक देवमन्दिरमें स्थापित करा

७२६ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५६

रही थीं—निश्चय और सन्देहके झूलेमें झूल रही थीं, उसी समय पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी-वसुदेवजीके साथ वहाँ पधारे॥ ३५॥ भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ जानते थे। परन्तु वे कुछ न बोले, चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें ही नारदजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने प्रद्युम्नजीको शम्बरासुरका हर ले जाना, समुद्रमें फेंक देना आदि जितनी भी घटनाएँ घटित हुई थीं, वे सब कह सुनायीं॥ ३६॥ नारदजीके द्वारा यह महान् आश्चर्यमयी घटना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ चकित हो गयीं और बहुत वर्षोंतक खोये रहनेके बाद लौटे हुए प्रद्युम्नजीका इस प्रकार अभिनन्दन करने लगीं, मानो कोई मरकर जी उठा हो॥ ३७॥ देवकीजी, वसुदेवजी, भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी और स्त्रियाँ—सब उस नवदम्पतिको हृदयसे लगाकर बहुत ही आनन्दित हुए॥ ३८॥ जब द्वारकावासी नर-नारियोंको यह मालूम हुआ कि खोये हुए प्रद्युम्नजी लौट आये हैं, तब वे परस्पर कहने लगे—'अहो, कैसे सौभाग्यकी बात है कि यह बालक मानो मरकर फिर लौट आया'॥ ३९॥ परीक्षित्! प्रद्युम्नजीका रूप-रंग भगवान् श्रीकृष्णसे इतना मिलता-जुलता था कि उन्हें देखकर उनकी माताएँ भी उन्हें अपना पतिदेव श्रीकृष्ण समझकर मधुरभावमें मग्न हो जाती थीं और उनके सामनेसे हटकर एकान्तमें चली जाती थीं। श्रीनिकेतन भगवान्के प्रतिबिम्बस्वरूप कामावतार भगवान् प्रद्युम्नके दीख जानेपर ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। फिर उन्हें देखकर दूसरी स्त्रियोंकी विचित्र दशा हो जाती थी, इसमें तो कहना ही क्या है॥ ४०॥

छप्पनवाँ अध्याय

स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सत्राजित्ने श्रीकृष्णको झूठा कलङ्क लगाया था। फिर उस अपराधका मार्जन करनेके लिये उसने स्वयं स्यमन्तकमणि सहित अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णको सौंप दी॥ १॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! सत्राजित्ने भगवान् श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था? उसे स्यमन्तकमणि कहाँसे मिली? और उसने अपनी कन्या उन्हें क्यों दी?॥ २॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! सत्राजित् भगवान् सूर्यका बहुत बड़ा भक्त था। वे उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके बहुत बड़े मित्र बन गये थे। सूर्य भगवान्ने ही प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उसे स्यमन्तकमणि दी थी॥ ३॥ सत्राजित् उस मणिको गलेमें धारणकर ऐसा चमकने लगा, मानो स्वयं सूर्य ही हो। परीक्षित्! जब सत्राजित् द्वारकामें आया, तब अत्यन्त तेजस्विताके कारण लोग उसे पहचान न सके॥ ४॥ दूरसे ही उसे देखकर लोगोंकी आँखें उसके तेजसे चौंधिया गयीं। लोगोंने समझा कि कदाचित् स्वयं भगवान् सूर्य आ रहे हैं। उन लोगोंने भगवान्के पास आकर उन्हें इस बातकी सूचना दी। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चौसर खेल रहे थे॥ ५॥ लोगोंने कहा—'शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण! कमलनयन दामोदर! यदुवंशशिरोमणि गोविन्द! आपको नमस्कार है॥ ६॥ जगदीश्वर! देखिये, अपनी चमकीली किरणोंसे लोगोंके नेत्रोंको चौंधियाते हुए प्रचण्डरश्मि भगवान् सूर्य आपका दर्शन करने आ रहे हैं॥ ७॥ प्रभो! सभी श्रेष्ठ देवता त्रिलोकीमें आपकी प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ते रहते हैं; किन्तु उसे पाते नहीं। आज आपको यदुवंशमें छिपा हुआ जानकर स्वयं सूर्यनारायण आपका दर्शन करने आ रहे हैं'॥ ८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अनजान पुरुषोंकी यह बात सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने कहा—'अरे, ये सूर्यदेव नहीं हैं। यह तो सत्राजित् है, जो मणिके कारण इतना चमक रहा है'॥ ९॥ इसके बाद सत्राजित् अपने समृद्ध घरमें चला आया। घरपर उसके शुभागमनके उपलक्ष्यमें मङ्गल-उत्सव मनाया जा रहा था। उसने ब्राह्मणोंके द्वारा स्यमन्तकमणिको एक देवमन्दिरमें स्थापित करा

दिया ॥ १० ॥ परीक्षित् ! वह मणि प्रतिदिन आठ भार* सोना दिया करती थी। और जहाँ वह पूजित होकर रहती थी, वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी, ग्रहपीडा, सर्पभय, मानसिक और शारीरिक व्यथा तथा मायावियोंका उपद्रव आदि कोई भी अशुभ नहीं होता था ॥ ११ ॥ एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसङ्गवश कहा—'सत्राजित् ! तुम अपनी मणि राजा उग्रसेनको दे दो।' परन्तु वह इतना अर्थलोलुप—लोभी था कि भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन होगा, इसका कुछ भी विचार न करके उसे अस्वीकार कर दिया ॥ १२ ॥

एक दिन सत्राजित्‌के भाई प्रसेनने उस परम प्रकाशमयी मणिको अपने गलेमें धारण कर लिया और फिर वह घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने वनमें चला गया ॥ १३ ॥ वहाँ एक सिंहने घोड़े सहित प्रसेनको मार डाला और उस मणिको छीन लिया। वह अभी पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर ही रहा था कि मणिके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ उन्होंने वह मणि अपनी गुफामें ले जाकर बच्चेको खेलनेके लिये दे दी। अपने भाई प्रसेनके न लौटनेसे उसके भाई सत्राजित्‌को बड़ा दुख हुआ ॥ १५ ॥ वह कहने लगा, 'बहुत सम्भव है श्रीकृष्णने ही मेरे भाईको मार डाला हो; क्योंकि वह मणि गलेमें डालकर वनमें गया था।' सत्राजित्‌की यह बात सुनकर लोग आपसमें काना-फूँसी करने लगे ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने सुना कि यह कलङ्कका टीका मेरे ही सिर लगाया गया है, तब वे उसे धो-बहानेके उद्देश्यसे नगरके कुछ सभ्य पुरुषोंको साथ लेकर प्रसेनको ढूँढ़नेके लिये वनमें गये ॥ १७ ॥ वहाँ खोजते-खोजते लोगोंने देखा कि घोर जंगलमें सिंहने प्रसेन और उसके घोड़ेको मार डाला है। जब वे लोग सिंहके पैरोंका चिह्न देखते हुए आगे बढ़े, तब उन लोगोंने यह भी देखा कि पर्वतपर एक रीछने सिंहको भी मार डाला है ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंको बाहर ही बिठा दिया और अकेले ही घोर अन्धकारसे भरी हुई ऋक्षराजकी भयङ्कर गुफामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने वहाँ जाकर देखा कि श्रेष्ठ मणि स्यमन्तकको बच्चोंका खिलौना बना दिया गया है। वे उसे हर लेनेकी इच्छासे बच्चेके पास जा खड़े हुए ॥ २० ॥ उस गुफामें एक अपरिचित मनुष्यको देखकर बच्चेकी धाय भयभीत की भाँति चिल्ला उठी। उसकी चिल्लाहट सुनकर परम बली ऋक्षराज जाम्बवान् क्रोधित होकर वहाँ दौड़ आये ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! जाम्बवान् उस समय कुपित हो रहे थे। उन्हें भगवान्‌की महिमा, उनके प्रभावका पता न चला। उन्होंने उन्हें एक साधारण मनुष्य समझ लिया और वे अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ जिस प्रकार मांसके लिये दो बाज आपसमें लड़ते हैं, वैसे ही विजयाभिलाषी भगवान् श्रीकृष्ण और जाम्बवान् आपसमें घमासान युद्ध करने लगे। पहले तो उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार किया, फिर शिलाओंका तत्पश्चात् वे वृक्ष उखाड़कर एक-दूसरेपर फेंकने लगे। अन्तमें उनमें बाहुयुद्ध होने लगा ॥ २३ ॥ परीक्षित् ! वज्र-प्रहारके समान कठोर घूँसोंसे आपसमें वे अट्ठाईस दिनतक बिना विश्राम किये रात-दिन लड़ते रहे ॥ २४ ॥ अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके घूँसोंकी चोटसे जाम्बवान्‌के शरीरकी एक-एक गाँठ टूट-फूट गयी। उत्साह जाता रहा। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। तब उन्होंने अत्यन्त विस्मित—चकित होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा— ॥ २५ ॥ 'प्रभो ! मैं जान गया। आप ही समस्त प्राणियोंके स्वामी, रक्षक, पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं। आप ही सबके प्राण, इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबल हैं ॥ २६ ॥ आप विश्वके रचयिता ब्रह्मा आदिको भी बनानेवाले हैं। बनाये हुए पदार्थोंमें भी सत्तारूपसे आप

---

* भारका परिमाण इसप्रकार है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पलम्।
अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।
तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥

अर्थात् 'चार व्रीहि (धान)की एक गुञ्जा, पाँच गुञ्जाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।'

अ० ५६] * दशम स्कन्ध * ७२७

दिया ॥ १० ॥ परीक्षित् ! वह मणि प्रतिदिन आठ भार* सोना दिया करती थी। और जहाँ वह पूजित होकर रहती थी, वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी, ग्रहपीडा, सर्पभय, मानसिक और शारीरिक व्यथा तथा मायावियोंका उपद्रव आदि कोई भी अशुभ नहीं होता था ॥ ११ ॥ एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसङ्गवश कहा—'सत्राजित् ! तुम अपनी मणि राजा उग्रसेनको दे दो।' परन्तु वह इतना अर्थलोलुप—लोभी था कि भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन होगा, इसका कुछ भी विचार न करके उसे अस्वीकार कर दिया ॥ १२ ॥

एक दिन सत्राजित्‌के भाई प्रसेनने उस परम प्रकाशमयी मणिको अपने गलेमें धारण कर लिया और फिर वह घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने वनमें चला गया ॥ १३ ॥ वहाँ एक सिंहने घोड़े सहित प्रसेनको मार डाला और उस मणिको छीन लिया। वह अभी पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर ही रहा था कि मणिके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ उन्होंने वह मणि अपनी गुफामें ले जाकर बच्चेको खेलनेके लिये दे दी। अपने भाई प्रसेनके न लौटनेसे उसके भाई सत्राजित्‌को बड़ा दुख हुआ ॥ १५ ॥ वह कहने लगा, 'बहुत सम्भव है श्रीकृष्णने ही मेरे भाईको मार डाला हो; क्योंकि वह मणि गलेमें डालकर वनमें गया था।' सत्राजित्‌की यह बात सुनकर लोग आपसमें काना-फूँसी करने लगे ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने सुना कि यह कलङ्कका टीका मेरे ही सिर लगाया गया है, तब वे उसे धो-बहानेके उद्देश्यसे नगरके कुछ सभ्य पुरुषोंको साथ लेकर प्रसेनको ढूँढ़नेके लिये वनमें गये ॥ १७ ॥ वहाँ खोजते-खोजते लोगोंने देखा कि घोर जंगलमें सिंहने प्रसेन और उसके घोड़ेको मार डाला है। जब वे लोग सिंहके पैरोंका चिह्न देखते हुए आगे बढ़े, तब उन लोगोंने यह भी देखा कि पर्वतपर एक रीछने सिंहको भी मार डाला है ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंको बाहर ही बिठा दिया और अकेले ही घोर अन्धकारसे भरी हुई ऋक्षराजकी भयङ्कर गुफामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने वहाँ जाकर देखा कि श्रेष्ठ मणि स्यमन्तकको बच्चोंका खिलौना बना दिया गया है। वे उसे हर लेनेकी इच्छासे बच्चेके पास जा खड़े हुए ॥ २० ॥ उस गुफामें एक अपरिचित मनुष्यको देखकर बच्चेकी धाय भयभीत की भाँति चिल्ला उठी। उसकी चिल्लाहट सुनकर परम बली ऋक्षराज जाम्बवान् क्रोधित होकर वहाँ दौड़ आये ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! जाम्बवान् उस समय कुपित हो रहे थे। उन्हें भगवान्‌की महिमा, उनके प्रभावका पता न चला। उन्होंने उन्हें एक साधारण मनुष्य समझ लिया और वे अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ जिस प्रकार मांसके लिये दो बाज आपसमें लड़ते हैं, वैसे ही विजयाभिलाषी भगवान् श्रीकृष्ण और जाम्बवान् आपसमें घमासान युद्ध करने लगे। पहले तो उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार किया, फिर शिलाओंका तत्पश्चात् वे वृक्ष उखाड़कर एक-दूसरेपर फेंकने लगे। अन्तमें उनमें बाहुयुद्ध होने लगा ॥ २३ ॥ परीक्षित् ! वज्र-प्रहारके समान कठोर घूँसोंसे आपसमें वे अट्ठाईस दिनतक बिना विश्राम किये रात-दिन लड़ते रहे ॥ २४ ॥ अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके घूँसोंकी चोटसे जाम्बवान्‌के शरीरकी एक-एक गाँठ टूट-फूट गयी। उत्साह जाता रहा। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। तब उन्होंने अत्यन्त विस्मित—चकित होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा— ॥ २५ ॥ 'प्रभो ! मैं जान गया। आप ही समस्त प्राणियोंके स्वामी, रक्षक, पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं। आप ही सबके प्राण, इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबल हैं ॥ २६ ॥ आप विश्वके रचयिता ब्रह्मा आदिको भी बनानेवाले हैं। बनाये हुए पदार्थोंमें भी सत्तारूपसे आप

---

* भारका परिमाण इसप्रकार है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पलम्।
अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।
तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥

अर्थात् 'चार व्रीहि (धान)की एक गुञ्जा, पाँच गुञ्जाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।'

श्रीमद्भा०-सु०-सा०—२४

ही विराजमान हैं। कालके जितने भी अवयव हैं, उनके नियामक परम काल आप ही हैं और शरीर-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीयमान अन्तरात्माओंके परम आत्मा भी आप ही हैं॥ २७॥ प्रभो! मुझे स्मरण है, आपने अपने नेत्रोंमें तनिक-सा क्रोधका भाव लेकर तिरछी दृष्टिसे समुद्रकी ओर देखा था। उस समय समुद्रके अंदर रहनेवाले बड़े-बड़े नाक (घड़ियाल) और मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे और समुद्रने आपको मार्ग दे दिया था। तब आपने उसपर सेतु बाँधकर सुन्दर यशकी स्थापना की तथा लङ्काका विध्वंस किया। आपके बाणोंसे कट-कटकर राक्षसोंके सिर पृथ्वीपर लोट रहे थे। (अवश्य ही आप मेरे वे ही 'रामजी' श्रीकृष्णके रूपमें आये हैं)'॥ २८॥ परीक्षित्! जब ऋक्षराज जाम्बवान्ने भगवान्को पहचान लिया, तब कमलनयन श्रीकृष्णने अपने परम कल्याणकारी शीतल करकमलको उनके शरीरपर फेर दिया और फिर अहैतुकी कृपासे भरकर प्रेम गम्भीर वाणीसे अपने भक्त जाम्बवान्जीसे कहा—॥ २९-३०॥ 'ऋक्षराज! हम मणिके लिये ही तुम्हारी इस गुफामें आये हैं। इस मणिके द्वारा मैं अपनेपर लगे झूठे कलङ्कको मिटाना चाहता हूँ'॥ ३१॥ भगवान्के ऐसा कहनेपर जाम्बवान्ने बड़े आनन्दसे उनकी पूजा करनेके लिये अपनी कन्या कुमारी जाम्बवतीको मणिके साथ उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया॥ ३२॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिन लोगोंको गुफाके बाहर छोड़ गये थे, उन्होंने बारह दिनतक उनकी प्रतीक्षा की। परन्तु जब उन्होंने देखा कि अबतक वे गुफामेंसे नहीं निकले, तब वे अत्यन्त दुखी होकर द्वारकाको लौट गये॥ ३३॥ वहाँ जब माता देवकी, रुक्मिणी, वसुदेवजी तथा अन्य सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंको यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण गुफामेंसे नहीं निकले, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ॥ ३४॥ सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुःखित होकर सत्राजित्को भला-बुरा कहने लगे और भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये महामाया दुर्गादेवीकी शरणमें गये, उनकी उपासना करने लगे॥ ३५॥ उनकी उपासनासे दुर्गादेवी प्रसन्न हुईं और उन्होंने आशीर्वाद दिया। उसी समय उनके बीचमें मणि और अपनी नववधू जाम्बवतीके साथ सफलमनोरथ होकर श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न करते हुए प्रकट हो गये॥ ३६॥ सभी द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्णको पत्नीके साथ और गलेमें मणि धारण किये हुए देखकर परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो कोई मरकर लौट आया हो॥ ३७॥

तदनन्तर भगवान्ने सत्राजित्को राजसभामें महाराज उग्रसेनके पास बुलवाया और जिस प्रकार मणि प्राप्त हुई थी, वह सब कथा सुनाकर उन्होंने वह मणि सत्राजित्को सौंप दी॥ ३८॥ सत्राजित् अत्यन्त लज्जित हो गया। मणि तो उसने ले ली, परन्तु उसका मुँह नीचेकी ओर लटक गया। अपने अपराधपर उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था, किसी प्रकार वह अपने घर पहुँचा॥ ३९॥ उसके मनकी आँखोंके सामने निरन्तर अपना अपराध नाचता रहता। बलवान्के साथ विरोध करनेके कारण वह भयभीत भी हो गया था। अब वह यही सोचता रहता कि 'मैं अपने अपराधका मार्जन कैसे करूँ? मुझपर भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न हों॥ ४०॥ मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो और लोग मुझे कोसें नहीं। सचमुच मैं अदूरदर्शी, क्षुद्र हूँ। धनके लोभसे मैं बड़ी मूढ़ताका काम कर बैठा॥ ४१॥ अब मैं रमणियोंमें रत्नके समान अपनी कन्या सत्यभामा और वह स्यमन्तकमणि दोनों ही श्रीकृष्णको दे दूँ। यह उपाय बहुत अच्छा है। इसीसे मेरे अपराधका मार्जन हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है'॥ ४२॥ सत्राजित्ने अपनी विवेक बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके स्वयं ही इसके लिये उद्योग किया और अपनी कन्या तथा स्यमन्तकमणि दोनों ही ले जाकर श्रीकृष्णको अर्पण कर दीं॥ ४३॥ सत्यभामा शील-स्वभाव, सुन्दरता, उदारता आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं। बहुतसे लोग चाहते थे कि सत्यभामा हमें मिलें और उन लोगोंने उन्हें माँगा भी था। परन्तु अब भगवान् श्रीकृष्णने विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया॥ ४४॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने सत्राजित्से कहा—'हम स्यमन्तकमणि न लेंगे। आप सूर्य भगवान्के भक्त हैं, इसलिये वह आपके ही पास रहे। हम तो केवल उसके फलके, अर्थात् उससे निकले हुए सोनेके अधिकारी हैं। वही आप हमें दे दिया करें'॥ ४५॥

७२८ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५६

ही विराजमान हैं। कालके जितने भी अवयव हैं, उनके नियामक परम काल आप ही हैं और शरीर-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीयमान अन्तरात्माओंके परम आत्मा भी आप ही हैं॥ २७॥ प्रभो! मुझे स्मरण है, आपने अपने नेत्रोंमें तनिक-सा क्रोधका भाव लेकर तिरछी दृष्टिसे समुद्रकी ओर देखा था। उस समय समुद्रके अंदर रहनेवाले बड़े-बड़े नाक (घड़ियाल) और मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे और समुद्रने आपको मार्ग दे दिया था। तब आपने उसपर सेतु बाँधकर सुन्दर यशकी स्थापना की तथा लङ्काका विध्वंस किया। आपके बाणोंसे कट-कटकर राक्षसोंके सिर पृथ्वीपर लोट रहे थे। (अवश्य ही आप मेरे वे ही 'रामजी' श्रीकृष्णके रूपमें आये हैं)'॥ २८॥ परीक्षित्! जब ऋक्षराज जाम्बवान्ने भगवान्को पहचान लिया, तब कमलनयन श्रीकृष्णने अपने परम कल्याणकारी शीतल करकमलको उनके शरीरपर फेर दिया और फिर अहैतुकी कृपासे भरकर प्रेम गम्भीर वाणीसे अपने भक्त जाम्बवान्जीसे कहा—॥ २९-३०॥ 'ऋक्षराज! हम मणिके लिये ही तुम्हारी इस गुफामें आये हैं। इस मणिके द्वारा मैं अपनेपर लगे झूठे कलङ्कको मिटाना चाहता हूँ'॥ ३१॥ भगवान्के ऐसा कहनेपर जाम्बवान्ने बड़े आनन्दसे उनकी पूजा करनेके लिये अपनी कन्या कुमारी जाम्बवतीको मणिके साथ उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया॥ ३२॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिन लोगोंको गुफाके बाहर छोड़ गये थे, उन्होंने बारह दिनतक उनकी प्रतीक्षा की। परन्तु जब उन्होंने देखा कि अबतक वे गुफामेंसे नहीं निकले, तब वे अत्यन्त दुखी होकर द्वारकाको लौट गये॥ ३३॥ वहाँ जब माता देवकी, रुक्मिणी, वसुदेवजी तथा अन्य सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंको यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण गुफामेंसे नहीं निकले, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ॥ ३४॥ सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुःखित होकर सत्राजित्को भला-बुरा कहने लगे और भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये महामाया दुर्गादेवीकी शरणमें गये, उनकी उपासना करने लगे॥ ३५॥ उनकी उपासनासे दुर्गादेवी प्रसन्न हुईं और उन्होंने आशीर्वाद दिया। उसी समय उनके बीचमें मणि और अपनी नववधू जाम्बवतीके साथ सफलमनोरथ होकर श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न करते हुए प्रकट हो गये॥ ३६॥ सभी द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्णको पत्नीके साथ और गलेमें मणि धारण किये हुए देखकर परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो कोई मरकर लौट आया हो॥ ३७॥

तदनन्तर भगवान्ने सत्राजित्को राजसभामें महाराज उग्रसेनके पास बुलवाया और जिस प्रकार मणि प्राप्त हुई थी, वह सब कथा सुनाकर उन्होंने वह मणि सत्राजित्को सौंप दी॥ ३८॥ सत्राजित् अत्यन्त लज्जित हो गया। मणि तो उसने ले ली, परन्तु उसका मुँह नीचेकी ओर लटक गया। अपने अपराधपर उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था, किसी प्रकार वह अपने घर पहुँचा॥ ३९॥ उसके मनकी आँखोंके सामने निरन्तर अपना अपराध नाचता रहता। बलवान्के साथ विरोध करनेके कारण वह भयभीत भी हो गया था। अब वह यही सोचता रहता कि 'मैं अपने अपराधका मार्जन कैसे करूँ? मुझपर भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न हों॥ ४०॥ मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो और लोग मुझे कोसें नहीं। सचमुच मैं अदूरदर्शी, क्षुद्र हूँ। धनके लोभसे मैं बड़ी मूढ़ताका काम कर बैठा॥ ४१॥ अब मैं रमणियोंमें रत्नके समान अपनी कन्या सत्यभामा और वह स्यमन्तकमणि दोनों ही श्रीकृष्णको दे दूँ। यह उपाय बहुत अच्छा है। इसीसे मेरे अपराधका मार्जन हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है'॥ ४२॥ सत्राजित्ने अपनी विवेक बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके स्वयं ही इसके लिये उद्योग किया और अपनी कन्या तथा स्यमन्तकमणि दोनों ही ले जाकर श्रीकृष्णको अर्पण कर दीं॥ ४३॥ सत्यभामा शील-स्वभाव, सुन्दरता, उदारता आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं। बहुतसे लोग चाहते थे कि सत्यभामा हमें मिलें और उन लोगोंने उन्हें माँगा भी था। परन्तु अब भगवान् श्रीकृष्णने विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया॥ ४४॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने सत्राजित्से कहा—'हम स्यमन्तकमणि न लेंगे। आप सूर्य भगवान्के भक्त हैं, इसलिये वह आपके ही पास रहे। हम तो केवल उसके फलके, अर्थात् उससे निकले हुए सोनेके अधिकारी हैं। वही आप हमें दे दिया करें'॥ ४५॥

सत्तावनवाँ अध्याय

स्यमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णको इस बातका पता था कि लाक्षागृहकी आगसे पाण्डवोंका बाल भी बाँका नहीं हुआ है, तथापि जब उन्होंने सुना कि कुन्ती और पाण्डव जल मरे, तब उस समयका कुल-परम्परोचित व्यवहार करनेके लिये वे बलरामजीके साथ हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ वहाँ जाकर भीष्मपितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर उनके साथ समवेदना—सहानुभूति प्रकट की और उन लोगोंसे कहने लगे—'हाय-हाय ! यह तो बड़े ही दुःखकी बात हुई' ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके हस्तिनापुर चले जानेसे द्वारकामें अक्रूर और कृतवर्माको अवसर मिल गया। उन लोगोंने शतधन्वासे आकर कहा—'तुम सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेते ? ॥ ३ ॥ सत्राजित्ने अपनी श्रेष्ठ कन्या सत्यभामाका विवाह हमसे करनेका वचन दिया था और अब उसने हमलोगोंका तिरस्कार करके उसे श्रीकृष्णके साथ व्याह दिया है। अब सत्राजित् भी अपने भाई प्रसेनकी तरह क्यों न यमपुरीमें जाय ?' ॥ ४ ॥ शतधन्वा पापी था और अब तो उसकी मृत्यु भी उसके सिरपर नाच रही थी। अक्रूर और कृतवर्माके इस प्रकार बहकानेपर शतधन्वा उनकी बातोंमें आ गया और उस महादुष्टने लोभवश सोये हुए सत्राजित्को मार डाला ॥ ५ ॥ इस समय स्त्रियाँ अनाथके समान रोने चिल्लाने लगीं; परन्तु शतधन्वाने उनकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया; जैसे कसाई पशुओंकी हत्या कर डालता है, वैसे ही वह सत्राजित्को मारकर और मणि लेकर वहाँसे चम्पत हो गया ॥ ६ ॥

सत्यभामाजीको यह देखकर कि मेरे पिता मार डाले गये हैं, बड़ा शोक हुआ और वे 'हाय पिताजी ! हाय पिताजी ! मैं मारी गयी'—इस प्रकार पुकार-पुकारकर विलाप करने लगीं। बीच-बीचमें वे बेहोश हो जातीं और होशमें आनेपर फिर विलाप करने लगतीं ॥ ७ ॥ इसके बाद उन्होंने अपने पिताके शवको तेलके कड़ाहेमें रखवा दिया और आप हस्तिनापुरको गयीं। उन्होंने बड़े दुःखसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने पिताकी हत्याका वृत्तान्त सुनाया—यद्यपि इन बातोंको भगवान् श्रीकृष्ण पहलेसे ही जानते थे ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने सब सुनकर मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए अपनी आँखोंमें आँसू भर लिये और विलाप करने लगे कि 'अहो ! हम लोगोंपर तो यह बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी !' ॥ ९ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाजी और बलरामजीके साथ हस्तिनापुरसे द्वारका लौट आये और शतधन्वाको मारने तथा उससे मणि छीननेका उद्योग करने लगे ॥ १० ॥

जब शतधन्वाको यह मालूम हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे मारनेका उद्योग कर रहे हैं, तब वह बहुत डर गया और अपने प्राण बचानेके लिये उसने कृतवर्मासे सहायता माँगी। तब कृतवर्माने कहा— ॥ ११ ॥'भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं। मैं उनका सामना नहीं कर सकता। भला, ऐसा कौन है, जो उनके साथ वैर बाँधकर इस लोक और परलोकमें सकुशल रह सके ? ॥ १२ ॥ तुम जानते हो कि कंस उन्हींसे द्वेष करनेके कारण राज्यलक्ष्मीको खो बैठा और अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। जरासन्ध-जैसे शूरवीरको भी उनके सामने सत्रह बार मैदानमें हारकर बिना रथके ही अपनी राजधानीमें लौट जाना पड़ा था' ॥ १३ ॥ जब कृतवर्माने उसे इस प्रकार टका-सा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने सहायताके लिये अक्रूरजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'भाई ! ऐसा कौन है, जो सर्वशक्तिमान् भगवान्का बल-पौरुष जानकर भी उनसे वैर-विरोध ठाने। जो भगवान् खेल-खेलमें ही इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं तथा जो कब क्या करना चाहते हैं—इस बातको मायासे मोहित ब्रह्मा आदि विश्व-विधाता भी नहीं समझ पाते; जिन्होंने सात वर्षकी अवस्थामें—जब वे निरे बालक थे, एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे नन्हे-नन्हे बच्चे बरसाती छत्तेको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही खेल-खेलमें सात दिनोंतक उसे उठाये रक्खा; मैं तो उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ। उनके कर्म अद्भुत हैं। वे अनन्त, अनादि, एकरस और आत्मस्वरूप हैं। मैं उन्हें नमस्कार

अ० ५७] * दशम स्कन्ध * ७२९

सत्तावनवाँ अध्याय

स्यमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णको इस बातका पता था कि लाक्षागृहकी आगसे पाण्डवोंका बाल भी बाँका नहीं हुआ है, तथापि जब उन्होंने सुना कि कुन्ती और पाण्डव जल मरे, तब उस समयका कुल-परम्परोचित व्यवहार करनेके लिये वे बलरामजीके साथ हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ वहाँ जाकर भीष्मपितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर उनके साथ समवेदना—सहानुभूति प्रकट की और उन लोगोंसे कहने लगे—'हाय-हाय ! यह तो बड़े ही दुःखकी बात हुई' ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके हस्तिनापुर चले जानेसे द्वारकामें अक्रूर और कृतवर्माको अवसर मिल गया। उन लोगोंने शतधन्वासे आकर कहा—'तुम सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेते ? ॥ ३ ॥ सत्राजित्ने अपनी श्रेष्ठ कन्या सत्यभामाका विवाह हमसे करनेका वचन दिया था और अब उसने हमलोगोंका तिरस्कार करके उसे श्रीकृष्णके साथ व्याह दिया है। अब सत्राजित् भी अपने भाई प्रसेनकी तरह क्यों न यमपुरीमें जाय ?' ॥ ४ ॥ शतधन्वा पापी था और अब तो उसकी मृत्यु भी उसके सिरपर नाच रही थी। अक्रूर और कृतवर्माके इस प्रकार बहकानेपर शतधन्वा उनकी बातोंमें आ गया और उस महादुष्टने लोभवश सोये हुए सत्राजित्को मार डाला ॥ ५ ॥ इस समय स्त्रियाँ अनाथके समान रोने चिल्लाने लगीं; परन्तु शतधन्वाने उनकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया; जैसे कसाई पशुओंकी हत्या कर डालता है, वैसे ही वह सत्राजित्को मारकर और मणि लेकर वहाँसे चम्पत हो गया ॥ ६ ॥

सत्यभामाजीको यह देखकर कि मेरे पिता मार डाले गये हैं, बड़ा शोक हुआ और वे 'हाय पिताजी ! हाय पिताजी ! मैं मारी गयी'—इस प्रकार पुकार-पुकारकर विलाप करने लगीं। बीच-बीचमें वे बेहोश हो जातीं और होशमें आनेपर फिर विलाप करने लगतीं ॥ ७ ॥ इसके बाद उन्होंने अपने पिताके शवको तेलके कड़ाहेमें रखवा दिया और आप हस्तिनापुरको गयीं। उन्होंने बड़े दुःखसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने पिताकी हत्याका वृत्तान्त सुनाया—यद्यपि इन बातोंको भगवान् श्रीकृष्ण पहलेसे ही जानते थे ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने सब सुनकर मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए अपनी आँखोंमें आँसू भर लिये और विलाप करने लगे कि 'अहो ! हम लोगोंपर तो यह बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी !' ॥ ९ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाजी और बलरामजीके साथ हस्तिनापुरसे द्वारका लौट आये और शतधन्वाको मारने तथा उससे मणि छीननेका उद्योग करने लगे ॥ १० ॥

जब शतधन्वाको यह मालूम हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे मारनेका उद्योग कर रहे हैं, तब वह बहुत डर गया और अपने प्राण बचानेके लिये उसने कृतवर्मासे सहायता माँगी। तब कृतवर्माने कहा— ॥ ११ ॥'भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं। मैं उनका सामना नहीं कर सकता। भला, ऐसा कौन है, जो उनके साथ वैर बाँधकर इस लोक और परलोकमें सकुशल रह सके ? ॥ १२ ॥ तुम जानते हो कि कंस उन्हींसे द्वेष करनेके कारण राज्यलक्ष्मीको खो बैठा और अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। जरासन्ध-जैसे शूरवीरको भी उनके सामने सत्रह बार मैदानमें हारकर बिना रथके ही अपनी राजधानीमें लौट जाना पड़ा था' ॥ १३ ॥ जब कृतवर्माने उसे इस प्रकार टका-सा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने सहायताके लिये अक्रूरजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'भाई ! ऐसा कौन है, जो सर्वशक्तिमान् भगवान्का बल-पौरुष जानकर भी उनसे वैर-विरोध ठाने। जो भगवान् खेल-खेलमें ही इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं तथा जो कब क्या करना चाहते हैं—इस बातको मायासे मोहित ब्रह्मा आदि विश्व-विधाता भी नहीं समझ पाते; जिन्होंने सात वर्षकी अवस्थामें—जब वे निरे बालक थे, एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे नन्हे-नन्हे बच्चे बरसाती छत्तेको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही खेल-खेलमें सात दिनोंतक उसे उठाये रक्खा; मैं तो उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ। उनके कर्म अद्भुत हैं। वे अनन्त, अनादि, एकरस और आत्मस्वरूप हैं। मैं उन्हें नमस्कार

करता हूँ' ॥ १४-१७ ॥ जब इस प्रकार अक्रूरजीने भी उसे कोरा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने स्यमन्तकमणि उन्हींके पास रख दी और आप चार सौ कोस लगातार चलनेवाले घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे बड़ी फुर्तीसे भागा ॥ १८ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर गरुड़चिह्नसे चिह्नित ध्वजा फहरा रही थी और बड़े वेगवाले घोड़े जुते हुए थे। अब उन्होंने अपने श्वसुर सत्राजित्को मारनेवाले शतधन्वाका पीछा किया ॥ १९ ॥ मिथिलापुरीके निकट एक उपवनमें शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा, अब वह उसे छोड़कर पैदल ही भागा। वह अत्यन्त भयभीत हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोध करके उसके पीछे दौड़े ॥ २० ॥ शतधन्वा पैदल ही भाग रहा था, इसलिये भगवान्ने भी पैदल ही दौड़कर अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर उतार लिया और उसके वस्त्रोंमें स्यमन्तकमणिको ढूँढ़ा ॥ २१ ॥ परन्तु जब मणि मिली नहीं तब भगवान् श्रीकृष्णने बड़े भाई बलरामजीके पास आकर कहा—'हमने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा। क्योंकि उसके पास स्यमन्तकमणि तो है ही नहीं' ॥ २२ ॥ बलरामजीने कहा—'इसमें सन्देह नहीं कि शतधन्वाने स्यमन्तकमणिको किसी-न-किसीके पास रख दिया है। अब तुम द्वारका जाओ और उसका पता लगाओ ॥ २३ ॥ मैं विदेहराजसे मिलना चाहता हूँ; क्योंकि वे मेरे बहुत ही प्रिय मित्र हैं।' परीक्षित् ! यह कहकर यदुवंशशिरोमणि बलरामजी मिथिला नगरीमें चले गये ॥ २४ ॥ जब मिथिलानरेशने देखा कि पूजनीय बलरामजी महाराज पधारे हैं, तब उनका हृदय आनन्दसे भर गया। उन्होंने झटपट अपने आसनसे उठकर अनेक सामग्रियोंसे उनकी पूजा की ॥ २५ ॥ इसके बाद भगवान् बलरामजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें ही रहे। महात्मा जनकने बड़े प्रेम और सम्मानसे उन्हें रक्खा। इसके बाद समयपर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ग्रहण की ॥ २६ ॥ अपनी प्रिया सत्यभामाका प्रिय कार्य करके भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये और उनको यह समाचार सुना दिया कि शतधन्वाको मार डाला गया, परन्तु स्यमन्तकमणि उसके पास न मिली ॥ २७ ॥ इसके बाद उन्होंने भाई-बन्धुओंके साथ अपने श्वशुर सत्राजित्की वे सब और्ध्वदैहिक क्रियाएँ करवायीं, जिनसे मृतक प्राणीका परलोक सुधरता है ॥ २८ ॥

अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वाको सत्राजित्के वधके लिये उत्तेजित किया था। इसलिये जब उन्होंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला है, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर द्वारकासे भाग खड़े हुए ॥ २९ ॥ परीक्षित् ! कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अक्रूरके द्वारकासे चले जानेपर द्वारकावासियोंको बहुत प्रकारके अनिष्टों और अरिष्टोंका सामना करना पड़ा। दैविक और भौतिक निमित्तोंसे बार-बार वहाँके नागरिकोंको शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना पड़ा। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पहले कही हुई बातोंको भूल जाते हैं। भला, यह भी कभी सम्भव है कि जिन भगवान् श्रीकृष्णमें समस्त ऋषि-मुनि निवास करते हैं, उनके निवासस्थान द्वारकामें उनके रहते कोई उपद्रव खड़ा हो जाय ॥ ३०-३१ ॥ उस समय नगरके बड़े-बूढ़े लोगोंने कहा—'एक बार काशी-नरेशके राज्यमें वर्षा नहीं हो रही थी, सूखा पड़ गया था। तब उन्होंने अपने राज्यमें आये हुए अक्रूरके पिता श्वफल्कको अपनी पुत्री गान्दिनी ब्याह दी। तब उस प्रदेशमें वर्षा हुई। अक्रूर भी श्वफल्कके ही पुत्र हैं और इनका प्रभाव भी वैसा ही है। इसलिये जहाँ-जहाँ अक्रूर रहते हैं, वहाँ-वहाँ खूब वर्षा होती है तथा किसी प्रकारका कष्ट और महामारी आदि उपद्रव नहीं होते।' परीक्षित् ! उन लोगोंकी बात सुनकर भगवान्ने सोचा कि 'इस उपद्रवका यही कारण नहीं है' यह जानकर भी भगवान्ने दूत भेजकर अक्रूरजीको ढुँढ़वाया और आनेपर उनसे बातचीत की ॥ ३२-३४ ॥ भगवान्ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और मीठी-मीठी प्रेमकी बातें कहकर उनसे सम्भाषण किया। परीक्षित् ! भगवान् सबके चित्तका एक-एक सङ्कल्प देखते रहते हैं। इसलिये उन्होंने मुसकराते हुए अक्रूरसे कहा— ॥ ३५ ॥ 'चाचाजी ! आप दान-धर्मके पालक हैं। हमें यह बात पहलेसे ही मालूम है कि शतधन्वा आपके पास वह स्यमन्तकमणि छोड़ गया है, जो बड़ी ही प्रकाशमान और धन देनेवाली है ॥ ३६ ॥ आप जानते ही हैं कि सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है। इसलिये उनकी

७३० * श्रीमद्भागवत * [अ० ५७
करता हूँ' ॥ १४-१७ ॥ जब इस प्रकार अक्रूरजीने भी उसे कोरा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने स्यमन्तकमणि उन्हींके पास रख दी और आप चार सौ कोस लगातार चलनेवाले घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे बड़ी फुर्तीसे भागा ॥ १८ ॥
परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर गरुड़चिह्नसे चिह्नित ध्वजा फहरा रही थी और बड़े वेगवाले घोड़े जुते हुए थे। अब उन्होंने अपने श्वसुर सत्राजित्को मारनेवाले शतधन्वाका पीछा किया ॥ १९ ॥ मिथिलापुरीके निकट एक उपवनमें शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा, अब वह उसे छोड़कर पैदल ही भागा। वह अत्यन्त भयभीत हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोध करके उसके पीछे दौड़े ॥ २० ॥ शतधन्वा पैदल ही भाग रहा था, इसलिये भगवान्ने भी पैदल ही दौड़कर अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर उतार लिया और उसके वस्त्रोंमें स्यमन्तकमणिको ढूँढ़ा ॥ २१ ॥ परन्तु जब मणि मिली नहीं तब भगवान् श्रीकृष्णने बड़े भाई बलरामजीके पास आकर कहा—'हमने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा। क्योंकि उसके पास स्यमन्तकमणि तो है ही नहीं' ॥ २२ ॥ बलरामजीने कहा—'इसमें सन्देह नहीं कि शतधन्वाने स्यमन्तकमणिको किसी-न-किसीके पास रख दिया है। अब तुम द्वारका जाओ और उसका पता लगाओ ॥ २३ ॥ मैं विदेहराजसे मिलना चाहता हूँ; क्योंकि वे मेरे बहुत ही प्रिय मित्र हैं।' परीक्षित् ! यह कहकर यदुवंशशिरोमणि बलरामजी मिथिला नगरीमें चले गये ॥ २४ ॥ जब मिथिलानरेशने देखा कि पूजनीय बलरामजी महाराज पधारे हैं, तब उनका हृदय आनन्दसे भर गया। उन्होंने झटपट अपने आसनसे उठकर अनेक सामग्रियोंसे उनकी पूजा की ॥ २५ ॥ इसके बाद भगवान् बलरामजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें ही रहे। महात्मा जनकने बड़े प्रेम और सम्मानसे उन्हें रक्खा। इसके बाद समयपर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ग्रहण की ॥ २६ ॥ अपनी प्रिया सत्यभामाका प्रिय कार्य करके भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये और उनको यह समाचार सुना दिया कि शतधन्वाको मार डाला गया, परन्तु स्यमन्तकमणि उसके पास न मिली ॥ २७ ॥ इसके बाद उन्होंने भाई-बन्धुओंके साथ अपने श्वशुर सत्राजित्की वे सब और्ध्वदैहिक क्रियाएँ करवायीं, जिनसे मृतक प्राणीका परलोक सुधरता है ॥ २८ ॥
अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वाको सत्राजित्के वधके लिये उत्तेजित किया था। इसलिये जब उन्होंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला है, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर द्वारकासे भाग खड़े हुए ॥ २९ ॥ परीक्षित् ! कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अक्रूरके द्वारकासे चले जानेपर द्वारकावासियोंको बहुत प्रकारके अनिष्टों और अरिष्टोंका सामना करना पड़ा। दैविक और भौतिक निमित्तोंसे बार-बार वहाँके नागरिकोंको शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना पड़ा। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पहले कही हुई बातोंको भूल जाते हैं। भला, यह भी कभी सम्भव है कि जिन भगवान् श्रीकृष्णमें समस्त ऋषि-मुनि निवास करते हैं, उनके निवासस्थान द्वारकामें उनके रहते कोई उपद्रव खड़ा हो जाय ॥ ३०-३१ ॥ उस समय नगरके बड़े-बूढ़े लोगोंने कहा—'एक बार काशी-नरेशके राज्यमें वर्षा नहीं हो रही थी, सूखा पड़ गया था। तब उन्होंने अपने राज्यमें आये हुए अक्रूरके पिता श्वफल्कको अपनी पुत्री गान्दिनी ब्याह दी। तब उस प्रदेशमें वर्षा हुई। अक्रूर भी श्वफल्कके ही पुत्र हैं और इनका प्रभाव भी वैसा ही है। इसलिये जहाँ-जहाँ अक्रूर रहते हैं, वहाँ-वहाँ खूब वर्षा होती है तथा किसी प्रकारका कष्ट और महामारी आदि उपद्रव नहीं होते।' परीक्षित् ! उन लोगोंकी बात सुनकर भगवान्ने सोचा कि 'इस उपद्रवका यही कारण नहीं है' यह जानकर भी भगवान्ने दूत भेजकर अक्रूरजीको ढुँढ़वाया और आनेपर उनसे बातचीत की ॥ ३२-३४ ॥ भगवान्ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और मीठी-मीठी प्रेमकी बातें कहकर उनसे सम्भाषण किया। परीक्षित् ! भगवान् सबके चित्तका एक-एक सङ्कल्प देखते रहते हैं। इसलिये उन्होंने मुसकराते हुए अक्रूरसे कहा— ॥ ३५ ॥ 'चाचाजी ! आप दान-धर्मके पालक हैं। हमें यह बात पहलेसे ही मालूम है कि शतधन्वा आपके पास वह स्यमन्तकमणि छोड़ गया है, जो बड़ी ही प्रकाशमान और धन देनेवाली है ॥ ३६ ॥ आप जानते ही हैं कि सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है। इसलिये उनकी

लड़कीके लड़के—उनके नाती ही उन्हें तिलाञ्जलि और पिण्डदान करेंगे, उनका ऋण चुकायेंगे और जो कुछ बच रहेगा, उसके उत्तराधिकारी होंगे॥ ३७॥ इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिसे यद्यपि स्यमन्तकमणि हमारे पुत्रोंको ही मिलनी चाहिये, तथापि वह मणि आपके ही पास रहे। क्योंकि आप बड़े व्रतनिष्ठ और पवित्रात्मा हैं तथा दूसरोंके लिये उस मणिको रखना अत्यन्त कठिन भी है। परन्तु हमारे सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई यह आ गयी है कि हमारे बड़े भाई बलरामजी मणिके सम्बन्धमें मेरी बातका पूरा विश्वास नहीं करते॥ ३८॥ इसलिये महाभाग्यवान् अक्रूरजी! आप वह मणि दिखाकर हमारे इष्टमित्र—बलरामजी, सत्यभामा और जाम्बवतीका सन्देह दूर कर दीजिये और उनके हृदयमें शान्तिका सञ्चार कीजिये। हमें पता है कि उसी मणिके प्रतापसे आजकल आप लगातार ही ऐसे यज्ञ करते रहते हैं, जिनमें सोनेकी वेदियाँ बनती हैं'॥ ३९॥ परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें समझाया-बुझाया, तब अक्रूरजीने वस्त्रमें लपेटी हुई सूर्यके समान प्रकाशमान वह मणि निकाली और भगवान् श्रीकृष्णको दे दी॥ ४०॥ भगवान् श्रीकृष्णने वह स्यमन्तकमणि अपने जाति-भाइयोंको दिखाकर अपना कलङ्क दूर किया और उसे अपने पास रखनेमें समर्थ होनेपर भी पुनः अक्रूरजीको लौटा दिया॥ ४१॥

सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर शान्तिका अनुभव करता है॥ ४२॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब पाण्डवोंका पता चल गया था कि वे लाक्षाभवनमें जले नहीं हैं। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थ पधारे। उनके साथ सात्यकि आदि बहुत-से यदुवंशी भी थे॥ १॥ जब वीर पाण्डवोंने देखा कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं तो जैसे प्राणका सञ्चार होनेपर सभी इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं, वैसे ही वे सब-के-सब एक साथ उठ खड़े हुए॥ २॥ वीर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, उनके अङ्ग-सङ्गसे इनके सारे पाप-ताप धुल गये। भगवान्की प्रेमभरी मुसकराहटसे सुशोभित मुख-सुषमा देखकर वे आनन्दमें मग्न हो गये॥ ३॥ भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें प्रणाम किया और अर्जुनको हृदयसे लगाया। नकुल और सहदेवने भगवान्के चरणोंकी वन्दना की॥ ४॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हो गये; तब परमसुन्दरी श्यामवर्णा द्रौपदी, जो नवविवाहिता होनेके कारण तनिक लजा रही थी, धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णके पास आयी और उन्हें प्रणाम किया॥ ५॥ पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णके समान ही वीर सात्यकिका भी स्वागत-सत्कार और अभिनन्दन-वन्दन किया। वे एक आसनपर बैठ गये। दूसरे यदुवंशियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया गया तथा वे भी श्रीकृष्णके चारों ओर आसनोंपर बैठ गये॥ ६॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी फूआ कुन्तीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुन्तीजीने अत्यन्त स्नेहवश उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। कुन्तीजीने श्रीकृष्णसे अपने भाई-बन्धुओंकी कुशल-क्षेम पूछी और भगवान्ने भी उनका यथोचित उत्तर देकर उनसे उनकी पुत्रवधू द्रौपदी और स्वयं उनका कुशल-मङ्गल पूछा॥ ७॥ उस समय प्रेमकी विह्वलतासे कुन्तीजीका गला रुँध गया था, नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। भगवान्के पूछनेपर उन्हें अपने पहलेके क्लेश-पर-क्लेश याद आने लगे और वे अपनेको बहुत सम्हालकर, जिनका दर्शन

अ० ५८] * दशम स्कन्ध * ७३१

लड़कीके लड़के—उनके नाती ही उन्हें तिलाञ्जलि और पिण्डदान करेंगे, उनका ऋण चुकायेंगे और जो कुछ बच रहेगा, उसके उत्तराधिकारी होंगे॥ ३७॥ इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिसे यद्यपि स्यमन्तकमणि हमारे पुत्रोंको ही मिलनी चाहिये, तथापि वह मणि आपके ही पास रहे। क्योंकि आप बड़े व्रतनिष्ठ और पवित्रात्मा हैं तथा दूसरोंके लिये उस मणिको रखना अत्यन्त कठिन भी है। परन्तु हमारे सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई यह आ गयी है कि हमारे बड़े भाई बलरामजी मणिके सम्बन्धमें मेरी बातका पूरा विश्वास नहीं करते॥ ३८॥ इसलिये महाभाग्यवान् अक्रूरजी! आप वह मणि दिखाकर हमारे इष्टमित्र—बलरामजी, सत्यभामा और जाम्बवतीका सन्देह दूर कर दीजिये और उनके हृदयमें शान्तिका सञ्चार कीजिये। हमें पता है कि उसी मणिके प्रतापसे आजकल आप लगातार ही ऐसे यज्ञ करते रहते हैं, जिनमें सोनेकी वेदियाँ बनती हैं'॥ ३९॥ परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें समझाया-बुझाया, तब अक्रूरजीने वस्त्रमें लपेटी हुई सूर्यके समान प्रकाशमान वह मणि निकाली और भगवान् श्रीकृष्णको दे दी॥ ४०॥ भगवान् श्रीकृष्णने वह स्यमन्तकमणि अपने जाति-भाइयोंको दिखाकर अपना कलङ्क दूर किया और उसे अपने पास रखनेमें समर्थ होनेपर भी पुनः अक्रूरजीको लौटा दिया॥ ४१॥

सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर शान्तिका अनुभव करता है॥ ४२॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब पाण्डवोंका पता चल गया था कि वे लाक्षाभवनमें जले नहीं हैं। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थ पधारे। उनके साथ सात्यकि आदि बहुत-से यदुवंशी भी थे॥ १॥ जब वीर पाण्डवोंने देखा कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं तो जैसे प्राणका सञ्चार होनेपर सभी इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं, वैसे ही वे सब-के-सब एक साथ उठ खड़े हुए॥ २॥ वीर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, उनके अङ्ग-सङ्गसे इनके सारे पाप-ताप धुल गये। भगवान्की प्रेमभरी मुसकराहटसे सुशोभित मुख-सुषमा देखकर वे आनन्दमें मग्न हो गये॥ ३॥ भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें प्रणाम किया और अर्जुनको हृदयसे लगाया। नकुल और सहदेवने भगवान्के चरणोंकी वन्दना की॥ ४॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हो गये; तब परमसुन्दरी श्यामवर्णा द्रौपदी, जो नवविवाहिता होनेके कारण तनिक लजा रही थी, धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णके पास आयी और उन्हें प्रणाम किया॥ ५॥ पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णके समान ही वीर सात्यकिका भी स्वागत-सत्कार और अभिनन्दन-वन्दन किया। वे एक आसनपर बैठ गये। दूसरे यदुवंशियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया गया तथा वे भी श्रीकृष्णके चारों ओर आसनोंपर बैठ गये॥ ६॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी फूआ कुन्तीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुन्तीजीने अत्यन्त स्नेहवश उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। कुन्तीजीने श्रीकृष्णसे अपने भाई-बन्धुओंकी कुशल-क्षेम पूछी और भगवान्ने भी उनका यथोचित उत्तर देकर उनसे उनकी पुत्रवधू द्रौपदी और स्वयं उनका कुशल-मङ्गल पूछा॥ ७॥ उस समय प्रेमकी विह्वलतासे कुन्तीजीका गला रुँध गया था, नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। भगवान्के पूछनेपर उन्हें अपने पहलेके क्लेश-पर-क्लेश याद आने लगे और वे अपनेको बहुत सम्हालकर, जिनका दर्शन

समस्त क्लेशोंका अन्त करनेके लिये ही हुआ करता है, उन भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगीं— ॥ ८ ॥ 'श्रीकृष्ण ! जिस समय तुमने हमलोगोंको अपना कुटुम्बी, सम्बन्धी समझकर स्मरण किया और हमारा कुशल-मङ्गल जाननेके लिये भाई अक्रूरको भेजा, उसी समय हमारा कल्याण हो गया, हम अनाथोंको तुमने सनाथ कर दिया ॥ ९ ॥ मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत्के परम हितैषी सुहृद् और आत्मा हो। यह अपना है और यह पराया, इस प्रकारकी भ्रान्ति तुम्हारे अंदर नहीं है। ऐसा होनेपर भी, श्रीकृष्ण ! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदयमें आकर तुम बैठ जाते हो और उनकी क्लेश-परम्पराको सदाके लिये मिटा देते हो' ॥ १० ॥

युधिष्ठिरजीने कहा—'सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ! हमें इस बातका पता नहीं है कि हमने अपने पूर्वजन्मोंमें या इस जन्ममें कौन-सा कल्याण-साधन किया है ? आपका दर्शन बड़े-बड़े योगेश्वर भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं और हम कुबुद्धियोंको घर बैठे ही आपके दर्शन हो रहे हैं' ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार भगवान्का खूब सम्मान किया और कुछ दिन वहीं रहनेकी प्रार्थना की। इसपर भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थके नर-नारियोंको अपनी रूपमाधुरीसे नयनानन्दका दान करते हुए बरसातके चार महीनोंतक सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! एक बार वीरशिरोमणि अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय बाणवाले दो तरकस लिये तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ कवच पहनकर अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर वानर-चिह्नसे चिह्नित ध्वजा लगी हुई थी। इसके बाद विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुन उस गहन वनमें शिकार खेलने गये, जो बहुत-से सिंह, बाघ आदि भयङ्कर जानवरोंसे भरा हुआ था ॥ १३-१४ ॥ वहाँ उन्होंने बहुत-से बाघ, सूअर, भैंसे, काले हरिन, शरभ, गवय (नीलापन लिये हुए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन), गैंडे, हरिन, खरगोश और शल्लक (साही) आदि पशुओंपर अपने बाणोंका निशाना लगाया ॥ १५ ॥ उनमेंसे जो यज्ञके योग्य थे, उन्हें सेवकगण पर्वका समय जानकर राजा युधिष्ठिरके पास ले गये। अर्जुन शिकार खेलते-खेलते थक गये थे। अब वे प्यास लगनेपर यमुनाजीके किनारे गये ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महारथियोंने यमुनाजीमें हाथ-पैर धोकर उनका निर्मल जल पिया और देखा कि एक परमसुन्दरी कन्या वहाँ तपस्या कर रही है ॥ १७ ॥ उस श्रेष्ठ सुन्दरीकी जंघा, दाँत और मुख अत्यन्त सुन्दर थे। अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्णके भेजनेपर अर्जुनने उसके पास जाकर पूछा— ॥ १८ ॥ 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? कहाँसे आयी हो ? और क्या करना चाहती हो ? मैं ऐसा समझता हूँ कि तुम अपने योग्य पति चाह रही हो। हे कल्याणि ! तुम अपनी सारी बात बतलाओ' ॥ १९ ॥

कालिन्दीने कहा—'मैं भगवान् सूर्यदेवकी पुत्री हूँ। मैं सर्वश्रेष्ठ वरदानी भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ और इसीलिये यह कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ २० ॥ वीर अर्जुन ! मैं लक्ष्मीके परम आश्रय भगवान्को छोड़कर और किसीको अपना पति नहीं बना सकती। अनाथोंके एकमात्र सहारे, प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मेरा नाम है कालिन्दी। यमुनाजलमें मेरे पिता सूर्यने मेरे लिये एक भवन भी बनवा दिया है। उसीमें मैं रहती हूँ। जबतक भगवान्का दर्शन न होगा, मैं यहीं रहूँगी' ॥ २२ ॥ अर्जुनने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे सारी बातें कहीं। वे तो पहलेसे ही यह सब कुछ जानते थे, अब उन्होंने कालिन्दीको अपने रथपर बैठा लिया और धर्मराज युधिष्ठिरके पास ले आये ॥ २३ ॥

इसके बाद पाण्डवोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके रहनेके लिये एक अत्यन्त अद्भुत और विचित्र नगर विश्वकर्माके द्वारा बनवा दिया ॥ २४ ॥ भगवान् इस बार पाण्डवोंको आनन्द देने और उनका हित करनेके लिये वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। इसी बीच अग्निदेवको खाण्डव-वन दिलानेके लिये वे अर्जुनके सारथि भी बने ॥ २५ ॥ खाण्डव-वनका भोजन मिल जानेसे अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुनको गाण्डीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अटूट बाणोंवाले तरकस और एक ऐसा कवच दिया, जिसे कोई अस्त्र-शस्त्रधारी भेद न सके ॥ २६ ॥ खाण्डव-दाहके समय अर्जुनने मय दानवको जलनेसे बचा लिया था। इसलिये उसने अर्जुनसे मित्रता करके उनके लिये एक परम अद्भुत सभा बना दी। उसी सभामें दुर्योधनको

७३२ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५८
समस्त क्लेशोंका अन्त करनेके लिये ही हुआ करता है, उन भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगीं— ॥ ८ ॥ 'श्रीकृष्ण ! जिस समय तुमने हमलोगोंको अपना कुटुम्बी, सम्बन्धी समझकर स्मरण किया और हमारा कुशल-मङ्गल जाननेके लिये भाई अक्रूरको भेजा, उसी समय हमारा कल्याण हो गया, हम अनाथोंको तुमने सनाथ कर दिया ॥ ९ ॥ मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत्के परम हितैषी सुहृद् और आत्मा हो। यह अपना है और यह पराया, इस प्रकारकी भ्रान्ति तुम्हारे अंदर नहीं है। ऐसा होनेपर भी, श्रीकृष्ण ! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदयमें आकर तुम बैठ जाते हो और उनकी क्लेश-परम्पराको सदाके लिये मिटा देते हो' ॥ १० ॥
युधिष्ठिरजीने कहा—'सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ! हमें इस बातका पता नहीं है कि हमने अपने पूर्वजन्मोंमें या इस जन्ममें कौन-सा कल्याण-साधन किया है ? आपका दर्शन बड़े-बड़े योगेश्वर भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं और हम कुबुद्धियोंको घर बैठे ही आपके दर्शन हो रहे हैं' ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार भगवान्का खूब सम्मान किया और कुछ दिन वहीं रहनेकी प्रार्थना की। इसपर भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थके नर-नारियोंको अपनी रूपमाधुरीसे नयनानन्दका दान करते हुए बरसातके चार महीनोंतक सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! एक बार वीरशिरोमणि अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय बाणवाले दो तरकस लिये तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ कवच पहनकर अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर वानर-चिह्नसे चिह्नित ध्वजा लगी हुई थी। इसके बाद विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुन उस गहन वनमें शिकार खेलने गये, जो बहुत-से सिंह, बाघ आदि भयङ्कर जानवरोंसे भरा हुआ था ॥ १३-१४ ॥ वहाँ उन्होंने बहुत-से बाघ, सूअर, भैंसे, काले हरिन, शरभ, गवय (नीलापन लिये हुए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन), गैंडे, हरिन, खरगोश और शल्लक (साही) आदि पशुओंपर अपने बाणोंका निशाना लगाया ॥ १५ ॥ उनमेंसे जो यज्ञके योग्य थे, उन्हें सेवकगण पर्वका समय जानकर राजा युधिष्ठिरके पास ले गये। अर्जुन शिकार खेलते-खेलते थक गये थे। अब वे प्यास लगनेपर यमुनाजीके किनारे गये ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महारथियोंने यमुनाजीमें हाथ-पैर धोकर उनका निर्मल जल पिया और देखा कि एक परमसुन्दरी कन्या वहाँ तपस्या कर रही है ॥ १७ ॥ उस श्रेष्ठ सुन्दरीकी जंघा, दाँत और मुख अत्यन्त सुन्दर थे। अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्णके भेजनेपर अर्जुनने उसके पास जाकर पूछा— ॥ १८ ॥ 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? कहाँसे आयी हो ? और क्या करना चाहती हो ? मैं ऐसा समझता हूँ कि तुम अपने योग्य पति चाह रही हो। हे कल्याणि ! तुम अपनी सारी बात बतलाओ' ॥ १९ ॥
कालिन्दीने कहा—'मैं भगवान् सूर्यदेवकी पुत्री हूँ। मैं सर्वश्रेष्ठ वरदानी भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ और इसीलिये यह कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ २० ॥ वीर अर्जुन ! मैं लक्ष्मीके परम आश्रय भगवान्को छोड़कर और किसीको अपना पति नहीं बना सकती। अनाथोंके एकमात्र सहारे, प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मेरा नाम है कालिन्दी। यमुनाजलमें मेरे पिता सूर्यने मेरे लिये एक भवन भी बनवा दिया है। उसीमें मैं रहती हूँ। जबतक भगवान्का दर्शन न होगा, मैं यहीं रहूँगी' ॥ २२ ॥ अर्जुनने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे सारी बातें कहीं। वे तो पहलेसे ही यह सब कुछ जानते थे, अब उन्होंने कालिन्दीको अपने रथपर बैठा लिया और धर्मराज युधिष्ठिरके पास ले आये ॥ २३ ॥
इसके बाद पाण्डवोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके रहनेके लिये एक अत्यन्त अद्भुत और विचित्र नगर विश्वकर्माके द्वारा बनवा दिया ॥ २४ ॥ भगवान् इस बार पाण्डवोंको आनन्द देने और उनका हित करनेके लिये वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। इसी बीच अग्निदेवको खाण्डव-वन दिलानेके लिये वे अर्जुनके सारथि भी बने ॥ २५ ॥ खाण्डव-वनका भोजन मिल जानेसे अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुनको गाण्डीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अटूट बाणोंवाले तरकस और एक ऐसा कवच दिया, जिसे कोई अस्त्र-शस्त्रधारी भेद न सके ॥ २६ ॥ खाण्डव-दाहके समय अर्जुनने मय दानवको जलनेसे बचा लिया था। इसलिये उसने अर्जुनसे मित्रता करके उनके लिये एक परम अद्भुत सभा बना दी। उसी सभामें दुर्योधनको

जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम हो गया था ॥ २७ ॥

कुछ दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी अनुमति एवं अन्य सम्बन्धियोंका अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदिके साथ द्वारका लौट आये ॥ २८ ॥ वहाँ आकर उन्होंने विवाहके योग्य ऋतु और ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार प्रशंसित पवित्र लग्नमें कालिन्दीजीका पाणिग्रहण किया। इससे उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको परम मङ्गल और परमानन्दकी प्राप्ति हुई ॥ २९ ॥

अवन्ती (उज्जैन) देशके राजा थे विन्द और अनुविन्द। वे दुर्योधनके वशवर्ती तथा अनुयायी थे। उनकी बहिन मित्रविन्दाने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना पति बनाना चाहा। परन्तु विन्द और अनुविन्दने अपनी बहिनको रोक दिया ॥ ३० ॥ परीक्षित्! मित्रविन्दा श्रीकृष्णकी फूआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंकी भरी सभामें उसे बलपूर्वक हर ले गये, सब लोग अपना-सा मुँह लिये देखते ही रह गये ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! कोसलदेशके राजा थे नग्नजित्। वे अत्यन्त धार्मिक थे। उनकी परमसुन्दरी कन्याका नाम था सत्या; नग्नजित्की पुत्री होनेसे वह नाग्नजिती भी कहलाती थी। परीक्षित्! राजाकी प्रतिज्ञाके अनुसार सात दुर्दान्त बैलोंपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण कोई राजा उस कन्यासे विवाह न कर सके। क्योंकि उनके सींग बड़े तीखे थे और वे बैल किसी वीर पुरुषकी गन्ध भी नहीं सह सकते थे ॥ ३२-३३ ॥ जब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने यह समाचार सुना कि जो पुरुष उन बैलोंको जीत लेगा, उसे ही सत्या प्राप्त होगी; तब वे बहुत बड़ी सेना लेकर कोसलपुरी (अयोध्या) पहुँचे ॥ ३४ ॥ कोसलनरेश महाराज नग्नजित्ने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी अगवानी की और आसन आदि देकर बहुत बड़ी पूजा-सामग्रीसे उनका सत्कार किया। भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका बहुत-बहुत अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या सत्याने देखा कि मेरे चिर-अभिलषित रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं; तब उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि 'यदि मैंने व्रत-नियम आदिका पालन करके इन्हींका चिन्तन किया है तो ये ही मेरे पति हों और मेरी विशुद्ध लालसाको पूर्ण करें' ॥ ३६ ॥ नाग्नजिती सत्या मन-ही-मन सोचने लगी—'भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर और बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पदपङ्कजका पराग अपने सिरपर धारण करते हैं और जिन प्रभुने अपनी बनायी हुई मर्यादाका पालन करनेके लिये ही समय-समयपर अनेकों लीलावतार ग्रहण किये हैं, वे प्रभु मेरे किस धर्म, व्रत अथवा नियमसे प्रसन्न होंगे? वे तो केवल अपनी कृपासे ही प्रसन्न हो सकते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! राजा नग्नजित्ने भगवान् श्रीकृष्णकी विधिपूर्वक अर्चा-पूजा करके यह प्रार्थना की—'जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण! आप अपने स्वरूपभूत आनन्दसे ही परिपूर्ण हैं और मैं हूँ एक तुच्छ मनुष्य! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा नग्नजित्का दिया हुआ आसन, पूजा आदि स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्ण बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मुसकराते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! जो क्षत्रिय अपने धर्ममें स्थित है, उसका कुछ भी माँगना उचित नहीं। धर्मज्ञ विद्वानोंने उसके इस कर्मकी निन्दा की है। फिर भी मैं आपसे सौहार्दका—प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये आपकी कन्या चाहता हूँ। हमारे यहाँ इसके बदलेमें कुछ शुल्क देनेकी प्रथा नहीं है ॥ ४० ॥

राजा नग्नजित्ने कहा—'प्रभो! आप समस्त गुणोंके धाम हैं, एकमात्र आश्रय हैं। आपके वक्षःस्थलपर भगवती लक्ष्मी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। आपसे बढ़कर कन्याके लिये अभीष्ट वर भला और कौन हो सकता है? ॥ ४१ ॥ परन्तु यदुवंशशिरोमणे! हमने पहले ही इस विषयमें एक प्रण कर लिया है। कन्याके लिये कौन-सा वर उपयुक्त है, उसका बल-पौरुष कैसा है—इत्यादि बातें जाननेके लिये ही ऐसा किया गया है ॥ ४२ ॥ वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! हमारे ये सातों बैल किसीके वशमें न आनेवाले और बिना सधाये हुए हैं। इन्होंने बहुत-से राजकुमारोंके अङ्गोंको खण्डित करके उनका उत्साह तोड़ दिया है ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण! यदि इन्हें आप ही नाथ लें, अपने वशमें कर लें, तो लक्ष्मीपते!

अ० ५८] * दशम स्कन्ध * ७३३

जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम हो गया था ॥ २७ ॥

कुछ दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी अनुमति एवं अन्य सम्बन्धियोंका अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदिके साथ द्वारका लौट आये ॥ २८ ॥ वहाँ आकर उन्होंने विवाहके योग्य ऋतु और ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार प्रशंसित पवित्र लग्नमें कालिन्दीजीका पाणिग्रहण किया। इससे उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको परम मङ्गल और परमानन्दकी प्राप्ति हुई ॥ २९ ॥

अवन्ती (उज्जैन) देशके राजा थे विन्द और अनुविन्द। वे दुर्योधनके वशवर्ती तथा अनुयायी थे। उनकी बहिन मित्रविन्दाने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना पति बनाना चाहा। परन्तु विन्द और अनुविन्दने अपनी बहिनको रोक दिया ॥ ३० ॥ परीक्षित्! मित्रविन्दा श्रीकृष्णकी फूआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंकी भरी सभामें उसे बलपूर्वक हर ले गये, सब लोग अपना-सा मुँह लिये देखते ही रह गये ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! कोसलदेशके राजा थे नग्नजित्। वे अत्यन्त धार्मिक थे। उनकी परमसुन्दरी कन्याका नाम था सत्या; नग्नजित्की पुत्री होनेसे वह नाग्नजिती भी कहलाती थी। परीक्षित्! राजाकी प्रतिज्ञाके अनुसार सात दुर्दान्त बैलोंपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण कोई राजा उस कन्यासे विवाह न कर सके। क्योंकि उनके सींग बड़े तीखे थे और वे बैल किसी वीर पुरुषकी गन्ध भी नहीं सह सकते थे ॥ ३२-३३ ॥ जब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने यह समाचार सुना कि जो पुरुष उन बैलोंको जीत लेगा, उसे ही सत्या प्राप्त होगी; तब वे बहुत बड़ी सेना लेकर कोसलपुरी (अयोध्या) पहुँचे ॥ ३४ ॥ कोसलनरेश महाराज नग्नजित्ने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी अगवानी की और आसन आदि देकर बहुत बड़ी पूजा-सामग्रीसे उनका सत्कार किया। भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका बहुत-बहुत अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या सत्याने देखा कि मेरे चिर-अभिलषित रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं; तब उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि 'यदि मैंने व्रत-नियम आदिका पालन करके इन्हींका चिन्तन किया है तो ये ही मेरे पति हों और मेरी विशुद्ध लालसाको पूर्ण करें' ॥ ३६ ॥ नाग्नजिती सत्या मन-ही-मन सोचने लगी—'भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर और बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पदपङ्कजका पराग अपने सिरपर धारण करते है और जिन प्रभुने अपनी बनायी हुई मर्यादाका पालन करनेके लिये ही समय-समयपर अनेकों लीलावतार ग्रहण किये हैं, वे प्रभु मेरे किस धर्म, व्रत अथवा नियमसे प्रसन्न होंगे? वे तो केवल अपनी कृपासे ही प्रसन्न हो सकते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! राजा नग्नजित्ने भगवान् श्रीकृष्णकी विधिपूर्वक अर्चा-पूजा करके यह प्रार्थना की—'जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण! आप अपने स्वरूपभूत आनन्दसे ही परिपूर्ण हैं और मैं हूँ एक तुच्छ मनुष्य! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा नग्नजित्का दिया हुआ आसन, पूजा आदि स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्ण बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मुसकराते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! जो क्षत्रिय अपने धर्ममें स्थित है, उसका कुछ भी माँगना उचित नहीं। धर्मज्ञ विद्वानोंने उसके इस कर्मकी निन्दा की है। फिर भी मैं आपसे सौहार्दका—प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये आपकी कन्या चाहता हूँ। हमारे यहाँ इसके बदलेमें कुछ शुल्क देनेकी प्रथा नहीं है ॥ ४० ॥

राजा नग्नजित्ने कहा—'प्रभो! आप समस्त गुणोंके धाम हैं, एकमात्र आश्रय हैं। आपके वक्षःस्थलपर भगवती लक्ष्मी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। आपसे बढ़कर कन्याके लिये अभीष्ट वर भला और कौन हो सकता है? ॥ ४१ ॥ परन्तु यदुवंशशिरोमणे! हमने पहले ही इस विषयमें एक प्रण कर लिया है। कन्याके लिये कौन-सा वर उपयुक्त है, उसका बल-पौरुष कैसा है—इत्यादि बातें जाननेके लिये ही ऐसा किया गया है ॥ ४२ ॥ वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! हमारे ये सातों बैल किसीके वशमें न आनेवाले और बिना सधाये हुए हैं। इन्होंने बहुत-से राजकुमारोंके अङ्गोंको खण्डित करके उनका उत्साह तोड़ दिया है ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण! यदि इन्हें आप ही नाथ लें, अपने वशमें कर लें, तो लक्ष्मीपते!

आप ही हमारी कन्याके लिये अभीष्ट वर होंगे'॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने राजा नग्नजित्का ऐसा प्रण सुनकर कमरमें फेंट कस ली और अपने सात रूप बनाकर खेल-खेलमें ही उन बैलोंको नाथ लिया॥ ४५॥ इससे बैलोंका घमंड चूर हो गया और उनका बल-पौरुष भी जाता रहा। अब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रस्सीसे बाँधकर इस प्रकार खींचने लगे, जैसे खेलते समय नन्हा-सा बालक काठके बैलोंको घसीटता है॥ ४६॥ राजा नग्नजित्को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णको अपनी कन्याका दान कर दिया और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अनुरूप पत्नी सत्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया॥ ४७॥ रानियोंने देखा कि हमारी कन्याको उसके अत्यन्त प्यारे भगवान् श्रीकृष्ण ही पतिके रूपमें प्राप्त हो गये हैं। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और चारों ओर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाने लगा॥ ४८॥ शङ्ख, ढोल, नगारे बजने लगे। सब ओर गाना-बजाना होने लगा। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। सुन्दर वस्त्र, पुष्पोंके हार और गहनोंसे सज-धजकर नगरके नर-नारी आनन्द मनाने लगे॥ ४९॥ राजा नग्नजित्ने दस हजार गौएँ और तीन हजार ऐसी नवयुवती दासियाँ जो सुन्दर वस्त्र तथा गलेमें स्वर्णहार पहने हुए थीं, दहेजमें दीं। इनके साथ ही नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक भी दहेजमें दिये॥ ५०-५१॥ कोसलनरेश राजा नग्नजित्ने कन्या और दामादको रथपर चढ़ाकर एक बड़ी सेनाके साथ विदा किया। उस समय उनका हृदय वात्सल्य-स्नेहके उद्रेकसे द्रवित हो रहा था॥ ५२॥

परीक्षित्! यदुवंशियोंने और राजा नग्नजित्के बैलोंने पहले बहुत-से राजाओंका बल-पौरुष धूलमें मिला दिया था। जब उन राजाओंने यह समाचार सुना, तब उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी यह विजय सहन न हुई। उन लोगोंने नाग्नजिती सत्याको लेकर जाते समय मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णको घेर लिया॥ ५३॥ और वे बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय पाण्डववीर अर्जुनने अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये गाण्डीव धनुष धारण करके—जैसे सिंह छोटे-मोटे पशुओंको खदेड़ दे, वैसे ही उन नरपतियोंको मार-पीटकर भगा दिया॥ ५४॥ तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उस दहेज और सत्याके साथ द्वारकामें आये और वहाँ रहकर गृहस्थोचित विहार करने लगे॥ ५५॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी फूआ श्रुतकीर्ति केकय-देशमें ब्याही गयी थीं। उनकी कन्याका नाम था भद्रा। उसके भाई सन्तर्दन आदिने उसे स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया और उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया॥ ५६॥ मद्र प्रदेशके राजाकी एक कन्या थी लक्ष्मणा। वह अत्यन्त सुलक्षणा थी। जैसे गरुड़ने स्वर्गसे अमृतका हरण किया था, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंवरमें अकेले ही उसे हर लिया॥ ५७॥

परीक्षित्! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी और भी सहस्रों स्त्रियाँ थीं। उन परम सुन्दरियोंको वे भौमासुरको मारकर उसके बंदीगृहसे छुड़ा लाये थे॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्का विवाह

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णने भौमासुरको, जिसने उन स्त्रियोंको बंदीगृहमें डाल रक्खा था, क्यों और कैसे मारा? आप कृपा करके शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णका वह विचित्र चरित्र सुनाइये॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! भौमासुरने वरुणका छत्र, माता अदितिके कुण्डल और मेरु पर्वतपर स्थित देवताओंका मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया था। इसपर सबके राजा इन्द्र द्वारकामें आये और उसकी एक-एक करतूत उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको सुनायी। अब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामाके साथ गरुड़पर सवार हुए और भौमासुरकी राजधानी

७३४ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५९
आप ही हमारी कन्याके लिये अभीष्ट वर होंगे'॥ ४४॥ भगवान् श्रीकृष्णने राजा नग्नजित्का ऐसा प्रण सुनकर कमरमें फेंट कस ली और अपने सात रूप बनाकर खेल-खेलमें ही उन बैलोंको नाथ लिया॥ ४५॥ इससे बैलोंका घमंड चूर हो गया और उनका बल-पौरुष भी जाता रहा। अब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रस्सीसे बाँधकर इस प्रकार खींचने लगे, जैसे खेलते समय नन्हा-सा बालक काठके बैलोंको घसीटता है॥ ४६॥ राजा नग्नजित्को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णको अपनी कन्याका दान कर दिया और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अनुरूप पत्नी सत्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया॥ ४७॥ रानियोंने देखा कि हमारी कन्याको उसके अत्यन्त प्यारे भगवान् श्रीकृष्ण ही पतिके रूपमें प्राप्त हो गये हैं। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और चारों ओर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाने लगा॥ ४८॥ शङ्ख, ढोल, नगारे बजने लगे। सब ओर गाना-बजाना होने लगा। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। सुन्दर वस्त्र, पुष्पोंके हार और गहनोंसे सज-धजकर नगरके नर-नारी आनन्द मनाने लगे॥ ४९॥ राजा नग्नजित्ने दस हजार गौएँ और तीन हजार ऐसी नवयुवती दासियाँ जो सुन्दर वस्त्र तथा गलेमें स्वर्णहार पहने हुए थीं, दहेजमें दीं। इनके साथ ही नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक भी दहेजमें दिये॥ ५०-५१॥ कोसलनरेश राजा नग्नजित्ने कन्या और दामादको रथपर चढ़ाकर एक बड़ी सेनाके साथ विदा किया। उस समय उनका हृदय वात्सल्य-स्नेहके उद्रेकसे द्रवित हो रहा था॥ ५२॥

परीक्षित्! यदुवंशियोंने और राजा नग्नजित्के बैलोंने पहले बहुत-से राजाओंका बल-पौरुष धूलमें मिला दिया था। जब उन राजाओंने यह समाचार सुना, तब उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी यह विजय सहन न हुई। उन लोगोंने नाग्नजिती सत्याको लेकर जाते समय मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णको घेर लिया॥ ५३॥ और वे बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय पाण्डववीर अर्जुनने अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये गाण्डीव धनुष धारण करके—जैसे सिंह छोटे-मोटे पशुओंको खदेड़ दे, वैसे ही उन नरपतियोंको मार-पीटकर भगा दिया॥ ५४॥ तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उस दहेज और सत्याके साथ द्वारकामें आये और वहाँ रहकर गृहस्थोचित विहार करने लगे॥ ५५॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी फूआ श्रुतकीर्ति केकय-देशमें ब्याही गयी थीं। उनकी कन्याका नाम था भद्रा। उसके भाई सन्तर्दन आदिने उसे स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया और उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया॥ ५६॥ मद्र प्रदेशके राजाकी एक कन्या थी लक्ष्मणा। वह अत्यन्त सुलक्षणा थी। जैसे गरुड़ने स्वर्गसे अमृतका हरण किया था, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंवरमें अकेले ही उसे हर लिया॥ ५७॥

परीक्षित्! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी और भी सहस्रों स्त्रियाँ थीं। उन परम सुन्दरियोंको वे भौमासुरको मारकर उसके बंदीगृहसे छुड़ा लाये थे॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्का विवाह

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णने भौमासुरको, जिसने उन स्त्रियोंको बंदीगृहमें डाल रक्खा था, क्यों और कैसे मारा? आप कृपा करके शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णका वह विचित्र चरित्र सुनाइये॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! भौमासुरने वरुणका छत्र, माता अदितिके कुण्डल और मेरु पर्वतपर स्थित देवताओंका मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया था। इसपर सबके राजा इन्द्र द्वारकामें आये और उसकी एक-एक करतूत उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको सुनायी। अब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामाके साथ गरुड़पर सवार हुए और भौमासुरकी राजधानी

प्राग्ज्योतिषपुरमें गये॥ २॥ प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। पहले तो उसके चारों ओर पहाड़ोंकी किलेबंदी थी, उसके बाद शस्त्रोंका घेरा लगाया हुआ था। फिर जलसे भरी खाईं थी, उसके बाद आग या बिजलीकी चहारदीवारी थी और उसके भीतर वायु (गैस) बंद करके रक्खा गया था। इससे भी भीतर मुर दैत्यने नगरके चारों ओर अपने दस हजार घोर एवं सुदृढ फंदे (जाल) बिछा रक्खे थे॥ ३॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाकी चोटसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला और शस्त्रोंकी मोरचेबंदीको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। चक्रके द्वारा अग्नि, जल और वायुकी चहारदीवारियोंको तहस-नहस कर दिया और मुर दैत्यके फंदोंको तलवारसे काट-कूटकर अलग रख दिया॥ ४॥ जो बड़े-बड़े यन्त्र—मशीनें वहाँ लगी हुई थीं, उनको तथा वीर-पुरुषोंके हृदयको शङ्खनादसे विदीर्ण कर दिया और नगरके परकोटेको गदाधर भगवान्ने अपनी भारी गदासे ध्वंस कर डाला॥ ५॥

भगवान्के पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि प्रलयकालीन बिजलीकी कड़कके समान महाभयङ्कर थी। उसे सुनकर मुर दैत्यकी नींद टूटी और वह बाहर निकल आया। उसके पाँच सिर थे और अबतक वह जलके भीतर सो रहा था॥ ६॥ वह दैत्य प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी था। वह इतना भयङ्कर था कि उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी आसान काम नहीं था। उसने त्रिशूल उठाया और इस प्रकार भगवान्की ओर दौड़ा, जैसे साँप गरुड़जीपर टूट पड़े। उस समय ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने पाँचों मुखोंसे त्रिलोकीको निगल जायगा॥ ७॥ उसने अपने त्रिशूलको बड़े वेगसे घुमाकर गरुड़जीपर चलाया और फिर अपने पाँचों मुखोंसे घोर सिंहनाद करने लगा। उसके सिंहनादका महान् शब्द पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाओंमें फैलकर सारे ब्रह्माण्डमें भर गया॥ ८॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मुर दैत्यका त्रिशूल गरुड़की ओर बड़े वेगसे आ रहा है। तब अपना हस्तकौशल दिखाकर फुर्तीसे उन्होंने दो बाण मारे, जिनसे वह त्रिशूल कटकर तीन टूक हो गया। इसके साथ ही मुर दैत्यके मुखोंमें भी भगवान्ने बहुत-से बाण मारे। इससे वह दैत्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने भगवान्पर अपनी गदा चलायी॥ ९॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे मुर दैत्यकी गदाको अपने पास पहुँचनेके पहले ही चूर-चूर कर दिया। अब वह अस्त्रहीन हो जानेके कारण अपनी भुजाएँ फैलाकर श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा और उन्होंने खेल-खेलमें ही चक्रसे उसके पाँचों सिर उतार लिये॥ १०॥ सिर कटते ही मुर दैत्यके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह ठीक वैसे ही जलमें गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे शिखर कट जानेपर कोई पर्वत समुद्रमें गिर पड़ा हो। मुर दैत्यके सात पुत्र थे—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण। ये अपने पिताकी मृत्युसे अत्यन्त शोकाकुल हो उठे और फिर बदला लेनेके लिये क्रोधसे भरकर शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो गये तथा पीठ नामक दैत्यको अपना सेनापति बनाकर भौमासुरके आदेशसे श्रीकृष्णपर चढ़ आये॥ ११-१२॥ वे वहाँ आकर बड़े क्रोधसे भगवान् श्रीकृष्णपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और त्रिशूल आदि प्रचण्ड शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। परीक्षित्! भगवान्की शक्ति अमोघ और अनन्त है। उन्होंने अपने बाणोंसे उनके कोटि-कोटि शस्त्रास्त्र तिल-तिल करके काट गिराये॥ १३॥ भगवान्के शस्त्रप्रहारसे सेनापति पीठ और उसके साथी दैत्योंके सिर, जाँघें, भुजा, पैर और कवच कट गये और उन सभीको भगवान्ने यमराजके घर पहुँचा दिया। जब पृथ्वीके पुत्र नरकासुर (भौमासुर) ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और बाणोंसे हमारी सेना और सेनापतियोंका संहार हो गया, तब उसे असह्य क्रोध हुआ। वह समुद्रतटपर पैदा हुए बहुत-से मदवाले हाथियोंकी सेना लेकर नगरसे बाहर निकला। उसने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नीके साथ आकाशमें गरुड़पर स्थित हैं, जैसे सूर्यके ऊपर बिजलीके साथ वर्षाकालीन श्याममेघ शोभायमान हो। भौमासुरने स्वयं भगवान्के ऊपर शतघ्नी नामकी शक्ति चलायी और उसके सब सैनिकोंने भी एक ही साथ उनपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़े॥ १४-१५॥ अब भगवान् श्रीकृष्ण भी चित्र-विचित्र पंखवाले तीखे-तीखे बाण चलाने लगे। इससे उसी समय भौमासुरके सैनिकोंकी भुजाएँ, जाँघें, गर्दन और धड़ कट-कटकर गिरने लगे; हाथी और घोड़े

अ० ५९] * दशम स्कन्ध * ७३५

प्राग्ज्योतिषपुरमें गये॥ २॥ प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। पहले तो उसके चारों ओर पहाड़ोंकी किलेबंदी थी, उसके बाद शस्त्रोंका घेरा लगाया हुआ था। फिर जलसे भरी खाईं थी, उसके बाद आग या बिजलीकी चहारदीवारी थी और उसके भीतर वायु (गैस) बंद करके रक्खा गया था। इससे भी भीतर मुर दैत्यने नगरके चारों ओर अपने दस हजार घोर एवं सुदृढ फंदे (जाल) बिछा रक्खे थे॥ ३॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाकी चोटसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला और शस्त्रोंकी मोरचेबंदीको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। चक्रके द्वारा अग्नि, जल और वायुकी चहारदीवारियोंको तहस-नहस कर दिया और मुर दैत्यके फंदोंको तलवारसे काट-कूटकर अलग रख दिया॥ ४॥ जो बड़े-बड़े यन्त्र—मशीनें वहाँ लगी हुई थीं, उनको तथा वीर-पुरुषोंके हृदयको शङ्खनादसे विदीर्ण कर दिया और नगरके परकोटेको गदाधर भगवान्ने अपनी भारी गदासे ध्वंस कर डाला॥ ५॥

भगवान्के पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि प्रलयकालीन बिजलीकी कड़कके समान महाभयङ्कर थी। उसे सुनकर मुर दैत्यकी नींद टूटी और वह बाहर निकल आया। उसके पाँच सिर थे और अबतक वह जलके भीतर सो रहा था॥ ६॥ वह दैत्य प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी था। वह इतना भयङ्कर था कि उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी आसान काम नहीं था। उसने त्रिशूल उठाया और इस प्रकार भगवान्की ओर दौड़ा, जैसे साँप गरुड़जीपर टूट पड़े। उस समय ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने पाँचों मुखोंसे त्रिलोकीको निगल जायगा॥ ७॥ उसने अपने त्रिशूलको बड़े वेगसे घुमाकर गरुड़जीपर चलाया और फिर अपने पाँचों मुखोंसे घोर सिंहनाद करने लगा। उसके सिंहनादका महान् शब्द पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाओंमें फैलकर सारे ब्रह्माण्डमें भर गया॥ ८॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मुर दैत्यका त्रिशूल गरुड़की ओर बड़े वेगसे आ रहा है। तब अपना हस्तकौशल दिखाकर फुर्तीसे उन्होंने दो बाण मारे, जिनसे वह त्रिशूल कटकर तीन टूक हो गया। इसके साथ ही मुर दैत्यके मुखोंमें भी भगवान्ने बहुत-से बाण मारे। इससे वह दैत्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने भगवान्पर अपनी गदा चलायी॥ ९॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे मुर दैत्यकी गदाको अपने पास पहुँचनेके पहले ही चूर-चूर कर दिया। अब वह अस्त्रहीन हो जानेके कारण अपनी भुजाएँ फैलाकर श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा और उन्होंने खेल-खेलमें ही चक्रसे उसके पाँचों सिर उतार लिये॥ १०॥ सिर कटते ही मुर दैत्यके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह ठीक वैसे ही जलमें गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे शिखर कट जानेपर कोई पर्वत समुद्रमें गिर पड़ा हो। मुर दैत्यके सात पुत्र थे—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण। ये अपने पिताकी मृत्युसे अत्यन्त शोकाकुल हो उठे और फिर बदला लेनेके लिये क्रोधसे भरकर शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो गये तथा पीठ नामक दैत्यको अपना सेनापति बनाकर भौमासुरके आदेशसे श्रीकृष्णपर चढ़ आये॥ ११-१२॥ वे वहाँ आकर बड़े क्रोधसे भगवान् श्रीकृष्णपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और त्रिशूल आदि प्रचण्ड शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। परीक्षित्! भगवान्की शक्ति अमोघ और अनन्त है। उन्होंने अपने बाणोंसे उनके कोटि-कोटि शस्त्रास्त्र तिल-तिल करके काट गिराये॥ १३॥ भगवान्के शस्त्रप्रहारसे सेनापति पीठ और उसके साथी दैत्योंके सिर, जाँघें, भुजा, पैर और कवच कट गये और उन सभीको भगवान्ने यमराजके घर पहुँचा दिया। जब पृथ्वीके पुत्र नरकासुर (भौमासुर) ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और बाणोंसे हमारी सेना और सेनापतियोंका संहार हो गया, तब उसे असह्य क्रोध हुआ। वह समुद्रतटपर पैदा हुए बहुत-से मदवाले हाथियोंकी सेना लेकर नगरसे बाहर निकला। उसने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नीके साथ आकाशमें गरुड़पर स्थित हैं, जैसे सूर्यके ऊपर बिजलीके साथ वर्षाकालीन श्याममेघ शोभायमान हो। भौमासुरने स्वयं भगवान्के ऊपर शतघ्नी नामकी शक्ति चलायी और उसके सब सैनिकोंने भी एक ही साथ उनपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़े॥ १४-१५॥ अब भगवान् श्रीकृष्ण भी चित्र-विचित्र पंखवाले तीखे-तीखे बाण चलाने लगे। इससे उसी समय भौमासुरके सैनिकोंकी भुजाएँ, जाँघें, गर्दन और धड़ कट-कटकर गिरने लगे; हाथी और घोड़े

भी मरने लगे ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! भौमासुरके सैनिकोंने भगवान्‌पर जो-जो अस्त्र-शस्त्र चलाये थे, उनमेंसे प्रत्येकको भगवान्‌ने तीन-तीन तीखे बाणोंसे काट गिराया ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़जीपर सवार थे और गरुड़जी अपने पंखोंसे हाथियोंको मार रहे थे। उनकी चोंच, पंख और पंजोंकी मारसे हाथियोंको बड़ी पीड़ा हुई और वे सब-के-सब आर्त होकर युद्धभूमिसे भागकर नगरमें घुस गये। अब वहाँ अकेला भौमासुर ही लड़ता रहा। जब उसने देखा कि गरुड़जीकी मारसे पीड़ित होकर मेरी सेना भाग रही है, तब उसने उनपर वह शक्ति चलायी, जिसने वज्रको भी विफल कर दिया था। परन्तु उसकी चोटसे पक्षिराज गरुड़ तनिक भी विचलित न हुए, मानो किसीने मतवाले गजराजपर फूलोंकी मालासे प्रहार किया हो ॥ १८-२० ॥ अब भौमासुरने देखा कि मेरी एक भी चाल नहीं चलती, सारे उद्योग विफल होते जा रहे हैं, तब उसने श्रीकृष्णको मार डालनेके लिये एक त्रिशूल उठाया। परन्तु उसे अभी वह छोड़ भी न पाया था कि भगवान् श्रीकृष्णने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका सिर काट डाला ॥ २१ ॥ उसका जगमगाता हुआ सिर कुण्डल और सुन्दर किरीटके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे देखकर भौमासुरके सगे-सम्बन्धी हाय-हाय पुकार उठे, ऋषिलोग 'साधु साधु' कहने लगे और देवतालोग भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

अब पृथ्वी भगवान्‌के पास आयी। उसने भगवान् श्रीकृष्णके गलेमें वैजयन्तीके साथ वनमाला पहना दी और अदिति माताके जगमगाते हुए कुण्डल, जो तपाये हुए सोनेके एवं रत्नजटित थे, भगवान्‌को दे दिये तथा वरुणका छत्र और साथ ही एक महामणि भी उनको दी ॥ २३ ॥ राजन् ! इसके बाद पृथ्वीदेवी बड़े-बड़े देवताओंके द्वारा पूजित विश्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्तिभावभरे हृदयसे उनकी स्तुति करने लगीं ॥ २४ ॥

पृथ्वीदेवीने कहा—शङ्ख चक्र गदाधारी देवदेवेश्वर ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। परमात्मन् ! आप अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसीके अनुसार रूप प्रकट किया करते हैं। आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २५ ॥ प्रभो ! आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। आप कमलकी माला पहनते हैं। आपके नेत्र कमलसे खिले हुए और शान्तिदायक हैं। आपके चरण कमलके समान सुकुमार और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २६ ॥ आप समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्यके आश्रय हैं। आप सर्वव्यापक होनेपर भी स्वयं वसुदेवनन्दनके रूपमें प्रकट हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप ही पुरुष हैं और समस्त कारणोंके भी परम कारण हैं। आप स्वयं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ २७ ॥ आप स्वयं तो हैं जन्मरहित, परन्तु इस जगत्‌के जन्मदाता आप ही हैं। आप ही अनन्त शक्तियोंके आश्रय ब्रह्म हैं। जगत्‌का जो कुछ भी कार्य-कारणमय रूप है, जितने भी प्राणी या अप्राणी हैं—सब आपके ही स्वरूप हैं। परमात्मन् ! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार नमस्कार ॥ २८ ॥ प्रभो ! जब आप जगत्‌की रचना करना चाहते हैं, तब उत्कट रजोगुणको, और जब इसका प्रलय करना चाहते हैं तब तमोगुणको, तथा जब इसका पालन करना चाहते हैं तब सत्त्वगुणको स्वीकार करते हैं। परन्तु यह सब करनेपर भी आप इन गुणोंसे ढकते नहीं, लिप्त नहीं होते। जगत्पते ! आप स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं तथा उन तीनोंसे परे भी हैं ॥ २९ ॥ भगवन् ! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ-देवता, अहङ्कार और महत्तत्त्व—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमके कारण ही पृथक् प्रतीत हो रहा है ॥ ३० ॥ शरणागत-भय-भञ्जन प्रभो ! मेरे पुत्र भौमासुरका यह पुत्र भगदत्त अत्यन्त भयभीत हो रहा है। मैं इसे आपके चरणकमलोंकी शरणमें ले आयी हूँ। प्रभो ! आप इसकी रक्षा कीजिये और इसके सिरपर अपना वह करकमल रखिये जो सारे जगत्‌के समस्त पाप-तापोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब पृथ्वीने भक्तिभावसे विनम्र होकर इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी

७३६ * श्रीमद्भागवत * [अ० ५९

भी मरने लगे ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! भौमासुरके सैनिकोंने भगवान्‌पर जो-जो अस्त्र-शस्त्र चलाये थे, उनमेंसे प्रत्येकको भगवान्‌ने तीन-तीन तीखे बाणोंसे काट गिराया ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़जीपर सवार थे और गरुड़जी अपने पंखोंसे हाथियोंको मार रहे थे। उनकी चोंच, पंख और पंजोंकी मारसे हाथियोंको बड़ी पीड़ा हुई और वे सब-के-सब आर्त होकर युद्धभूमिसे भागकर नगरमें घुस गये। अब वहाँ अकेला भौमासुर ही लड़ता रहा। जब उसने देखा कि गरुड़जीकी मारसे पीड़ित होकर मेरी सेना भाग रही है, तब उसने उनपर वह शक्ति चलायी, जिसने वज्रको भी विफल कर दिया था। परन्तु उसकी चोटसे पक्षिराज गरुड़ तनिक भी विचलित न हुए, मानो किसीने मतवाले गजराजपर फूलोंकी मालासे प्रहार किया हो ॥ १८-२० ॥ अब भौमासुरने देखा कि मेरी एक भी चाल नहीं चलती, सारे उद्योग विफल होते जा रहे हैं, तब उसने श्रीकृष्णको मार डालनेके लिये एक त्रिशूल उठाया। परन्तु उसे अभी वह छोड़ भी न पाया था कि भगवान् श्रीकृष्णने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका सिर काट डाला ॥ २१ ॥ उसका जगमगाता हुआ सिर कुण्डल और सुन्दर किरीटके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे देखकर भौमासुरके सगे-सम्बन्धी हाय-हाय पुकार उठे, ऋषिलोग 'साधु साधु' कहने लगे और देवतालोग भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

अब पृथ्वी भगवान्‌के पास आयी। उसने भगवान् श्रीकृष्णके गलेमें वैजयन्तीके साथ वनमाला पहना दी और अदिति माताके जगमगाते हुए कुण्डल, जो तपाये हुए सोनेके एवं रत्नजटित थे, भगवान्‌को दे दिये तथा वरुणका छत्र और साथ ही एक महामणि भी उनको दी ॥ २३ ॥ राजन् ! इसके बाद पृथ्वीदेवी बड़े-बड़े देवताओंके द्वारा पूजित विश्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्तिभावभरे हृदयसे उनकी स्तुति करने लगीं ॥ २४ ॥

पृथ्वीदेवीने कहा—शङ्ख चक्र गदाधारी देवदेवेश्वर ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। परमात्मन् ! आप अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसीके अनुसार रूप प्रकट किया करते हैं। आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २५ ॥ प्रभो ! आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। आप कमलकी माला पहनते हैं। आपके नेत्र कमलसे खिले हुए और शान्तिदायक है। आपके चरण कमलके समान सुकुमार और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २६ ॥ आप समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्यके आश्रय हैं। आप सर्वव्यापक होनेपर भी स्वयं वसुदेवनन्दनके रूपमें प्रकट हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप ही पुरुष हैं और समस्त कारणोंके भी परम कारण हैं। आप स्वयं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ २७ ॥ आप स्वयं तो हैं जन्मरहित, परन्तु इस जगत्‌के जन्मदाता आप ही हैं। आप ही अनन्त शक्तियोंके आश्रय ब्रह्म हैं। जगत्‌का जो कुछ भी कार्य-कारणमय रूप है, जितने भी प्राणी या अप्राणी हैं—सब आपके ही स्वरूप हैं। परमात्मन् ! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार नमस्कार ॥ २८ ॥ प्रभो ! जब आप जगत्‌की रचना करना चाहते हैं, तब उत्कट रजोगुणको, और जब इसका प्रलय करना चाहते हैं तब तमोगुणको, तथा जब इसका पालन करना चाहते हैं तब सत्त्वगुणको स्वीकार करते हैं। परन्तु यह सब करनेपर भी आप इन गुणोंसे ढकते नहीं, लिप्त नहीं होते। जगत्पते ! आप स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं तथा उन तीनोंसे परे भी हैं ॥ २९ ॥ भगवन् ! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ-देवता, अहङ्कार और महत्तत्त्व—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमके कारण ही पृथक् प्रतीत हो रहा है ॥ ३० ॥ शरणागत-भय-भञ्जन प्रभो ! मेरे पुत्र भौमासुरका यह पुत्र भगदत्त अत्यन्त भयभीत हो रहा है। मैं इसे आपके चरणकमलोंकी शरणमें ले आयी हूँ। प्रभो ! आप इसकी रक्षा कीजिये और इसके सिरपर अपना वह करकमल रखिये जो सारे जगत्‌के समस्त पाप-तापोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब पृथ्वीने भक्तिभावसे विनम्र होकर इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी

स्तुति-प्रार्थना की, तब उन्होंने भगदत्तको अभयदान दिया और भौमासुरके समस्त सम्पत्तियोंसे सम्पन्न महलमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर भगवान्‌ने देखा कि भौमासुरने बलपूर्वक राजाओंसे सोलह हजार राजकुमारियाँ छीनकर अपने यहाँ रख छोड़ी थीं ॥ ३३ ॥ जब उन राजकुमारियोंने अन्तःपुरमें पधारे हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी अहैतुकी कृपा तथा अपना सौभाग्य समझकर मन-ही-मन भगवान्‌को अपने परम प्रियतम पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ ३४ ॥ उन राजकुमारियोंमेंसे प्रत्येकने अलग-अलग अपने मनमें यही निश्चय किया कि 'ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्होंने प्रेम-भावसे अपना हृदय भगवान्‌के प्रति निछावर कर दिया ॥ ३५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उन राजकुमारियोंको सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्राभूषण पहनाकर पालकियोंसे द्वारका भेज दिया और उनके साथ ही बहुत-से खजाने, रथ, घोड़े तथा अतुल सम्पत्ति भी भेजी ॥ ३६ ॥ ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त वेगवान् चार-चार दाँतोंवाले सफेद रंगके चौंसठ हाथी भी भगवान्‌ने वहाँसे द्वारका भेजे ॥ ३७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अमरावतीमें स्थित देवराज इन्द्रके महलोंमें गये। वहाँ देवराज इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीके साथ सत्यभामाजी और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की, तब भगवान्‌ने अदितिके कुण्डल उन्हें दे दिये ॥ ३८ ॥ वहाँसे लौटते समय सत्यभामाजीकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुड़पर रख लिया और देवराज इन्द्र तथा समस्त देवताओंको जीतकर उसे द्वारकामें ले आये ॥ ३९ ॥ भगवान्‌ने उसे सत्यभामाके महलके बगीचेमें लगा दिया। इससे उस बगीचेकी शोभा अत्यन्त बढ़ गयी। कल्पवृक्षके साथ उसके गन्ध और मकरन्दके लोभी भौंरे स्वर्गसे द्वारकामें चले आये थे ॥ ४० ॥ परीक्षित्! देखो तो सही, जब इन्द्रको अपना काम बनाना था, तब तो उन्होंने अपना सिर झुकाकर मुकुटकी नोकसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उनसे सहायताकी भिक्षा माँगी थी, परन्तु जब काम बन गया, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णसे लड़ाई ठान ली। सचमुच ये देवता भी बड़े तमोगुणी हैं और सबसे बड़ा दोष तो उनमें धनाढ्यताका है। धिक्कार है ऐसी धनाढ्यताको ॥ ४१ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने एक ही मुहूर्तमें अलग-अलग भवनोंमें अलग-अलग रूप धारण करके एक ही साथ सब राजकुमारियोंका शास्त्रोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया। सर्वशक्तिमान् अविनाशी भगवान्‌के लिये इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ॥ ४२ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌की पत्नियोंके अलग-अलग महलोंमें ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनके बराबर जगत्‌में कहीं भी और कोई भी सामग्री नहीं है; फिर अधिककी तो बात ही क्या है। उन महलोंमें रहकर मति-गतिके परेकी लीला करनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्दमें मग्न रहते हुए लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा उन पत्नियोंके साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्थीमें रहकर गृहस्थ-धर्मके अनुसार आचरण करता हो ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको और उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागम, प्रेमालाप तथा भाव बढ़ानेवाली लज्जासे युक्त होकर सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ४४ ॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं, फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते, तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने ही हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ४५ ॥

अ० ५९] * दशम स्कन्ध * ७३७

स्तुति-प्रार्थना की, तब उन्होंने भगदत्तको अभयदान दिया और भौमासुरके समस्त सम्पत्तियोंसे सम्पन्न महलमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर भगवान्‌ने देखा कि भौमासुरने बलपूर्वक राजाओंसे सोलह हजार राजकुमारियाँ छीनकर अपने यहाँ रख छोड़ी थीं ॥ ३३ ॥ जब उन राजकुमारियोंने अन्तःपुरमें पधारे हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी अहैतुकी कृपा तथा अपना सौभाग्य समझकर मन-ही-मन भगवान्‌को अपने परम प्रियतम पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ ३४ ॥ उन राजकुमारियोंमेंसे प्रत्येकने अलग-अलग अपने मनमें यही निश्चय किया कि 'ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्होंने प्रेम-भावसे अपना हृदय भगवान्‌के प्रति निछावर कर दिया ॥ ३५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उन राजकुमारियोंको सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्राभूषण पहनाकर पालकियोंसे द्वारका भेज दिया और उनके साथ ही बहुत-से खजाने, रथ, घोड़े तथा अतुल सम्पत्ति भी भेजी ॥ ३६ ॥ ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त वेगवान् चार-चार दाँतोंवाले सफेद रंगके चौंसठ हाथी भी भगवान्‌ने वहाँसे द्वारका भेजे ॥ ३७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अमरावतीमें स्थित देवराज इन्द्रके महलोंमें गये। वहाँ देवराज इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीके साथ सत्यभामाजी और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की, तब भगवान्‌ने अदितिके कुण्डल उन्हें दे दिये ॥ ३८ ॥ वहाँसे लौटते समय सत्यभामाजीकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुड़पर रख लिया और देवराज इन्द्र तथा समस्त देवताओंको जीतकर उसे द्वारकामें ले आये ॥ ३९ ॥ भगवान्‌ने उसे सत्यभामाके महलके बगीचेमें लगा दिया। इससे उस बगीचेकी शोभा अत्यन्त बढ़ गयी। कल्पवृक्षके साथ उसके गन्ध और मकरन्दके लोभी भौंरे स्वर्गसे द्वारकामें चले आये थे ॥ ४० ॥ परीक्षित्! देखो तो सही, जब इन्द्रको अपना काम बनाना था, तब तो उन्होंने अपना सिर झुकाकर मुकुटकी नोकसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उनसे सहायताकी भिक्षा माँगी थी, परन्तु जब काम बन गया, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णसे लड़ाई ठान ली। सचमुच ये देवता भी बड़े तमोगुणी हैं और सबसे बड़ा दोष तो उनमें धनाढ्यताका है। धिक्कार है ऐसी धनाढ्यताको ॥ ४१ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने एक ही मुहूर्तमें अलग-अलग भवनोंमें अलग-अलग रूप धारण करके एक ही साथ सब राजकुमारियोंका शास्त्रोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया। सर्वशक्तिमान् अविनाशी भगवान्‌के लिये इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ॥ ४२ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌की पत्नियोंके अलग-अलग महलोंमें ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनके बराबर जगत्‌में कहीं भी और कोई भी सामग्री नहीं है; फिर अधिककी तो बात ही क्या है। उन महलोंमें रहकर मति-गतिके परेकी लीला करनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्दमें मग्न रहते हुए लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा उन पत्नियोंके साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्थीमें रहकर गृहस्थ-धर्मके अनुसार आचरण करता हो ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको और उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागम, प्रेमालाप तथा भाव बढ़ानेवाली लज्जासे युक्त होकर सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ४४ ॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं, फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते, तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने ही हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ४५ ॥

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक दिन समस्त जगत्के परमपिता और ज्ञानदाता भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पलँगपर आरामसे बैठे हुए थे। भीष्मक-नन्दिनी श्रीरुक्मिणीजी सखियोंके साथ अपने पतिदेवकी सेवा कर रही थीं, उन्हें पंखा झल रही थीं॥ १॥ परीक्षित्! जो सर्वशक्तिमान् भगवान् खेल-खेलमें ही इस जगत्की रचना, रक्षा और प्रलय करते हैं—वही अजन्मा प्रभु अपनी बनायी हुई धर्म-मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २॥ रुक्मिणीजीका महल बड़ा ही सुन्दर था। उसमें ऐसे-ऐसे चँदोवे तने हुए थे, जिनमें मोतियोंकी लड़ियोंकी झालरें लटक रही थीं। मणियोंके दीपक जगमगा रहे थे॥ ३॥ बेला-चमेलीके फूल और हार महँ महँ महक रहे थे। फूलोंपर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। सुन्दर-सुन्दर झरोखोंकी जालियोंमेंसे चन्द्रमाकी शुभ्र किरणें महलके भीतर छिटक रही थीं॥ ४॥ उद्यानमें पारिजातके उपवनकी सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द शीतल वायु चल रही थी। झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगरके धूपका धूआँ बाहर निकल रहा था॥ ५॥ ऐसे महलमें दूधके फेनके समान कोमल और उज्ज्वल बिछौनोंसे युक्त सुन्दर पलँगपर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे विराजमान थे और रुक्मिणीजी त्रिलोकीके स्वामीको पतिरूपमें प्राप्त करके उनकी सेवा कर रही थीं॥ ६॥ रुक्मिणीजीने अपनी सखीके हाथसे वह चँवर ले लिया, जिसमें रत्नोंकी डाँडी लगी थी और परमरूपवती लक्ष्मीरूपिणी देवी रुक्मिणीजी उसे डुला-डुलाकर भगवान्की सेवा करने लगीं॥ ७॥ उनके करकमलोंमें जड़ाऊ अँगूठियाँ, कंगन और चँवर शोभा पा रहे थे। चरणोंमें मणिजटित पायजेब रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। अञ्चलके नीचे छिपे हुए स्तनोंकी केशरकी लालिमासे हार लाल-लाल जान पड़ता था और चमक रहा था। नितम्बभागमें बहुमूल्य करधनीकी लड़ियाँ लटक रही थीं। इस प्रकार वे भगवान्के पास ही रहकर उनकी सेवामें संलग्न थीं॥ ८॥ रुक्मिणीजीकी घुँघराली अलकें, कानोंके कुण्डल और गलेके स्वर्णहार अत्यन्त विलक्षण थे। उनके मुखचन्द्रसे मुसकराहटकी अमृतवर्षा हो रही थी। ये रुक्मिणीजी अलौकिक रूपलावण्यवती लक्ष्मीजी ही तो हैं। उन्होंने जब देखा कि भगवान्ने लीलाके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण किया है, तब उन्होंने भी उनके अनुरूप रूप प्रकट कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि रुक्मिणीजी मेरे परायण हैं, मेरी अनन्य प्रेयसी हैं। तब उन्होंने बड़े प्रेमसे मुसकराते हुए उनसे कहा॥ ९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजकुमारी! बड़े-बड़े नरपति, जिनके पास लोकपालोंके समान ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, जो बड़े महानुभाव और श्रीमान् हैं तथा सुन्दरता, उदारता और बलमें भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं, तुमसे विवाह करना चाहते थे॥ १०॥ तुम्हारे पिता और भाई भी उन्हींके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते थे, यहाँतक कि उन्होंने वाग्दान भी कर दिया था। शिशुपाल आदि बड़े-बड़े वीरोंको, जो कामोन्मत्त होकर तुम्हारे याचक बन रहे थे, तुमने छोड़ दिया और मेरे-जैसे व्यक्तिको, जो किसी प्रकार तुम्हारे समान नहीं है, अपना पति स्वीकार किया। ऐसा तुमने क्यों किया?॥ ११॥ सुन्दरी! देखो, हम जरासन्ध आदि राजाओंसे डरकर समुद्रकी शरणमें आ बसे हैं। बड़े-बड़े बलवानोंसे हमने वैर बाँध रक्खा है और प्रायः राजसिंहासनके अधिकारसे भी हम वञ्चित ही हैं॥ १२॥ सुन्दरी! हम किस मार्गके अनुयायी हैं, हमारा कौन-सा मार्ग है, यह भी लोगोंको अच्छी तरह मालूम नहीं है। हमलोग लौकिक व्यवहारका भी ठीक-ठीक पालन नहीं करते, अनुनय-विनयके द्वारा स्त्रियोंको रिझाते भी नहीं। जो स्त्रियाँ हमारे-जैसे पुरुषोंका अनुसरण करती हैं, उन्हें प्रायः क्लेश-ही-क्लेश भोगना पड़ता है॥ १३॥ सुन्दरी! हम तो सदाके अकिञ्चन हैं। न तो हमारे पास कभी कुछ था और न रहेगा। ऐसे ही अकिञ्चन लोगोंसे हम प्रेम भी करते हैं और वे लोग भी हमसे प्रेम करते हैं। यही कारण है कि अपनेको धनी समझनेवाले लोग प्रायः हमसे प्रेम

७३८ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६०

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक दिन समस्त जगत्के परमपिता और ज्ञानदाता भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पलँगपर आरामसे बैठे हुए थे। भीष्मक-नन्दिनी श्रीरुक्मिणीजी सखियोंके साथ अपने पतिदेवकी सेवा कर रही थीं, उन्हें पंखा झल रही थीं॥ १॥ परीक्षित्! जो सर्वशक्तिमान् भगवान् खेल-खेलमें ही इस जगत्की रचना, रक्षा और प्रलय करते हैं—वही अजन्मा प्रभु अपनी बनायी हुई धर्म-मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २॥ रुक्मिणीजीका महल बड़ा ही सुन्दर था। उसमें ऐसे-ऐसे चँदोवे तने हुए थे, जिनमें मोतियोंकी लड़ियोंकी झालरें लटक रही थीं। मणियोंके दीपक जगमगा रहे थे॥ ३॥ बेला-चमेलीके फूल और हार महँ महँ महक रहे थे। फूलोंपर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। सुन्दर-सुन्दर झरोखोंकी जालियोंमेंसे चन्द्रमाकी शुभ्र किरणें महलके भीतर छिटक रही थीं॥ ४॥ उद्यानमें पारिजातके उपवनकी सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द शीतल वायु चल रही थी। झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगरके धूपका धूआँ बाहर निकल रहा था॥ ५॥ ऐसे महलमें दूधके फेनके समान कोमल और उज्ज्वल बिछौनोंसे युक्त सुन्दर पलँगपर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे विराजमान थे और रुक्मिणीजी त्रिलोकीके स्वामीको पतिरूपमें प्राप्त करके उनकी सेवा कर रही थीं॥ ६॥ रुक्मिणीजीने अपनी सखीके हाथसे वह चँवर ले लिया, जिसमें रत्नोंकी डाँडी लगी थी और परमरूपवती लक्ष्मीरूपिणी देवी रुक्मिणीजी उसे डुला-डुलाकर भगवान्की सेवा करने लगीं॥ ७॥ उनके करकमलोंमें जड़ाऊ अँगूठियाँ, कंगन और चँवर शोभा पा रहे थे। चरणोंमें मणिजटित पायजेब रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। अञ्चलके नीचे छिपे हुए स्तनोंकी केशरकी लालिमासे हार लाल-लाल जान पड़ता था और चमक रहा था। नितम्बभागमें बहुमूल्य करधनीकी लड़ियाँ लटक रही थीं। इस प्रकार वे भगवान्के पास ही रहकर उनकी सेवामें संलग्न थीं॥ ८॥ रुक्मिणीजीकी घुँघराली अलकें, कानोंके कुण्डल और गलेके स्वर्णहार अत्यन्त विलक्षण थे। उनके मुखचन्द्रसे मुसकराहटकी अमृतवर्षा हो रही थी। ये रुक्मिणीजी अलौकिक रूपलावण्यवती लक्ष्मीजी ही तो हैं। उन्होंने जब देखा कि भगवान्ने लीलाके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण किया है, तब उन्होंने भी उनके अनुरूप रूप प्रकट कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि रुक्मिणीजी मेरे परायण हैं, मेरी अनन्य प्रेयसी हैं। तब उन्होंने बड़े प्रेमसे मुसकराते हुए उनसे कहा॥ ९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजकुमारी! बड़े-बड़े नरपति, जिनके पास लोकपालोंके समान ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, जो बड़े महानुभाव और श्रीमान् हैं तथा सुन्दरता, उदारता और बलमें भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं, तुमसे विवाह करना चाहते थे॥ १०॥ तुम्हारे पिता और भाई भी उन्हींके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते थे, यहाँतक कि उन्होंने वाग्दान भी कर दिया था। शिशुपाल आदि बड़े-बड़े वीरोंको, जो कामोन्मत्त होकर तुम्हारे याचक बन रहे थे, तुमने छोड़ दिया और मेरे-जैसे व्यक्तिको, जो किसी प्रकार तुम्हारे समान नहीं है, अपना पति स्वीकार किया। ऐसा तुमने क्यों किया?॥ ११॥ सुन्दरी! देखो, हम जरासन्ध आदि राजाओंसे डरकर समुद्रकी शरणमें आ बसे हैं। बड़े-बड़े बलवानोंसे हमने वैर बाँध रक्खा है और प्रायः राजसिंहासनके अधिकारसे भी हम वञ्चित ही हैं॥ १२॥ सुन्दरी! हम किस मार्गके अनुयायी हैं, हमारा कौन-सा मार्ग है, यह भी लोगोंको अच्छी तरह मालूम नहीं है। हमलोग लौकिक व्यवहारका भी ठीक-ठीक पालन नहीं करते, अनुनय-विनयके द्वारा स्त्रियोंको रिझाते भी नहीं। जो स्त्रियाँ हमारे-जैसे पुरुषोंका अनुसरण करती हैं, उन्हें प्रायः क्लेश-ही-क्लेश भोगना पड़ता है॥ १३॥ सुन्दरी! हम तो सदाके अकिञ्चन हैं। न तो हमारे पास कभी कुछ था और न रहेगा। ऐसे ही अकिञ्चन लोगोंसे हम प्रेम भी करते हैं और वे लोग भी हमसे प्रेम करते हैं। यही कारण है कि अपनेको धनी समझनेवाले लोग प्रायः हमसे प्रेम

नहीं करते हमारी सेवा नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनका धन, कुल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और आय अपने समान होती है—उन्हींसे विवाह और मित्रताका सम्बन्ध करना चाहिये। जो अपनेसे श्रेष्ठ या अधम हों, उनसे नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ विदर्भराजकुमारी ! तुमने अपनी अदूरदर्शिताके कारण इन बातोंका विचार नहीं किया और बिना जाने-बूझे भिक्षुकोंसे मेरी झूठी प्रशंसा सुनकर मुझ गुणहीनको वरण कर लिया ॥ १६ ॥ अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रियको वरण कर लो। जिसके द्वारा तुम्हारी इहलोक और परलोककी सारी आशा-अभिलाषाएँ पूरी हो सकें ॥ १७ ॥ सुन्दरी ! तुम जानती ही हो कि शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र आदि नरपति और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी सभी मुझसे द्वेष करते थे ॥ १८ ॥ कल्याणी ! वे सब बल-पौरुषके मदसे अंधे हो रहे थे, अपने सामने किसीको कुछ नहीं गिनते थे। उन दुष्टोंका मान मर्दन करनेके लिये ही मैंने तुम्हारा हरण किया था और कोई कारण नहीं था ॥ १९ ॥ निश्चय ही हम उदासीन हैं। हम स्त्री, सन्तान और धनके लोलुप नहीं हैं। निष्क्रिय और देह-गेहसे सम्बन्धरहित दीपशिखाके समान साक्षीमात्र हैं। हम अपने आत्माके साक्षात्कारसे ही पूर्णकाम हैं, कृतकृत्य हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके क्षणभरके लिये भी अलग न होनेके कारण रुक्मिणीजीको यह अभिमान हो गया था कि मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ। इसी गर्वकी शान्तिके लिये इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! जब रुक्मिणीजीने अपने परम प्रियतम पति त्रिलोकेश्वर भगवान्‌की यह अप्रिय वाणी सुनी—जो पहले कभी नहीं सुनी थी, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गयीं; उनका हृदय धड़कने लगा, वे रोते-रोते चिन्ताके अगाध समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ २२ ॥ वे अपने कमलके समान कोमल और नखोंकी लालिमासे कुछ-कुछ लाल प्रतीत होनेवाले चरणोंसे धरती कुरेदने लगीं। अञ्जनसे मिले हुए काले-काले आँसू केशरसे रँगे हुए वक्षःस्थलको धोने लगे। मुँह नीचेको लटक गया। अत्यन्त दुःखके कारण उनकी वाणी रुक गयी और वे ठिठकी-सी रह गयीं ॥ २३ ॥ अत्यन्त व्यथा, भय और शोकके कारण विचारशक्ति लुप्त हो गयी, वियोगकी सम्भावनासे वे तत्क्षण इतनी दुबली हो गयीं कि उनकी कलाईका कंगनतक खिसक गया। हाथका चँवर गिर पड़ा, बुद्धिकी विकलताके कारण वे एकाएक अचेत हो गयीं, केश बिखर गये और वे वायुवेगसे उखड़े हुए केलेके खंभेकी तरह धरतीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी प्रेयसी रुक्मिणीजी हास्य-विनोदकी गम्भीरता नहीं समझ रही हैं और प्रेम-पाशकी दृढ़ताके कारण उनकी यह दशा हो रही है। स्वभावसे ही परम कारुणिक भगवान् श्रीकृष्णका हृदय उनके प्रति करुणासे भर गया ॥ २५ ॥ चार भुजाओंवाले वे भगवान् उसी समय पलँगसे उतर पड़े और रुक्मिणीजीको उठा लिया तथा उनके खुले हुए केशपाशोंको बाँधकर अपने शीतल करकमलोंसे उनका मुँह पोंछ दिया ॥ २६ ॥ भगवान्‌ने उनके नेत्रोंके आँसू और शोकके आँसुओंसे भीगे हुए स्तनोंको पोंछकर अपने प्रति अनन्य प्रेमभाव रखनेवाली उन सती रुक्मिणीजीको बाँहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया ॥ २७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समझाने-बुझानेमें बड़े कुशल और अपने प्रेमी भक्तोंके एकमात्र आश्रय हैं। जब उन्होंने देखा कि हास्यकी गम्भीरताके कारण रुक्मिणीजीकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी है और वे अत्यन्त दीन हो रही हैं, तब उन्होंने इस अवस्थाके अयोग्य अपनी प्रेयसी रुक्मिणीजीको समझाया ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— विदर्भनन्दिनी ! तुम मुझसे बुरा मत मानना। मुझसे रूठना नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम एकमात्र मेरे ही परायण हो। मेरी प्रिय सहचरी ! तुम्हारी प्रेमभरी बात सुननेके लिये ही मैंने हँसी-हँसीमें यह छलना की थी ॥ २९ ॥ मैं देखना चाहता था कि मेरे यों कहनेपर तुम्हारे लाल-लाल होठ प्रणय-कोपसे किस प्रकार फड़कने लगते हैं। तुम्हारे कटाक्षपूर्वक देखनेसे नेत्रोंमें कैसी लाली छा जाती है और भौंहें चढ़ जानेके कारण तुम्हारा मुँह कैसा सुन्दर

अ० ६०] * दशम स्कन्ध * ७३९

नहीं करते हमारी सेवा नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनका धन, कुल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और आय अपने समान होती है—उन्हींसे विवाह और मित्रताका सम्बन्ध करना चाहिये। जो अपनेसे श्रेष्ठ या अधम हों, उनसे नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ विदर्भराजकुमारी ! तुमने अपनी अदूरदर्शिताके कारण इन बातोंका विचार नहीं किया और बिना जाने-बूझे भिक्षुकोंसे मेरी झूठी प्रशंसा सुनकर मुझ गुणहीनको वरण कर लिया ॥ १६ ॥ अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रियको वरण कर लो। जिसके द्वारा तुम्हारी इहलोक और परलोककी सारी आशा-अभिलाषाएँ पूरी हो सकें ॥ १७ ॥ सुन्दरी ! तुम जानती ही हो कि शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र आदि नरपति और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी सभी मुझसे द्वेष करते थे ॥ १८ ॥ कल्याणी ! वे सब बल-पौरुषके मदसे अंधे हो रहे थे, अपने सामने किसीको कुछ नहीं गिनते थे। उन दुष्टोंका मान मर्दन करनेके लिये ही मैंने तुम्हारा हरण किया था और कोई कारण नहीं था ॥ १९ ॥ निश्चय ही हम उदासीन हैं। हम स्त्री, सन्तान और धनके लोलुप नहीं हैं। निष्क्रिय और देह-गेहसे सम्बन्धरहित दीपशिखाके समान साक्षीमात्र हैं। हम अपने आत्माके साक्षात्कारसे ही पूर्णकाम हैं, कृतकृत्य हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके क्षणभरके लिये भी अलग न होनेके कारण रुक्मिणीजीको यह अभिमान हो गया था कि मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ। इसी गर्वकी शान्तिके लिये इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! जब रुक्मिणीजीने अपने परम प्रियतम पति त्रिलोकेश्वर भगवान्‌की यह अप्रिय वाणी सुनी—जो पहले कभी नहीं सुनी थी, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गयीं; उनका हृदय धड़कने लगा, वे रोते-रोते चिन्ताके अगाध समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ २२ ॥ वे अपने कमलके समान कोमल और नखोंकी लालिमासे कुछ-कुछ लाल प्रतीत होनेवाले चरणोंसे धरती कुरेदने लगीं। अञ्जनसे मिले हुए काले-काले आँसू केशरसे रँगे हुए वक्षःस्थलको धोने लगे। मुँह नीचेको लटक गया। अत्यन्त दुःखके कारण उनकी वाणी रुक गयी और वे ठिठकी-सी रह गयीं ॥ २३ ॥ अत्यन्त व्यथा, भय और शोकके कारण विचारशक्ति लुप्त हो गयी, वियोगकी सम्भावनासे वे तत्क्षण इतनी दुबली हो गयीं कि उनकी कलाईका कंगनतक खिसक गया। हाथका चँवर गिर पड़ा, बुद्धिकी विकलताके कारण वे एकाएक अचेत हो गयीं, केश बिखर गये और वे वायुवेगसे उखड़े हुए केलेके खंभेकी तरह धरतीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी प्रेयसी रुक्मिणीजी हास्य-विनोदकी गम्भीरता नहीं समझ रही हैं और प्रेम-पाशकी दृढ़ताके कारण उनकी यह दशा हो रही है। स्वभावसे ही परम कारुणिक भगवान् श्रीकृष्णका हृदय उनके प्रति करुणासे भर गया ॥ २५ ॥ चार भुजाओंवाले वे भगवान् उसी समय पलँगसे उतर पड़े और रुक्मिणीजीको उठा लिया तथा उनके खुले हुए केशपाशोंको बाँधकर अपने शीतल करकमलोंसे उनका मुँह पोंछ दिया ॥ २६ ॥ भगवान्‌ने उनके नेत्रोंके आँसू और शोकके आँसुओंसे भीगे हुए स्तनोंको पोंछकर अपने प्रति अनन्य प्रेमभाव रखनेवाली उन सती रुक्मिणीजीको बाँहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया ॥ २७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समझाने-बुझानेमें बड़े कुशल और अपने प्रेमी भक्तोंके एकमात्र आश्रय हैं। जब उन्होंने देखा कि हास्यकी गम्भीरताके कारण रुक्मिणीजीकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी है और वे अत्यन्त दीन हो रही हैं, तब उन्होंने इस अवस्थाके अयोग्य अपनी प्रेयसी रुक्मिणीजीको समझाया ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— विदर्भनन्दिनी ! तुम मुझसे बुरा मत मानना। मुझसे रूठना नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम एकमात्र मेरे ही परायण हो। मेरी प्रिय सहचरी ! तुम्हारी प्रेमभरी बात सुननेके लिये ही मैंने हँसी-हँसीमें यह छलना की थी ॥ २९ ॥ मैं देखना चाहता था कि मेरे यों कहनेपर तुम्हारे लाल-लाल होठ प्रणय-कोपसे किस प्रकार फड़कने लगते हैं। तुम्हारे कटाक्षपूर्वक देखनेसे नेत्रोंमें कैसी लाली छा जाती है और भौंहें चढ़ जानेके कारण तुम्हारा मुँह कैसा सुन्दर

लगता है॥ ३०॥ मेरी परमप्रिये! सुन्दरी! घरके काम-धंधोंमें रात-दिन लगे रहनेवाले गृहस्थोंके लिये घर-गृहस्थीमें इतना ही तो परम लाभ है कि अपनी प्रिय अर्द्धाङ्गिनीके साथ हास-परिहास करते हुए कुछ घड़ियाँ सुखसे बिता ली जाती हैं॥ ३१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रियाको इस प्रकार समझाया-बुझाया, तब उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि मेरे प्रियतमने केवल परिहासमें ही ऐसा कहा था। अब उनके हृदयसे यह भय जाता रहा कि प्यारे हमें छोड़ देंगे॥ ३२॥ परीक्षित्! अब वे सलज्ज हास्य और प्रेमपूर्ण मधुर चितवनसे पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णका मुखारविन्द निरखती हुई उनसे कहने लगीं—॥ ३३॥

रुक्मिणीजीने कहा—कमलनयन! आपका यह कहना ठीक है कि ऐश्वर्य आदि समस्त गुणोंसे युक्त, अनन्त भगवान्‌के अनुरूप मैं नहीं हूँ। आपकी समानता मैं किसी प्रकार नहीं कर सकती। कहाँ तो अपनी अखण्ड महिमामें स्थित, तीनों गुणोंके स्वामी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित आप भगवान्; और कहाँ तीनों गुणोंके अनुसार स्वभाव रखनेवाली गुणमयी प्रकृति मैं, जिसकी सेवा कामनाओंके पीछे भटकनेवाले अज्ञानी लोग ही करते हैं॥ ३४॥ भला, मैं आपके समान कब हो सकती हूँ। स्वामिन्! आपका यह कहना भी ठीक ही है कि आप राजाओंके भयसे समुद्रमें आ छिपे हैं। परन्तु राजा शब्दका अर्थ पृथ्वीके राजा नहीं, तीनों गुणरूप राजा हैं। मानो आप उन्हींके भयसे अन्तःकरणरूप समुद्रमें चैतन्यघन अनुभूतिस्वरूप आत्माके रूपमें विराजमान रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आप राजाओंसे वैर रखते हैं, परन्तु वे राजा कौन हैं? यही अपनी दुष्ट इन्द्रियाँ। इनसे तो आपका वैर है ही। और प्रभो! आप राजसिंहासनसे रहित हैं, यह भी ठीक ही है; क्योंकि आपके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने भी राजाके पदको घोर अज्ञानान्धकार समझकर दूरसे ही दुत्कार रक्खा है। फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है॥ ३५॥ आप कहते हैं कि हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं है और हम लौकिक पुरुषों जैसा आचरण भी नहीं करते; यह बात भी निस्सन्देह सत्य है। क्योंकि जो ऋषि-मुनि आपके पादपद्मोंका मकरन्द-रस सेवन करते हैं, उनका मार्ग भी अस्पष्ट रहता है और विषयोंमें उलझे हुए नरपशु उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। और हे अनन्त! आपके मार्गपर चलनेवाले आपके भक्तोंकी भी चेष्टाएँ जब प्रायः अलौकिक ही होती हैं, तब समस्त शक्तियों और ऐश्वर्योंके आश्रय आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हों इसमें तो कहना ही क्या है?॥ ३६॥ आपने अपनेको अकिञ्चन बतलाया है; परन्तु आपकी अकिञ्चनता दरिद्रता नहीं है। उसका अर्थ यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण आप ही सब कुछ हैं। आपके पास रखनेके लिये कुछ नहीं है। परन्तु जिन ब्रह्मा आदि देवताओंकी पूजा सब लोग करते हैं, भेंट देते हैं, वे ही लोग आपकी पूजा करते रहते हैं। आप उनके प्यारे हैं और वे आपके प्यारे हैं। (आपका यह कहना भी सर्वथा उचित है कि धनाढ्य लोग मेरा भजन नहीं करते;) जो लोग अपनी धनाढ्यताके अभिमानसे अंधे हो रहे हैं और इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे हैं, वे न तो आपका भजन-सेवन ही करते और न तो यह जानते हैं कि आप मृत्युके रूपमें उनके सिरपर सवार हैं॥ ३७॥ जगत्‌में जीवके लिये जितने भी वाञ्छनीय पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—उन सबके रूपमें आप ही प्रकट हैं। आप समस्त वृत्तियों—प्रवृत्तियों, साधनों, सिद्धियों और साध्योंके फलस्वरूप हैं। विचारशील पुरुष आपको प्राप्त करनेके लिये सब कुछ छोड़ देते हैं। भगवन्! उन्हीं विवेकी पुरुषोंका आपके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जो लोग स्त्री-पुरुषके सहवाससे प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके वशीभूत हैं वे कदापि आपका सम्बन्ध प्राप्त करनेके योग्य नहीं हैं॥ ३८॥ यह ठीक है कि भिक्षुकोंने आपकी प्रशंसा की है। परन्तु किन भिक्षुकोंने? उन परमशान्त संन्यासी महात्माओंने आपकी महिमा और प्रभावका वर्णन किया है, जिन्होंने अपराधी-से-अपराधी व्यक्तिको भी दण्ड न देनेका निश्चय कर लिया है। मैंने अदूरदर्शितासे नहीं, इस बातको समझते हुए आपको वरण किया है कि आप सारे जगत्‌के आत्मा हैं और अपने प्रेमियोंको आत्मदान करते हैं। मैंने जानबूझकर उन ब्रह्मा और देवराज इन्द्र

७४० * श्रीमद्भागवत * [अ० ६०
लगता है॥ ३०॥ मेरी परमप्रिये! सुन्दरी! घरके काम-धंधोंमें रात-दिन लगे रहनेवाले गृहस्थोंके लिये घर-गृहस्थीमें इतना ही तो परम लाभ है कि अपनी प्रिय अर्द्धाङ्गिनीके साथ हास-परिहास करते हुए कुछ घड़ियाँ सुखसे बिता ली जाती हैं॥ ३१॥
श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रियाको इस प्रकार समझाया-बुझाया, तब उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि मेरे प्रियतमने केवल परिहासमें ही ऐसा कहा था। अब उनके हृदयसे यह भय जाता रहा कि प्यारे हमें छोड़ देंगे॥ ३२॥ परीक्षित्! अब वे सलज्ज हास्य और प्रेमपूर्ण मधुर चितवनसे पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णका मुखारविन्द निरखती हुई उनसे कहने लगीं—॥ ३३॥
रुक्मिणीजीने कहा—कमलनयन! आपका यह कहना ठीक है कि ऐश्वर्य आदि समस्त गुणोंसे युक्त, अनन्त भगवान्‌के अनुरूप मैं नहीं हूँ। आपकी समानता मैं किसी प्रकार नहीं कर सकती। कहाँ तो अपनी अखण्ड महिमामें स्थित, तीनों गुणोंके स्वामी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित आप भगवान्; और कहाँ तीनों गुणोंके अनुसार स्वभाव रखनेवाली गुणमयी प्रकृति मैं, जिसकी सेवा कामनाओंके पीछे भटकनेवाले अज्ञानी लोग ही करते हैं॥ ३४॥ भला, मैं आपके समान कब हो सकती हूँ। स्वामिन्! आपका यह कहना भी ठीक ही है कि आप राजाओंके भयसे समुद्रमें आ छिपे हैं। परन्तु राजा शब्दका अर्थ पृथ्वीके राजा नहीं, तीनों गुणरूप राजा हैं। मानो आप उन्हींके भयसे अन्तःकरणरूप समुद्रमें चैतन्यघन अनुभूतिस्वरूप आत्माके रूपमें विराजमान रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आप राजाओंसे वैर रखते हैं, परन्तु वे राजा कौन हैं? यही अपनी दुष्ट इन्द्रियाँ। इनसे तो आपका वैर है ही। और प्रभो! आप राजसिंहासनसे रहित हैं, यह भी ठीक ही है; क्योंकि आपके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने भी राजाके पदको घोर अज्ञानान्धकार समझकर दूरसे ही दुत्कार रक्खा है। फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है॥ ३५॥ आप कहते हैं कि हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं है और हम लौकिक पुरुषों जैसा आचरण भी नहीं करते; यह बात भी निस्सन्देह सत्य है। क्योंकि जो ऋषि-मुनि आपके पादपद्मोंका मकरन्द-रस सेवन करते हैं, उनका मार्ग भी अस्पष्ट रहता है और विषयोंमें उलझे हुए नरपशु उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। और हे अनन्त! आपके मार्गपर चलनेवाले आपके भक्तोंकी भी चेष्टाएँ जब प्रायः अलौकिक ही होती हैं, तब समस्त शक्तियों और ऐश्वर्योंके आश्रय आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हों इसमें तो कहना ही क्या है?॥ ३६॥ आपने अपनेको अकिञ्चन बतलाया है; परन्तु आपकी अकिञ्चनता दरिद्रता नहीं है। उसका अर्थ यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण आप ही सब कुछ हैं। आपके पास रखनेके लिये कुछ नहीं है। परन्तु जिन ब्रह्मा आदि देवताओंकी पूजा सब लोग करते हैं, भेंट देते हैं, वे ही लोग आपकी पूजा करते रहते हैं। आप उनके प्यारे हैं और वे आपके प्यारे हैं। (आपका यह कहना भी सर्वथा उचित है कि धनाढ्य लोग मेरा भजन नहीं करते;) जो लोग अपनी धनाढ्यताके अभिमानसे अंधे हो रहे हैं और इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे हैं, वे न तो आपका भजन-सेवन ही करते और न तो यह जानते हैं कि आप मृत्युके रूपमें उनके सिरपर सवार हैं॥ ३७॥ जगत्‌में जीवके लिये जितने भी वाञ्छनीय पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—उन सबके रूपमें आप ही प्रकट हैं। आप समस्त वृत्तियों—प्रवृत्तियों, साधनों, सिद्धियों और साध्योंके फलस्वरूप हैं। विचारशील पुरुष आपको प्राप्त करनेके लिये सब कुछ छोड़ देते हैं। भगवन्! उन्हीं विवेकी पुरुषोंका आपके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जो लोग स्त्री-पुरुषके सहवाससे प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके वशीभूत हैं वे कदापि आपका सम्बन्ध प्राप्त करनेके योग्य नहीं हैं॥ ३८॥ यह ठीक है कि भिक्षुकोंने आपकी प्रशंसा की है। परन्तु किन भिक्षुकोंने? उन परमशान्त संन्यासी महात्माओंने आपकी महिमा और प्रभावका वर्णन किया है, जिन्होंने अपराधी-से-अपराधी व्यक्तिको भी दण्ड न देनेका निश्चय कर लिया है। मैंने अदूरदर्शितासे नहीं, इस बातको समझते हुए आपको वरण किया है कि आप सारे जगत्‌के आत्मा हैं और अपने प्रेमियोंको आत्मदान करते हैं। मैंने जानबूझकर उन ब्रह्मा और देवराज इन्द्र

आदिका भी इसलिये परित्याग कर दिया है कि आपकी भौंहोंके इशारेसे पैदा होनेवाला काल अपने वेगसे उनकी आशा-अभिलाषाओंपर पानी फेर देता है। फिर दूसरोंकी—शिशुपाल, दन्तवक्त्र या जरासन्धकी तो बात ही क्या है ?॥ ३९ ॥

सर्वेश्वर आर्यपुत्र ! आपकी यह बात किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती कि आप राजाओंसे भयभीत होकर समुद्रमें आ बसे हैं। क्योंकि आपने केवल अपने शार्ङ्गधनुषके टङ्कारसे मेरे विवाहके समय आये हुए समस्त राजाओंको भगाकर अपने चरणोंमें समर्पित मुझ दासीको उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे सिंह अपनी कर्कश ध्वनिसे वन-पशुओंको भगाकर अपना भाग ले आवे॥ ४० ॥ कमलनयन ! आप कैसे कहते हैं कि जो मेरा अनुसरण करता है, उसे प्रायः कष्ट ही उठाना पड़ता है। प्राचीन कालके अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि जो बड़े-बड़े राजराजेश्वर अपना-अपना एकछत्र साम्राज्य छोड़कर आपको पानेकी अभिलाषासे तपस्या करने वनमें चले गये थे, वे आपके मार्गका अनुसरण करनेके कारण क्या किसी प्रकारका कष्ट उठा रहे हैं॥ ४१ ॥ आप कहते हैं कि तुम और किसी-राजकुमारका वरण कर लो। भगवन्! आप समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। बड़े-बड़े संत आपके चरणकमलोंकी सुगन्धका बखान करते रहते हैं। उसका आश्रय लेनेमात्रसे लोग संसारके पाप-तापसे मुक्त हो जाते हैं। लक्ष्मी सर्वदा उन्हींमें निवास करती हैं। फिर आप बतलाइये कि अपने स्वार्थ और परमार्थको भली-भाँति समझनेवाली ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे एक बार उन चरणकमलोंकी सुगन्ध सूँघनेको मिल जाय और फिर वह उनका तिरस्कार करके ऐसे लोगोंको वरण करे जो सदा मृत्यु, रोग, जन्म, जरा आदि भयोंसे युक्त हैं ! कोई भी बुद्धिमती स्त्री ऐसा नहीं कर सकती॥ ४२ ॥ प्रभो ! आप सारे जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। आप ही इस लोक और परलोकमें समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाले एवं आत्मा हैं। मैंने आपको अपने अनुरूप समझकर ही वरण किया है। मुझे अपने कर्मोंके अनुसार विभिन्न योनियोंमें भटकना पड़े, इसकी मुझको परवा नहीं है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मैं सदा अपना भजन करनेवालोंका मिथ्या संसारभ्रम निवृत्त करनेवाले तथा उन्हें अपना स्वरूपतक दे डालनेवाले आप परमेश्वरके चरणोंकी शरणमें रहूँ॥ ४३ ॥ अच्युत ! शत्रुसूदन ! गधोंके समान घरका बोझा ढोनेवाले, बैलोंके समान गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रहकर कष्ट उठानेवाले, कुत्तोंके समान तिरस्कार सहनेवाले, बिलावके समान कृपण और हिंसक तथा क्रीत दासोंके समान स्त्रीकी सेवा करनेवाले शिशुपाल आदि राजालोग, जिन्हें वरण करनेके लिये आपने मुझे संकेत किया है—उसी अभागिनी स्त्रीके पति हों, जिनके कानोंमें भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंकी सभामें गायी जानेवाली आपकी लीलाकथाने प्रवेश नहीं किया है॥ ४४ ॥ यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा ही है। ऊपरसे चमड़ी; दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और केशोंसे ढका हुआ है; परन्तु इसके भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। इसे वही मूढ़ स्त्री अपना प्रियतम पति समझकर सेवन करती है, जिसे कभी आपके चरणारविन्दके मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है॥ ४५ ॥ कमलनयन ! आप आत्माराम हैं। मैं सुन्दरी अथवा गुणवती हूँ, इन बातोंपर आपकी दृष्टि नहीं जाती। अतः आपका उदासीन रहना स्वाभाविक है, फिर भी आपके चरणकमलोंमें मेरा सुदृढ़ अनुराग हो, यही मेरी अभिलाषा है। जब आप इस संसारकी अभिवृद्धिके लिये उत्कट रजोगुण स्वीकार करके मेरी ओर देखते हैं, तब वह भी आपका परम अनुग्रह ही है॥ ४६ ॥ मधुसूदन ! आपने कहा कि किसी अनुरूप वरको वरण कर लो। मैं आपकी इस बातको भी झूठ नहीं मानती। क्योंकि कभी-कभी एक पुरुषके द्वारा जीती जानेपर भी काशी-नरेशकी कन्या अम्बाके समान किसी-किसीकी दूसरे पुरुषमें भी प्रीति रहती है॥ ४७ ॥ कुलटा स्त्रीका मन तो विवाह हो जानेपर भी नये-नये पुरुषोंकी ओर खिंचता रहता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ऐसी कुलटा स्त्रीको अपने पास न रक्खे। उसे अपनानेवाला पुरुष लोक और परलोक दोनों खो बैठता है, उभयभ्रष्ट हो जाता है॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साध्वी! राजकुमारी ! यही बातें सुननेके लिये तो मैंने तुमसे हँसी-हँसीमें तुम्हारी वञ्चना की थी, तुम्हें छकाया था। तुमने मेरे वचनोंकी

अ० ६०] * दशम स्कन्ध * ७४१

आदिका भी इसलिये परित्याग कर दिया है कि आपकी भौंहोंके इशारेसे पैदा होनेवाला काल अपने वेगसे उनकी आशा-अभिलाषाओंपर पानी फेर देता है। फिर दूसरोंकी—शिशुपाल, दन्तवक्त्र या जरासन्धकी तो बात ही क्या है ?॥ ३९ ॥

सर्वेश्वर आर्यपुत्र ! आपकी यह बात किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती कि आप राजाओंसे भयभीत होकर समुद्रमें आ बसे हैं। क्योंकि आपने केवल अपने शार्ङ्गधनुषके टङ्कारसे मेरे विवाहके समय आये हुए समस्त राजाओंको भगाकर अपने चरणोंमें समर्पित मुझ दासीको उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे सिंह अपनी कर्कश ध्वनिसे वन-पशुओंको भगाकर अपना भाग ले आवे॥ ४० ॥ कमलनयन ! आप कैसे कहते हैं कि जो मेरा अनुसरण करता है, उसे प्रायः कष्ट ही उठाना पड़ता है। प्राचीन कालके अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि जो बड़े-बड़े राजराजेश्वर अपना-अपना एकछत्र साम्राज्य छोड़कर आपको पानेकी अभिलाषासे तपस्या करने वनमें चले गये थे, वे आपके मार्गका अनुसरण करनेके कारण क्या किसी प्रकारका कष्ट उठा रहे हैं॥ ४१ ॥ आप कहते हैं कि तुम और किसी-राजकुमारका वरण कर लो। भगवन्! आप समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। बड़े-बड़े संत आपके चरणकमलोंकी सुगन्धका बखान करते रहते हैं। उसका आश्रय लेनेमात्रसे लोग संसारके पाप-तापसे मुक्त हो जाते हैं। लक्ष्मी सर्वदा उन्हींमें निवास करती हैं। फिर आप बतलाइये कि अपने स्वार्थ और परमार्थको भली-भाँति समझनेवाली ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे एक बार उन चरणकमलोंकी सुगन्ध सूँघनेको मिल जाय और फिर वह उनका तिरस्कार करके ऐसे लोगोंको वरण करे जो सदा मृत्यु, रोग, जन्म, जरा आदि भयोंसे युक्त हैं ! कोई भी बुद्धिमती स्त्री ऐसा नहीं कर सकती॥ ४२ ॥ प्रभो ! आप सारे जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। आप ही इस लोक और परलोकमें समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाले एवं आत्मा हैं। मैंने आपको अपने अनुरूप समझकर ही वरण किया है। मुझे अपने कर्मोंके अनुसार विभिन्न योनियोंमें भटकना पड़े, इसकी मुझको परवा नहीं है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मैं सदा अपना भजन करनेवालोंका मिथ्या संसारभ्रम निवृत्त करनेवाले तथा उन्हें अपना स्वरूपतक दे डालनेवाले आप परमेश्वरके चरणोंकी शरणमें रहूँ॥ ४३ ॥ अच्युत ! शत्रुसूदन ! गधोंके समान घरका बोझा ढोनेवाले, बैलोंके समान गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रहकर कष्ट उठानेवाले, कुत्तोंके समान तिरस्कार सहनेवाले, बिलावके समान कृपण और हिंसक तथा क्रीत दासोंके समान स्त्रीकी सेवा करनेवाले शिशुपाल आदि राजालोग, जिन्हें वरण करनेके लिये आपने मुझे संकेत किया है—उसी अभागिनी स्त्रीके पति हों, जिनके कानोंमें भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंकी सभामें गायी जानेवाली आपकी लीलाकथाने प्रवेश नहीं किया है॥ ४४ ॥ यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा ही है। ऊपरसे चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और केशोंसे ढका हुआ है; परन्तु इसके भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। इसे वही मूढ़ स्त्री अपना प्रियतम पति समझकर सेवन करती है, जिसे कभी आपके चरणारविन्दके मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है॥ ४५ ॥ कमलनयन ! आप आत्माराम हैं। मैं सुन्दरी अथवा गुणवती हूँ, इन बातोंपर आपकी दृष्टि नहीं जाती। अतः आपका उदासीन रहना स्वाभाविक है, फिर भी आपके चरणकमलोंमें मेरा सुदृढ़ अनुराग हो, यही मेरी अभिलाषा है। जब आप इस संसारकी अभिवृद्धिके लिये उत्कट रजोगुण स्वीकार करके मेरी ओर देखते हैं, तब वह भी आपका परम अनुग्रह ही है॥ ४६ ॥ मधुसूदन ! आपने कहा कि किसी अनुरूप वरको वरण कर लो। मैं आपकी इस बातको भी झूठ नहीं मानती। क्योंकि कभी-कभी एक पुरुषके द्वारा जीती जानेपर भी काशी-नरेशकी कन्या अम्बाके समान किसी-किसीकी दूसरे पुरुषमें भी प्रीति रहती है॥ ४७ ॥ कुलटा स्त्रीका मन तो विवाह हो जानेपर भी नये-नये पुरुषोंकी ओर खिंचता रहता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ऐसी कुलटा स्त्रीको अपने पास न रक्खे। उसे अपनानेवाला पुरुष लोक और परलोक दोनों खो बैठता है, उभयभ्रष्ट हो जाता है॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साध्वी! राजकुमारी ! यही बातें सुननेके लिये तो मैंने तुमसे हँसी-हँसीमें तुम्हारी वञ्चना की थी, तुम्हें छकाया था। तुमने मेरे वचनोंकी

जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरशः सत्य है॥ ४९॥ सुन्दरी! तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो। मेरे प्रति तुम्हारा अनन्य प्रेम है। तुम मुझसे जो-जो अभिलाषाएँ करती हो, वे तो तुम्हें सदा-सर्वदा प्राप्त ही हैं। और यह बात भी है कि मुझसे की हुई अभिलाषाएँ सांसारिक कामनाओंके सगान बन्धनमें डालनेवाली नहीं होतीं, बल्कि वे समस्त कामनाओंसे मुक्त कर देती हैं॥ ५०॥ पुण्यमयी प्रिये! मैंने तुम्हारा पतिप्रेम और पातिव्रत्य भी भलीभाँति देख लिया। मैंने उल्टी-सीधी बात कह-कहकर तुम्हें विचलित करना चाहा था; परन्तु तुम्हारी बुद्धि मुझसे तनिक भी इधर-उधर न हुई॥ ५१॥ प्रिये! मैं मोक्षका स्वामी हूँ। लोगोंको संसार-सागरसे पार करता हूँ। जो सकाम पुरुष अनेक प्रकारके व्रत और तपस्या करके दाम्पत्य-जीवनके विषय-सुखकी अभिलाषासे मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित हैं॥ ५२॥ मानिनी प्रिये! मैं मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंका आश्रय हूँ, अधीश्वर हूँ। मुझ परमात्माको प्राप्त करके भी जो लोग केवल विषयसुखके साधन सम्पत्तिकी ही अभिलाषा करते हैं, मेरी पराभक्ति नहीं चाहते, वे बड़े मन्दभागी हैं, क्योंकि विषयसुख तो नरकमें और नरकके ही समान सूकर-कूकर आदि योनियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु उन लोगोंका मन तो विषयोंमें ही लगा रहता है, इसलिये उन्हें नरकमें जाना भी अच्छा जान पड़ता है॥ ५३॥ गृहेश्वरी प्राणप्रिये! यह बड़े आनन्दकी बात है कि तुमने अबतक निरन्तर संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली मेरी सेवा की है। दुष्ट पुरुष ऐसा कभी नहीं कर सकते। जिन स्त्रियोंका चित्त दूषित कामनाओंसे भरा हुआ है और जो अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही लगी रहनेके कारण अनेकों प्रकारके छल-छन्द रचती रहती हैं, उनके लिये तो ऐसा करना और भी कठिन है॥ ५४॥ मानिनि! मुझे अपने घरभरमें तुम्हारे समान प्रेम करनेवाली भार्या और कोई दिखायी नहीं देती। क्योंकि जिस समय तुमने मुझे देखा न था, केवल मेरी प्रशंसा सुनी थी, उस समय भी अपने विवाहमें आये हुए राजाओंकी उपेक्षा करके ब्राह्मणके द्वारा मेरे पास गुप्त सन्देश भेजा था॥ ५५॥ तुम्हारा हरण करते समय मैंने तुम्हारे भाईको युद्धमें जीतकर उसे विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें चौसर खेलते समय बलरामजीने तो उसे मार ही डाला। किन्तु हमसे वियोग हो जानेकी आशङ्कासे तुमने चुपचाप वह सारा दुःख सह लिया। मुझसे एक बात भी नहीं कही। तुम्हारे इस गुणसे मैं तुम्हारे वश हो गया हूँ॥ ५६॥ तुमने मेरी प्राप्तिके लिये दूतके द्वारा अपना गुप्त सन्देश भेजा था; परन्तु जब तुमने मेरे पहुँचनेमें कुछ विलम्ब होता देखा; तब तुम्हें यह सारा संसार सूना दीखने लगा। उस समय तुमने अपना यह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर किसी दूसरेके योग्य न समझकर इसे छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया था। तुम्हारा यह प्रेमभाव तुम्हारे ही अंदर रहे। हम इसका बदला नहीं चुका सकते। तुम्हारे इस सर्वोच्च प्रेम-भावका केवल अभिनन्दन करते हैं॥ ५७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे जब मनुष्योंकी-सी लीला कर रहे हैं, तब उसमें दाम्पत्य-प्रेमको बढ़ानेवाले विनोदभरे वार्तालाप भी करते हैं और इस प्रकार लक्ष्मीरूपिणी रुक्मिणीजीके साथ विहार करते हैं॥ ५८॥ भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्को शिक्षा देनेवाले और सर्वव्यापक हैं। वे इसी प्रकार दूसरी पत्नियोंके महलोंमें भी गृहस्थोंके समान रहते और गृहस्थोचित धर्मका पालन करते थे॥ ५९॥

इकसठवाँ अध्याय

भगवान्‌की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे रूप, बल आदि गुणोंमें अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे॥ १॥ राजकुमारियाँ देखतीं कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे महलसे कभी बाहर नहीं जाते। सदा हमारे ही पास बने रहते हैं। इससे वे

७४२ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६१
जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरशः सत्य है॥ ४९॥ सुन्दरी! तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो। मेरे प्रति तुम्हारा अनन्य प्रेम है। तुम मुझसे जो-जो अभिलाषाएँ करती हो, वे तो तुम्हें सदा-सर्वदा प्राप्त ही हैं। और यह बात भी है कि मुझसे की हुई अभिलाषाएँ सांसारिक कामनाओंके सगान बन्धनमें डालनेवाली नहीं होतीं, बल्कि वे समस्त कामनाओंसे मुक्त कर देती हैं॥ ५०॥ पुण्यमयी प्रिये! मैंने तुम्हारा पतिप्रेम और पातिव्रत्य भी भलीभाँति देख लिया। मैंने उल्टी-सीधी बात कह-कहकर तुम्हें विचलित करना चाहा था; परन्तु तुम्हारी बुद्धि मुझसे तनिक भी इधर-उधर न हुई॥ ५१॥ प्रिये! मैं मोक्षका स्वामी हूँ। लोगोंको संसार-सागरसे पार करता हूँ। जो सकाम पुरुष अनेक प्रकारके व्रत और तपस्या करके दाम्पत्य-जीवनके विषय-सुखकी अभिलाषासे मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित हैं॥ ५२॥ मानिनी प्रिये! मैं मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंका आश्रय हूँ, अधीश्वर हूँ। मुझ परमात्माको प्राप्त करके भी जो लोग केवल विषयसुखके साधन सम्पत्तिकी ही अभिलाषा करते हैं, मेरी पराभक्ति नहीं चाहते, वे बड़े मन्दभागी हैं, क्योंकि विषयसुख तो नरकमें और नरकके ही समान सूकर-कूकर आदि योनियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु उन लोगोंका मन तो विषयोंमें ही लगा रहता है, इसलिये उन्हें नरकमें जाना भी अच्छा जान पड़ता है॥ ५३॥ गृहेश्वरी प्राणप्रिये! यह बड़े आनन्दकी बात है कि तुमने अबतक निरन्तर संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली मेरी सेवा की है। दुष्ट पुरुष ऐसा कभी नहीं कर सकते। जिन स्त्रियोंका चित्त दूषित कामनाओंसे भरा हुआ है और जो अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही लगी रहनेके कारण अनेकों प्रकारके छल-छन्द रचती रहती हैं, उनके लिये तो ऐसा करना और भी कठिन है॥ ५४॥ मानिनि! मुझे अपने घरभरमें तुम्हारे समान प्रेम करनेवाली भार्या और कोई दिखायी नहीं देती। क्योंकि जिस समय तुमने मुझे देखा न था, केवल मेरी प्रशंसा सुनी थी, उस समय भी अपने विवाहमें आये हुए राजाओंकी उपेक्षा करके ब्राह्मणके द्वारा मेरे पास गुप्त सन्देश भेजा था॥ ५५॥ तुम्हारा हरण करते समय मैंने तुम्हारे भाईको युद्धमें जीतकर उसे विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें चौसर खेलते समय बलरामजीने तो उसे मार ही डाला। किन्तु हमसे वियोग हो जानेकी आशङ्कासे तुमने चुपचाप वह सारा दुःख सह लिया। मुझसे एक बात भी नहीं कही। तुम्हारे इस गुणसे मैं तुम्हारे वश हो गया हूँ॥ ५६॥ तुमने मेरी प्राप्तिके लिये दूतके द्वारा अपना गुप्त सन्देश भेजा था, परन्तु जब तुमने मेरे पहुँचनेमें कुछ विलम्ब होता देखा; तब तुम्हें यह सारा संसार सूना दीखने लगा। उस समय तुमने अपना यह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर किसी दूसरेके योग्य न समझकर इसे छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया था। तुम्हारा यह प्रेमभाव तुम्हारे ही अंदर रहे। हम इसका बदला नहीं चुका सकते। तुम्हारे इस सर्वोच्च प्रेम-भावका केवल अभिनन्दन करते हैं॥ ५७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे जब मनुष्योंकी-सी लीला कर रहे हैं, तब उसमें दाम्पत्य-प्रेमको बढ़ानेवाले विनोदभरे वार्तालाप भी करते हैं और इस प्रकार लक्ष्मीरूपिणी रुक्मिणीजीके साथ विहार करते हैं॥ ५८॥ भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्को शिक्षा देनेवाले और सर्वव्यापक हैं। वे इसी प्रकार दूसरी पत्नियोंके महलोंमें भी गृहस्थोंके समान रहते और गृहस्थोचित धर्मका पालन करते थे॥ ५९॥

इकसठवाँ अध्याय

भगवान्‌की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे रूप, बल आदि गुणोंमें अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे॥ १॥ राजकुमारियाँ देखतीं कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे महलसे कभी बाहर नहीं जाते। सदा हमारे ही पास बने रहते हैं। इससे वे

यही समझतीं कि श्रीकृष्णको मैं ही सबसे प्यारी हूँ। परीक्षित्! सच पूछो तो वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्णका तत्त्व—उनकी महिमा नहीं समझती थीं॥ २॥ वे सुन्दरियाँ अपने आत्मानन्दमें एकरस स्थित भगवान् श्रीकृष्णके कमल-कलीके समान सुन्दर मुख, विशाल बाहु, कर्णस्पर्शी नेत्र, प्रेमभरी मुसकान, रसमयी चितवन और मधुर वाणीसे स्वयं ही मोहित रहती थीं। वे अपने शृंगारसम्बन्धी हावभावोंसे उनके मनको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ न हो सकीं॥ ३॥ वे सोलह हजारसे अधिक थीं। अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे युक्त मनोहर भौहोंके इशारेसे ऐसे प्रेमके बाण चलाती थीं, जो काम-कलाके भावोंसे परिपूर्ण होते थे, परन्तु किसी भी प्रकारसे, किन्हीं साधनोंके द्वारा वे भगवान्‌के मन एवं इन्द्रियोंमें चञ्चलता नहीं उत्पन्न कर सकीं॥ ४॥ परीक्षित्! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको या उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागमकी लालसा आदिसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं॥ ५॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं। फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं॥ ६॥

परीक्षित्! मैं कह चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके दस-दस पुत्र थे। उन रानियोंमें आठ पटरानियाँ थीं, जिनके विवाहका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। अब उनके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन करता हूँ॥ ७॥ रुक्मिणीके गर्भसे दस पुत्र हुए—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवाँ चारु। ये अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे॥ ८-९॥ सत्यभामाके भी दस पुत्र थे—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु। जाम्बवतीके भी साम्ब आदि दस पुत्र थे—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु। ये सब श्रीकृष्णको बहुत प्यारे थे॥ १०-१२॥ नाग्नजिती सत्याके भी दस पुत्र हुए—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और परम तेजस्वी कुन्ति॥ १३॥ कालिन्दीके दस पुत्र ये थे—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक॥ १४॥ मद्रदेशकी राजकुमारी लक्ष्मणाके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजितका जन्म हुआ॥ १५॥ मित्रविन्दाके पुत्र थे—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधि॥ १६॥ भद्राके पुत्र थे—संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक॥ १७॥ इन पटरानियोंके अतिरिक्त भगवान्‌की रोहिणी आदि सोलह हजार एक सौ और भी पत्नियाँ थीं। उनके दीप्तिमान् और ताम्रतप्त आदि दस-दस पुत्र हुए। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका मायावती रतिके अतिरिक्त भोजकट-नगरनिवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे भी विवाह हुआ था। उसीके गर्भसे परम बलशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ। परीक्षित्! श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताएँ ही सोलह हजारसे अधिक थीं। इसलिये उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या करोड़ोंतक पहुँच गयी॥ १८-१९॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—परम ज्ञानी मुनीश्वर! भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें रुक्मीका बड़ा तिरस्कार किया था। इसलिये वह सदा इस बातकी घातमें रहता था कि अवसर मिलते ही श्रीकृष्णसे उसका बदला लूँ और उनका काम तमाम कर डालूँ। ऐसी स्थितिमें उसने अपनी कन्या रुक्मवती अपने शत्रुके पुत्र प्रद्युम्नजीको कैसे ब्याह दी? कृपा करके बतलाइये। दो शत्रुओंमें—श्रीकृष्ण और रुक्मीमें फिरसे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ?॥ २०॥ आपसे कोई बात छिपी नहीं है। क्योंकि योगीजन भूत, भविष्य और वर्तमानकी

अ० ६१] * दशम स्कन्ध * ७४३

यही समझतीं कि श्रीकृष्णको मैं ही सबसे प्यारी हूँ। परीक्षित्! सच पूछो तो वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्णका तत्त्व—उनकी महिमा नहीं समझती थीं॥ २॥ वे सुन्दरियाँ अपने आत्मानन्दमें एकरस स्थित भगवान् श्रीकृष्णके कमल-कलीके समान सुन्दर मुख, विशाल बाहु, कर्णस्पर्शी नेत्र, प्रेमभरी मुसकान, रसमयी चितवन और मधुर वाणीसे स्वयं ही मोहित रहती थीं। वे अपने शृंगारसम्बन्धी हावभावोंसे उनके मनको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ न हो सकीं॥ ३॥ वे सोलह हजारसे अधिक थीं। अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे युक्त मनोहर भौहोंके इशारेसे ऐसे प्रेमके बाण चलाती थीं, जो काम-कलाके भावोंसे परिपूर्ण होते थे, परन्तु किसी भी प्रकारसे, किन्हीं साधनोंके द्वारा वे भगवान्‌के मन एवं इन्द्रियोंमें चञ्चलता नहीं उत्पन्न कर सकीं॥ ४॥ परीक्षित्! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको या उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागमकी लालसा आदिसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं॥ ५॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं। फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं॥ ६॥

परीक्षित्! मैं कह चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके दस-दस पुत्र थे। उन रानियोंमें आठ पटरानियाँ थीं, जिनके विवाहका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। अब उनके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन करता हूँ॥ ७॥ रुक्मिणीके गर्भसे दस पुत्र हुए—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवाँ चारु। ये अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे॥ ८-९॥ सत्यभामाके भी दस पुत्र थे—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु। जाम्बवतीके भी साम्ब आदि दस पुत्र थे—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु। ये सब श्रीकृष्णको बहुत प्यारे थे॥ १०-१२॥ नाग्नजिती सत्याके भी दस पुत्र हुए—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और परम तेजस्वी कुन्ति॥ १३॥ कालिन्दीके दस पुत्र ये थे—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक॥ १४॥ मद्रदेशकी राजकुमारी लक्ष्मणाके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजितका जन्म हुआ॥ १५॥ मित्रविन्दाके पुत्र थे—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधि॥ १६॥ भद्राके पुत्र थे—संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक॥ १७॥ इन पटरानियोंके अतिरिक्त भगवान्‌की रोहिणी आदि सोलह हजार एक सौ और भी पत्नियाँ थीं। उनके दीप्तिमान् और ताम्रतप्त आदि दस-दस पुत्र हुए। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका मायावती रतिके अतिरिक्त भोजकट-नगरनिवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे भी विवाह हुआ था। उसीके गर्भसे परम बलशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ। परीक्षित्! श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताएँ ही सोलह हजारसे अधिक थीं। इसलिये उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या करोड़ोंतक पहुँच गयी॥ १८-१९॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—परम ज्ञानी मुनीश्वर! भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें रुक्मीका बड़ा तिरस्कार किया था। इसलिये वह सदा इस बातकी घातमें रहता था कि अवसर मिलते ही श्रीकृष्णसे उसका बदला लूँ और उनका काम तमाम कर डालूँ। ऐसी स्थितिमें उसने अपनी कन्या रुक्मवती अपने शत्रुके पुत्र प्रद्युम्नजीको कैसे ब्याह दी? कृपा करके बतलाइये। दो शत्रुओंमें—श्रीकृष्ण और रुक्मीमें फिरसे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ?॥ २०॥ आपसे कोई बात छिपी नहीं है। क्योंकि योगीजन भूत, भविष्य और वर्तमानकी

सभी बातें भलीभाँति जानते हैं। उनसे ऐसी बातें भी छिपी नहीं रहतीं; जो इन्द्रियोंसे परे हैं, बहुत दूर हैं अथवा बीचमें किसी वस्तुकी आड़ होनेके कारण नहीं दीखतीं॥ २१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रद्युम्नजी मूर्तिमान् कामदेव थे। उनके सौन्दर्य और गुणोंपर रीझकर रुक्मवतीने स्वयंवरमें उन्हींको वरमाला पहना दी। प्रद्युम्नजीने युद्धमें अकेले ही वहाँ इकट्ठे हुए नरपतियोंको जीत लिया और रुक्मवतीको हर लाये॥ २२॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णसे अपमानित होनेके कारण रुक्मीके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई थी, वह अब भी उनसे वैर गाँठे हुए था, फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपने भानजे प्रद्युम्नको अपनी बेटी ब्याह दी॥ २३॥ परीक्षित्! दस पुत्रोंके अतिरिक्त रुक्मिणीजीके एक परम सुन्दरी बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कन्या थी। उसका नाम था चारुमती। कृतवर्माके पुत्र बलीने उसके साथ विवाह किया॥ २४॥

परीक्षित्! रुक्मीका भगवान् श्रीकृष्णके साथ पुराना वैर था। फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह रुक्मिणीके पौत्र, अपने नाती (दौहित्र) अनिरुद्धके साथ कर दिया। यद्यपि रुक्मीको इस बातका पता था कि इस प्रकारका विवाह-सम्बन्ध धर्मके अनुकूल नहीं है, फिर भी स्नेह-बन्धनमें बँधकर उसने ऐसा कर दिया॥ २५॥ परीक्षित्! अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी, प्रद्युम्न, साम्ब आदि द्वारकावासी भोजकट नगरमें पधारे॥ २६॥ जब विवाहोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया, तब कलिङ्गनरेश आदि घमंडी नरपतियोंने रुक्मीसे कहा कि 'तुम बलरामजीको पासोंके खेलमें जीत लो॥ २७॥ राजन्! बलरामजीको पासे डालने तो आते नहीं, परन्तु उन्हें खेलनेका बहुत बड़ा व्यसन है।' उन लोगोंके बहकानेसे रुक्मीने बलरामजीको बुलवाया और वह उनके साथ चौसर खेलने लगा॥ २८॥ बलरामजीने पहले सौ, फिर हजार और इसके बाद दस हजार मुहरोंका दाँव लगाया। उन्हें रुक्मीने जीत लिया। रुक्मीकी जीत होनेपर कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर, ठहाका मारकर बलरामजीकी हँसी उड़ाने लगा। बलरामजीसे वह हँसी सहन न हुई। वे कुछ चिढ़ गये॥ २९॥ इसके बाद रुक्मीने एक लाख मुहरोंका दाँव लगाया। उसे बलरामजीने जीत लिया। परन्तु रुक्मी धूर्ततासे यह कहने लगा कि 'मैंने जीता है'॥ ३०॥ इसपर श्रीमान् बलरामजी क्रोधसे तिलमिला उठे। उनके हृदयमें इतना क्षोभ हुआ, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आ गया हो। उनके नेत्र एक तो स्वभावसे ही लाल-लाल थे, दूसरे अत्यन्त क्रोधके मारे वे और भी दहक उठे। अब उन्होंने दस करोड़ मुहरोंका दाँव रक्खा॥ ३१॥ इस बार भी द्यूतनियमके अनुसार बलरामजीकी ही जीत हुई। परन्तु रुक्मीने छल करके कहा—'मेरी जीत है। इस विषयके विशेषज्ञ कलिङ्गनरेश आदि सभासद् इसका निर्णय कर दें'॥ ३२॥ उस समय आकाशवाणीने कहा—'यदि धर्मपूर्वक कहा जाय, तो बलरामजीने ही यह दाँव जीता है। रुक्मीका यह कहना सरासर झूठ है कि उसने जीता है'॥ ३३॥ एक तो रुक्मीके सिरपर मौत सवार थी और दूसरे उसके साथी दुष्ट राजाओंने भी उसे उभाड़ रक्खा था। इससे उसने आकाशवाणीपर कोई ध्यान न दिया और बलरामजीकी हँसी उड़ाते हुए कहा—॥ ३४॥ 'बलरामजी! आखिर आपलोग वन-वन भटकनेवाले ग्वाले ही तो ठहरे! आप पासा खेलना क्या जानें? पासों और बाणोंसे तो केवल राजालोग ही खेला करते हैं, आप-जैसे नहीं'॥ ३५॥ रुक्मीके इस प्रकार आक्षेप और राजाओंके उपहास करनेपर बलरामजी क्रोधसे आगबबूला हो उठे। उन्होंने एक मुद्गर उठाया और उस माङ्गलिक सभामें ही रुक्मीको मार डाला॥ ३६॥ पहले कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर हँसता था, अब रंगमें भंग देखकर वहाँसे भागा; परन्तु बलरामजीने दस ही कदमपर उसे पकड़ लिया और क्रोधसे उसके दाँत तोड़ डाले॥ ३७॥ बलरामजीने अपने मुद्गरकी चोटसे दूसरे राजाओंकी भी बाँह, जाँघ और सिर आदि तोड़-फोड़ डाले। वे खूनसे लथपथ और भयभीत होकर वहाँसे भागते बने॥ ३८॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि बलरामजीका समर्थन करनेसे रुक्मिणीजी अप्रसन्न होंगी और रुक्मीके वधको बुरा बतलानेसे बलरामजी रुष्ट होंगे,

७४४ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६१

सभी बातें भलीभाँति जानते हैं। उनसे ऐसी बातें भी छिपी नहीं रहतीं; जो इन्द्रियोंसे परे हैं, बहुत दूर हैं अथवा बीचमें किसी वस्तुकी आड़ होनेके कारण नहीं दीखतीं॥ २१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रद्युम्नजी मूर्तिमान् कामदेव थे। उनके सौन्दर्य और गुणोंपर रीझकर रुक्मवतीने स्वयंवरमें उन्हींको वरमाला पहना दी। प्रद्युम्नजीने युद्धमें अकेले ही वहाँ इकट्ठे हुए नरपतियोंको जीत लिया और रुक्मवतीको हर लाये॥ २२॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णसे अपमानित होनेके कारण रुक्मीके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई थी, वह अब भी उनसे वैर गाँठे हुए था, फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपने भानजे प्रद्युम्नको अपनी बेटी ब्याह दी॥ २३॥ परीक्षित्! दस पुत्रोंके अतिरिक्त रुक्मिणीजीके एक परम सुन्दरी बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कन्या थी। उसका नाम था चारुमती। कृतवर्माके पुत्र बलीने उसके साथ विवाह किया॥ २४॥

परीक्षित्! रुक्मीका भगवान् श्रीकृष्णके साथ पुराना वैर था। फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह रुक्मिणीके पौत्र, अपने नाती (दौहित्र) अनिरुद्धके साथ कर दिया। यद्यपि रुक्मीको इस बातका पता था कि इस प्रकारका विवाह-सम्बन्ध धर्मके अनुकूल नहीं है, फिर भी स्नेह-बन्धनमें बँधकर उसने ऐसा कर दिया॥ २५॥ परीक्षित्! अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी, प्रद्युम्न, साम्ब आदि द्वारकावासी भोजकट नगरमें पधारे॥ २६॥ जब विवाहोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया, तब कलिङ्गनरेश आदि घमंडी नरपतियोंने रुक्मीसे कहा कि 'तुम बलरामजीको पासोंके खेलमें जीत लो॥ २७॥ राजन्! बलरामजीको पासे डालने तो आते नहीं, परन्तु उन्हें खेलनेका बहुत बड़ा व्यसन है।' उन लोगोंके बहकानेसे रुक्मीने बलरामजीको बुलवाया और वह उनके साथ चौसर खेलने लगा॥ २८॥ बलरामजीने पहले सौ, फिर हजार और इसके बाद दस हजार मुहरोंका दाँव लगाया। उन्हें रुक्मीने जीत लिया। रुक्मीकी जीत होनेपर कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर, ठहाका मारकर बलरामजीकी हँसी उड़ाने लगा। बलरामजीसे वह हँसी सहन न हुई। वे कुछ चिढ़ गये॥ २९॥ इसके बाद रुक्मीने एक लाख मुहरोंका दाँव लगाया। उसे बलरामजीने जीत लिया। परन्तु रुक्मी धूर्ततासे यह कहने लगा कि 'मैंने जीता है'॥ ३०॥ इसपर श्रीमान् बलरामजी क्रोधसे तिलमिला उठे। उनके हृदयमें इतना क्षोभ हुआ, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आ गया हो। उनके नेत्र एक तो स्वभावसे ही लाल-लाल थे, दूसरे अत्यन्त क्रोधके मारे वे और भी दहक उठे। अब उन्होंने दस करोड़ मुहरोंका दाँव रक्खा॥ ३१॥ इस बार भी द्यूतनियमके अनुसार बलरामजीकी ही जीत हुई। परन्तु रुक्मीने छल करके कहा—'मेरी जीत है। इस विषयके विशेषज्ञ कलिङ्गनरेश आदि सभासद् इसका निर्णय कर दें'॥ ३२॥ उस समय आकाशवाणीने कहा—'यदि धर्मपूर्वक कहा जाय, तो बलरामजीने ही यह दाँव जीता है। रुक्मीका यह कहना सरासर झूठ है कि उसने जीता है'॥ ३३॥ एक तो रुक्मीके सिरपर मौत सवार थी और दूसरे उसके साथी दुष्ट राजाओंने भी उसे उभाड़ रक्खा था। इससे उसने आकाशवाणीपर कोई ध्यान न दिया और बलरामजीकी हँसी उड़ाते हुए कहा—॥ ३४॥ 'बलरामजी! आखिर आपलोग वन-वन भटकनेवाले ग्वाले ही तो ठहरे! आप पासा खेलना क्या जानें? पासों और बाणोंसे तो केवल राजालोग ही खेला करते हैं, आप-जैसे नहीं'॥ ३५॥ रुक्मीके इस प्रकार आक्षेप और राजाओंके उपहास करनेपर बलरामजी क्रोधसे आगबबूला हो उठे। उन्होंने एक मुद्गर उठाया और उस माङ्गलिक सभामें ही रुक्मीको मार डाला॥ ३६॥ पहले कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर हँसता था, अब रंगमें भंग देखकर वहाँसे भागा; परन्तु बलरामजीने दस ही कदमपर उसे पकड़ लिया और क्रोधसे उसके दाँत तोड़ डाले॥ ३७॥ बलरामजीने अपने मुद्गरकी चोटसे दूसरे राजाओंकी भी बाँह, जाँघ और सिर आदि तोड़-फोड़ डाले। वे खूनसे लथपथ और भयभीत होकर वहाँसे भागते बने॥ ३८॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि बलरामजीका समर्थन करनेसे रुक्मिणीजी अप्रसन्न होंगी और रुक्मीके वधको बुरा बतलानेसे बलरामजी रुष्ट होंगे,

अपने साले रुक्मीकी मृत्युपर भला-बुरा कुछ भी न कहा ॥ ३९ ॥ इसके बाद अनिरुद्धजीका विवाह और शत्रुका वध दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर भगवान्‌के आश्रित बलरामजी आदि यदुवंशी नवविवाहिता दुलहिन रोचनाके साथ अनिरुद्धजीको श्रेष्ठ रथपर चढ़ाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको चले आये ॥ ४० ॥

बासठवाँ अध्याय

ऊषा-अनिरुद्ध मिलन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—महायोगसम्पन्न मुनीश्वर ! मैंने सुना है कि यदुवंशशिरोमणि अनिरुद्धजीने बाणासुरकी पुत्री ऊषासे विवाह किया था और इस प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्करजीका बहुत बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। आप कृपा करके यह वृत्तान्त विस्तारसे सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! महात्मा बलिकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌को सारी पृथ्वीका दान कर दिया था। उनके सौ लड़के थे। उनमें सबसे बड़ा था बाणासुर ॥ २ ॥ दैत्यराज बलिका औरस पुत्र बाणासुर भगवान् शिवकी भक्तिमें सदा रत रहता था। समाजमें उसका बड़ा आदर था। उसकी उदारता और बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय थी। उसकी प्रतिज्ञा अटल होती थी और सचमुच वह बातका धनी था ॥ ३ ॥ उन दिनों वह परम रमणीय शोणितपुरमें राज्य करता था। भगवान् शङ्करकी कृपासे इन्द्रादि देवता नौकर-चाकरकी तरह उसकी सेवा करते थे। उसके हजार भुजाएँ थीं। एक दिन जब भगवान् शङ्कर ताण्डवनृत्य कर रहे थे, तब उसने अपने हजार हाथोंसे अनेकों प्रकारके बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया ॥ ४ ॥ सचमुच भगवान् शङ्कर बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागतरक्षक हैं। समस्त भूतोंके एकमात्र स्वामी प्रभुने बाणासुरसे कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' बाणासुरने कहा—'भगवन् ! आप मेरे नगरकी रक्षा करते हुए यहीं रहा करें' ॥ ५ ॥

एक दिन बल-पौरुषके घमंडमें चूर बाणासुरने अपने समीप ही स्थित भगवान् शङ्करके चरणकमलोंको सूर्यके समान चमकीले मुकुटसे छूकर प्रणाम किया और कहा— ॥ ६ ॥ 'देवाधिदेव ! आप समस्त चराचर जगत्‌के गुरु और ईश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिन लोगोंके मनोरथ अबतक पूरे नहीं हुए हैं, उनको पूर्ण करनेके लिये आप कल्पवृक्ष हैं ॥ ७ ॥ भगवन् ! आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं, परन्तु वे मेरे लिये केवल भाररूप हो रही हैं। क्योंकि त्रिलोकीमें आपको छोड़कर मुझे अपनी बराबरीका कोई वीर-योद्धा ही नहीं मिलता, जो मुझसे लड़ सके ॥ ८ ॥ आदिदेव ! एक बार मेरी बाहोंमें लड़नेके लिये इतनी खुजलाहट हुई कि मैं दिग्गजोंकी ओर चला। परन्तु वे भी डरके मारे भाग खड़े हुए। उस समय मार्गमें अपनी बाहोंकी चोटसे मैंने बहुतसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला था' ॥ ९ ॥ बाणासुरकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने तनिक क्रोधसे कहा—'रे मूढ़ ! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर जायगी, उस समय मेरे ही समान योद्धासे तेरा युद्ध होगा और वह युद्ध तेरा घमंड चूर-चूर कर देगा' ॥ १० ॥ परीक्षित् ! बाणासुरकी बुद्धि इतनी बिगड़ गयी थी कि भगवान् शङ्करकी बात सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अपने घर लौट गया। अब वह मूर्ख भगवान् शङ्करके आदेशानुसार उस युद्धकी प्रतीक्षा करने लगा, जिसमें उसके बल-वीर्यका नाश होनेवाला था ॥ ११ ॥

परीक्षित् ! बाणासुरकी एक कन्या थी, उसका नाम था ऊषा। अभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन स्वप्नमें उसने देखा कि 'परम सुन्दर अनिरुद्धजीके साथ मेरा समागम हो रहा है।' आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उसने अनिरुद्धजीको न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ १२ ॥ स्वप्नमें ही उन्हें न देखकर वह बोल उठी—'प्राणप्यारे ! तुम कहाँ हो ?' और उसकी नींद टूट गयी। वह अत्यन्त विह्वलताके साथ उठ बैठी और यह देखकर कि मैं सखियोंके बीचमें हूँ, बहुत ही लज्जित हुई ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! बाणासुरके मन्त्रीका नाम था

अ० ६२] * दशम स्कन्ध * ७४५
अपने साले रुक्मीकी मृत्युपर भला-बुरा कुछ भी न कहा ॥ ३९ ॥ इसके बाद अनिरुद्धजीका विवाह और शत्रुका वध दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर भगवान्‌के आश्रित बलरामजी आदि यदुवंशी नवविवाहिता दुलहिन रोचनाके साथ अनिरुद्धजीको श्रेष्ठ रथपर चढ़ाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको चले आये ॥ ४० ॥
बासठवाँ अध्याय
ऊषा-अनिरुद्ध मिलन
राजा परीक्षित्‌ने पूछा—महायोगसम्पन्न मुनीश्वर ! मैंने सुना है कि यदुवंशशिरोमणि अनिरुद्धजीने बाणासुरकी पुत्री ऊषासे विवाह किया था और इस प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्करजीका बहुत बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। आप कृपा करके यह वृत्तान्त विस्तारसे सुनाइये ॥ १ ॥
श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! महात्मा बलिकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌को सारी पृथ्वीका दान कर दिया था। उनके सौ लड़के थे। उनमें सबसे बड़ा था बाणासुर ॥ २ ॥ दैत्यराज बलिका औरस पुत्र बाणासुर भगवान् शिवकी भक्तिमें सदा रत रहता था। समाजमें उसका बड़ा आदर था। उसकी उदारता और बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय थी। उसकी प्रतिज्ञा अटल होती थी और सचमुच वह बातका धनी था ॥ ३ ॥ उन दिनों वह परम रमणीय शोणितपुरमें राज्य करता था। भगवान् शङ्करकी कृपासे इन्द्रादि देवता नौकर-चाकरकी तरह उसकी सेवा करते थे। उसके हजार भुजाएँ थीं। एक दिन जब भगवान् शङ्कर ताण्डवनृत्य कर रहे थे, तब उसने अपने हजार हाथोंसे अनेकों प्रकारके बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया ॥ ४ ॥ सचमुच भगवान् शङ्कर बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागतरक्षक हैं। समस्त भूतोंके एकमात्र स्वामी प्रभुने बाणासुरसे कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' बाणासुरने कहा—'भगवन् ! आप मेरे नगरकी रक्षा करते हुए यहीं रहा करें' ॥ ५ ॥
एक दिन बल-पौरुषके घमंडमें चूर बाणासुरने अपने समीप ही स्थित भगवान् शङ्करके चरणकमलोंको सूर्यके समान चमकीले मुकुटसे छूकर प्रणाम किया और कहा— ॥ ६ ॥ 'देवाधिदेव ! आप समस्त चराचर जगत्‌के गुरु और ईश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिन लोगोंके मनोरथ अबतक पूरे नहीं हुए हैं, उनको पूर्ण करनेके लिये आप कल्पवृक्ष हैं ॥ ७ ॥ भगवन् ! आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं, परन्तु वे मेरे लिये केवल भाररूप हो रही हैं। क्योंकि त्रिलोकीमें आपको छोड़कर मुझे अपनी बराबरीका कोई वीर-योद्धा ही नहीं मिलता, जो मुझसे लड़ सके ॥ ८ ॥ आदिदेव ! एक बार मेरी बाहोंमें लड़नेके लिये इतनी खुजलाहट हुई कि मैं दिग्गजोंकी ओर चला। परन्तु वे भी डरके मारे भाग खड़े हुए। उस समय मार्गमें अपनी बाहोंकी चोटसे मैंने बहुतसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला था' ॥ ९ ॥ बाणासुरकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने तनिक क्रोधसे कहा—'रे मूढ़ ! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर जायगी, उस समय मेरे ही समान योद्धासे तेरा युद्ध होगा और वह युद्ध तेरा घमंड चूर-चूर कर देगा' ॥ १० ॥ परीक्षित् ! बाणासुरकी बुद्धि इतनी बिगड़ गयी थी कि भगवान् शङ्करकी बात सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अपने घर लौट गया। अब वह मूर्ख भगवान् शङ्करके आदेशानुसार उस युद्धकी प्रतीक्षा करने लगा, जिसमें उसके बल-वीर्यका नाश होनेवाला था ॥ ११ ॥
परीक्षित् ! बाणासुरकी एक कन्या थी, उसका नाम था ऊषा। अभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन स्वप्नमें उसने देखा कि 'परम सुन्दर अनिरुद्धजीके साथ मेरा समागम हो रहा है।' आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उसने अनिरुद्धजीको न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ १२ ॥ स्वप्नमें ही उन्हें न देखकर वह बोल उठी—'प्राणप्यारे ! तुम कहाँ हो ?' और उसकी नींद टूट गयी। वह अत्यन्त विह्वलताके साथ उठ बैठी और यह देखकर कि मैं सखियोंके बीचमें हूँ, बहुत ही लज्जित हुई ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! बाणासुरके मन्त्रीका नाम था

कुम्भाण्ड। उसकी एक कन्या थी, जिसका नाम था चित्रलेखा। ऊषा और चित्रलेखा एक-दूसरेकी सहेलियाँ थीं। चित्रलेखाने ऊषासे कौतूहलवश पूछा—॥ १४ ॥ 'सुन्दरी ! राजकुमारी ! मैं देखती हूँ कि अभीतक किसीने तुम्हारा पाणिग्रहण भी नहीं किया है। फिर तुम किसे ढूँढ़ रही हो और तुम्हारे मनोरथका क्या स्वरूप है?'॥ १५ ॥

ऊषाने कहा—सखी ! मैंने स्वप्नमें एक बहुत ही सुन्दर नवयुवकको देखा है। उसके शरीरका रंग साँवला-साँवला-सा है। नेत्र कमलदलके समान हैं। शरीरपर पीला-पीला पीताम्बर फहरा रहा है। भुजाएँ लंबी-लंबी हैं और वह स्त्रियोंका चित्त चुरानेवाला हैं ॥ १६ ॥ उसने पहले तो अपने अधरोंका मधुर मधु मुझे पिलाया, परन्तु मैं उसे अघाकर पी ही न पायी थी कि वह मुझे दुःखके सागरमें डालकर न जाने कहाँ चला गया। मैं तरसती ही रह गयी। सखी ! मैं अपने उसी प्राणवल्लभको ढूँढ़ रही हूँ ॥ १७ ॥

चित्रलेखाने कहा—'सखी ! यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रिलोकीमें कहीं भी होगा, और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह-व्यथा अवश्य शान्त कर दूँगी। मैं चित्र बनाती हूँ, तुम अपने चित्तचोर प्राणवल्लभको पहचानकर बतला दो। फिर वह चाहे कहीं भी होगा, मैं उसे तुम्हारे पास ले आऊँगी' ॥ १८ ॥ यों कहकर चित्रलेखाने बात-की-बातमें बहुत-से देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्योंके चित्र बना दिये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें उसने वृष्णिवंशी वसुदेवजीके पिता शूर, स्वयं वसुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण आदिके चित्र बनाये। प्रद्युम्नका चित्र देखते ही ऊषा लज्जित हो गयी ॥ २० ॥ परीक्षित् ! जब उसने अनिरुद्धका चित्र देखा, तब तो लज्जाके मारे उसका सिर नीचा हो गया। फिर मन्द-मन्द मुसकराते हुए उसने कहा—'मेरा वह प्राणवल्लभ यही है, यही है' ॥ २१ ॥

परीक्षित् ! चित्रलेखा योगिनी थी। वह जान गयी कि ये भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र हैं। अब वह आकाशमार्गसे रात्रिमें ही भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ अनिरुद्धजी बहुत ही सुन्दर पलँगपर सो रहे थे। चित्रलेखा योगसिद्धिके प्रभावसे उन्हें उठाकर शोणितपुर ले आयी और अपनी सखी ऊषाको उसके प्रियतमका दर्शन करा दिया ॥ २३ ॥ अपने परम सुन्दर प्राणवल्लभको पाकर आनन्दकी अधिकतासे उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा और वह अनिरुद्धजीके साथ अपने महलमें विहार करने लगी। परीक्षित् ! उसका अन्तःपुर इतना सुरक्षित था कि उसकी ओर कोई पुरुष झाँकतक नहीं सकता था ॥ २४ ॥ ऊषाका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा था। वह बहुमूल्य वस्त्र, पुष्पोंके हार, इत्र-फुलेल, धूप-दीप, आसन आदि सामग्रियोंसे, सुमधुर पेय (पीनेयोग्य पदार्थ—दूध, शरबत आदि), भोज्य (चबाकर खानेयोग्य) और भक्ष्य (निगल जानेयोग्य) पदार्थोंसे तथा मनोहर वाणी एवं सेवा-शुश्रूषासे अनिरुद्धजीका बड़ा सत्कार करती। ऊषाने अपने प्रेमसे उनके मनको अपने वशमें कर लिया। अनिरुद्धजी उस कन्याके अन्तःपुरमें छिपे रहकर अपने-आपको भूल गये। उन्हें इस बातका भी पता न चला कि मुझे यहाँ आये कितने दिन बीत गये ॥ २५-२६ ॥

परीक्षित् ! यदुकुमार अनिरुद्धजीके सहवाससे ऊषाका कुआँरपन नष्ट हो चुका था। उसके शरीरपर ऐसे चिह्न प्रकट हो गये, जो स्पष्ट इस बातकी सूचना दे रहे थे और जिन्हें किसी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता था। ऊषा बहुत प्रसन्न भी रहने लगी। पहरेदारोंने समझ लिया कि इसका किसी-न-किसी पुरुषसे सम्बन्ध अवश्य हो गया है। उन्होंने जाकर बाणासुरसे निवेदन किया—'राजन् ! हमलोग आपकी अविवाहिता राजकुमारीका जैसा रंग-ढंग देख रहे हैं, वह आपके कुलपर बट्टा लगानेवाला है ॥ २७-२८ ॥ प्रभो ! इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बिना क्रम टूटे, रात-दिन महलका पहरा देते रहते हैं। आपकी कन्याको बाहरके मनुष्य देख भी नहीं सकते। फिर भी वह कलङ्कित कैसे हो गयी ? इसका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है' ॥ २९ ॥

परीक्षित् ! पहरेदारोंसे यह समाचार जानकर कि कन्याका चरित्र दूषित हो गया है, बाणासुरके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई। वह झटपट ऊषाके महलमें जा धमका और देखा कि अनिरुद्धजी वहाँ बैठे हुए हैं ॥ ३० ॥ प्रिय परीक्षित् ! अनिरुद्धजी स्वयं कामावतार प्रद्युम्नजीके पुत्र थे। त्रिभुवनमें उनके-जैसा सुन्दर और कोई न था। साँवरा-सलोना शरीर और उसपर पीताम्बर फहराता

७४६ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६२
कुम्भाण्ड। उसकी एक कन्या थी, जिसका नाम था चित्रलेखा। ऊषा और चित्रलेखा एक-दूसरेकी सहेलियाँ थीं। चित्रलेखाने ऊषासे कौतूहलवश पूछा—॥ १४ ॥ 'सुन्दरी ! राजकुमारी ! मैं देखती हूँ कि अभीतक किसीने तुम्हारा पाणिग्रहण भी नहीं किया है। फिर तुम किसे ढूँढ़ रही हो और तुम्हारे मनोरथका क्या स्वरूप है?'॥ १५ ॥
ऊषाने कहा—सखी ! मैंने स्वप्नमें एक बहुत ही सुन्दर नवयुवकको देखा है। उसके शरीरका रंग साँवला-साँवला-सा है। नेत्र कमलदलके समान हैं। शरीरपर पीला-पीला पीताम्बर फहरा रहा है। भुजाएँ लंबी-लंबी हैं और वह स्त्रियोंका चित्त चुरानेवाला हैं ॥ १६ ॥ उसने पहले तो अपने अधरोंका मधुर मधु मुझे पिलाया, परन्तु मैं उसे अघाकर पी ही न पायी थी कि वह मुझे दुःखके सागरमें डालकर न जाने कहाँ चला गया। मैं तरसती ही रह गयी। सखी ! मैं अपने उसी प्राणवल्लभको ढूँढ़ रही हूँ ॥ १७ ॥
चित्रलेखाने कहा—'सखी ! यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रिलोकीमें कहीं भी होगा, और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह-व्यथा अवश्य शान्त कर दूँगी। मैं चित्र बनाती हूँ, तुम अपने चित्तचोर प्राणवल्लभको पहचानकर बतला दो। फिर वह चाहे कहीं भी होगा, मैं उसे तुम्हारे पास ले आऊँगी' ॥ १८ ॥ यों कहकर चित्रलेखाने बात-की-बातमें बहुत-से देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्योंके चित्र बना दिये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें उसने वृष्णिवंशी वसुदेवजीके पिता शूर, स्वयं वसुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण आदिके चित्र बनाये। प्रद्युम्नका चित्र देखते ही ऊषा लज्जित हो गयी ॥ २० ॥ परीक्षित् ! जब उसने अनिरुद्धका चित्र देखा, तब तो लज्जाके मारे उसका सिर नीचा हो गया। फिर मन्द-मन्द मुसकराते हुए उसने कहा—'मेरा वह प्राणवल्लभ यही है, यही है' ॥ २१ ॥
परीक्षित् ! चित्रलेखा योगिनी थी। वह जान गयी कि ये भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र हैं। अब वह आकाशमार्गसे रात्रिमें ही भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ अनिरुद्धजी बहुत ही सुन्दर पलँगपर सो रहे थे। चित्रलेखा योगसिद्धिके प्रभावसे उन्हें उठाकर शोणितपुर ले आयी और अपनी सखी ऊषाको उसके प्रियतमका दर्शन करा दिया ॥ २३ ॥ अपने परम सुन्दर प्राणवल्लभको पाकर आनन्दकी अधिकतासे उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा और वह अनिरुद्धजीके साथ अपने महलमें विहार करने लगी। परीक्षित् ! उसका अन्तःपुर इतना सुरक्षित था कि उसकी ओर कोई पुरुष झाँकतक नहीं सकता था ॥ २४ ॥ ऊषाका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा था। वह बहुमूल्य वस्त्र, पुष्पोंके हार, इत्र-फुलेल, धूप-दीप, आसन आदि सामग्रियोंसे, सुमधुर पेय (पीनेयोग्य पदार्थ—दूध, शरबत आदि), भोज्य (चबाकर खानेयोग्य, और भक्ष्य (निगल जानेयोग्य) पदार्थोंसे तथा मनोहर वाणी एवं सेवा-शुश्रूषासे अनिरुद्धजीका बड़ा सत्कार करती। ऊषाने अपने प्रेमसे उनके मनको अपने वशमें कर लिया। अनिरुद्धजी उस कन्याके अन्तःपुरमें छिपे रहकर अपने-आपको भूल गये। उन्हें इस बातका भी पता न चला कि मुझे यहाँ आये कितने दिन बीत गये ॥ २५-२६ ॥
परीक्षित् ! यदुकुमार अनिरुद्धजीके सहवाससे ऊषाका कुआँरपन नष्ट हो चुका था। उसके शरीरपर ऐसे चिह्न प्रकट हो गये, जो स्पष्ट इस बातकी सूचना दे रहे थे और जिन्हें किसी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता था। ऊषा बहुत प्रसन्न भी रहने लगी। पहरेदारोंने समझ लिया कि इसका किसी-न-किसी पुरुषसे सम्बन्ध अवश्य हो गया है। उन्होंने जाकर बाणासुरसे निवेदन किया—'राजन् ! हमलोग आपकी अविवाहिता राजकुमारीका जैसा रंग-ढंग देख रहे हैं, वह आपके कुलपर बट्टा लगानेवाला है ॥ २७-२८ ॥ प्रभो ! इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बिना क्रम टूटे, रात-दिन महलका पहरा देते रहते हैं। आपकी कन्याको बाहरके मनुष्य देख भी नहीं सकते। फिर भी वह कलङ्कित कैसे हो गयी ? इसका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है' ॥ २९ ॥
परीक्षित् ! पहरेदारोंसे यह समाचार जानकर कि कन्याका चरित्र दूषित हो गया है, बाणासुरके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई। वह झटपट ऊषाके महलमें जा धमका और देखा कि अनिरुद्धजी वहाँ बैठे हुए हैं ॥ ३० ॥ प्रिय परीक्षित् ! अनिरुद्धजी स्वयं कामावतार प्रद्युम्नजीके पुत्र थे। त्रिभुवनमें उनके-जैसा सुन्दर और कोई न था। साँवरा-सलोना शरीर और उसपर पीताम्बर फहराता

हुआ, कमलदलके समान बड़ी-बड़ी कोमल आँखें, लंबी-लंबी भुजाएँ, कपोलोंपर घुँघराली अलकें और कुण्डलोंकी झिलमिलाती हुई ज्योति, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे मुखकी शोभा अनूठी हो रही थी॥ ३१॥ अनिरुद्धजी उस समय अपनी सब ओरसे सज-धजकर बैठी हुई प्रियतमा ऊषाके साथ पासे खेल रहे थे। उनके गलेमें बसंती बेलाके बहुत सुन्दर पुष्पोंका हार सुशोभित हो रहा था और उस हारमें ऊषाके अङ्गका सम्पर्क होनेसे उसके वक्षःस्थलकी केशर लगी हुई थी। उन्हें ऊषाके सामने ही बैठा देखकर बाणासुर विस्मित-चकित हो गया॥ ३२॥ जब अनिरुद्धजीने देखा कि बाणासुर बहुत-से आक्रमणकारी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महलोंमें घुस आया है, तब वे उन्हें धराशायी कर देनेके लिये लोहेका एक भयङ्कर परिघ लेकर डट गये, मानो स्वयं कालदण्ड लेकर मृत्यु (यम) खड़ा हो॥ ३३॥ बाणासुरके साथ आये हुए सैनिक उनको पकड़नेके लिये ज्यों-ज्यों उनकी ओर झपटते, त्यों-त्यों वे उन्हें मार-मारकर गिराते जाते—ठीक वैसे ही, जैसे सूअरोंके दलका नायक कुत्तोंको मार डाले! अनिरुद्धजीकी चोटसे उन सैनिकोंके सिर, भुजा, जंघा आदि अङ्ग टूट-फूट गये और वे महलोंसे निकल भागे॥ ३४॥ जब बली बाणासुरने देखा कि यह तो मेरी सारी सेनाका संहार कर रहा है, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने नागपाशसे उन्हें बाँध लिया। ऊषाने जब सुना कि उसके प्रियतमको बाँध लिया गया है, तब वह अत्यन्त शोक और विषादसे विह्वल हो गयी; उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगी, वह रोने लगी॥ ३५॥

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! बरसातके चार महीने बीत गये। परन्तु अनिरुद्धजीका कहीं पता न चला। उनके घरके लोग, इस घटनासे बहुत ही शोकाकुल हो रहे थे॥ १॥ एक दिन नारदजीने आकर अनिरुद्धका शोणितपुर जाना, वहाँ बाणासुरके सैनिकोंको हराना और फिर नागपाशमें बाँधा जाना—यह सारा समाचार सुनाया। तब श्रीकृष्णको ही अपना आराध्यदेव माननेवाले यदुवंशियोंने शोणितपुरपर चढ़ायी कर दी॥ २॥ अब श्रीकृष्ण और बलरामजीके साथ उनके अनुयायी सभी यदुवंशी—प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदिने बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ व्यूह बनाकर चारों ओरसे बाणासुरकी राजधानीको घेर लिया॥ ३-४॥ जब बाणासुरने देखा कि यदुवंशियोंकी सेना नगरके उद्यान, परकोटों, बुर्जों और सिंहद्वारोंको तोड़-फोड़ रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़ा॥ ५॥ बाणासुरकी ओरसे साक्षात् भगवान् शङ्कर वृषभराज नन्दीपर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय और गणोंके साथ रणभूमिमें पधारे और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीसे युद्ध किया॥ ६॥ परीक्षित्! वह युद्ध इतना अद्भुत और घमासान हुआ कि उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। भगवान् श्रीकृष्णसे शंकरजीका और प्रद्युम्नसे स्वामिकार्तिकका युद्ध हुआ॥ ७॥ बलरामजीसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णका युद्ध हुआ। बाणासुरके पुत्रके साथ साम्ब और स्वयं बाणासुरके साथ सात्यकि भिड़ गये॥ ८॥ ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-चारण, गन्धर्व-अप्सराएँ और यक्ष विमानोंपर चढ़-चढ़कर युद्ध देखनेके लिये आ पहुँचे॥ ९॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषके तीखी नोकवाले बाणोंसे शङ्करजीके अनुचरों—भूत, प्रेत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्म-राक्षसोंको मार-मारकर खदेड़ दिया॥ १०-११॥ पिनाकपाणि शङ्करजीने भगवान् श्रीकृष्णपर भाँति-भाँतिके अगणित अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने बिना किसी प्रकारके विस्मयके उन्हें विरोधी

अ० ६३] * दशम स्कन्ध * ७४७

हुआ, कमलदलके समान बड़ी-बड़ी कोमल आँखें, लंबी-लंबी भुजाएँ, कपोलोंपर घुँघराली अलकें और कुण्डलोंकी झिलमिलाती हुई ज्योति, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे मुखकी शोभा अनूठी हो रही थी॥ ३१॥ अनिरुद्धजी उस समय अपनी सब ओरसे सज-धजकर बैठी हुई प्रियतमा ऊषाके साथ पासे खेल रहे थे। उनके गलेमें बसंती बेलाके बहुत सुन्दर पुष्पोंका हार सुशोभित हो रहा था और उस हारमें ऊषाके अङ्गका सम्पर्क होनेसे उसके वक्षःस्थलकी केशर लगी हुई थी। उन्हें ऊषाके सामने ही बैठा देखकर बाणासुर विस्मित-चकित हो गया॥ ३२॥ जब अनिरुद्धजीने देखा कि बाणासुर बहुत-से आक्रमणकारी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महलोंमें घुस आया है, तब वे उन्हें धराशायी कर देनेके लिये लोहेका एक भयङ्कर परिघ लेकर डट गये, मानो स्वयं कालदण्ड लेकर मृत्यु (यम) खड़ा हो॥ ३३॥ बाणासुरके साथ आये हुए सैनिक उनको पकड़नेके लिये ज्यों-ज्यों उनकी ओर झपटते, त्यों-त्यों वे उन्हें मार-मारकर गिराते जाते—ठीक वैसे ही, जैसे सूअरोंके दलका नायक कुत्तोंको मार डाले! अनिरुद्धजीकी चोटसे उन सैनिकोंके सिर, भुजा, जंघा आदि अङ्ग टूट-फूट गये और वे महलोंसे निकल भागे॥ ३४॥ जब बली बाणासुरने देखा कि यह तो मेरी सारी सेनाका संहार कर रहा है, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने नागपाशसे उन्हें बाँध लिया। ऊषाने जब सुना कि उसके प्रियतमको बाँध लिया गया है, तब वह अत्यन्त शोक और विषादसे विह्वल हो गयी; उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगी, वह रोने लगी॥ ३५॥

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! बरसातके चार महीने बीत गये। परन्तु अनिरुद्धजीका कहीं पता न चला। उनके घरके लोग, इस घटनासे बहुत ही शोकाकुल हो रहे थे॥ १॥ एक दिन नारदजीने आकर अनिरुद्धका शोणितपुर जाना, वहाँ बाणासुरके सैनिकोंको हराना और फिर नागपाशमें बाँधा जाना—यह सारा समाचार सुनाया। तब श्रीकृष्णको ही अपना आराध्यदेव माननेवाले यदुवंशियोंने शोणितपुरपर चढ़ायी कर दी॥ २॥ अब श्रीकृष्ण और बलरामजीके साथ उनके अनुयायी सभी यदुवंशी—प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदिने बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ व्यूह बनाकर चारों ओरसे बाणासुरकी राजधानीको घेर लिया॥ ३-४॥ जब बाणासुरने देखा कि यदुवंशियोंकी सेना नगरके उद्यान, परकोटों, बुर्जों और सिंहद्वारोंको तोड़-फोड़ रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़ा॥ ५॥ बाणासुरकी ओरसे साक्षात् भगवान् शङ्कर वृषभराज नन्दीपर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय और गणोंके साथ रणभूमिमें पधारे और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीसे युद्ध किया॥ ६॥ परीक्षित्! वह युद्ध इतना अद्भुत और घमासान हुआ कि उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। भगवान् श्रीकृष्णसे शंकरजीका और प्रद्युम्नसे स्वामिकार्तिकका युद्ध हुआ॥ ७॥ बलरामजीसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णका युद्ध हुआ। बाणासुरके पुत्रके साथ साम्ब और स्वयं बाणासुरके साथ सात्यकि भिड़ गये॥ ८॥ ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-चारण, गन्धर्व-अप्सराएँ और यक्ष विमानोंपर चढ़-चढ़कर युद्ध देखनेके लिये आ पहुँचे॥ ९॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषके तीखी नोकवाले बाणोंसे शङ्करजीके अनुचरों—भूत, प्रेत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्म-राक्षसोंको मार-मारकर खदेड़ दिया॥ १०-११॥ पिनाकपाणि शङ्करजीने भगवान् श्रीकृष्णपर भाँति-भाँतिके अगणित अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने बिना किसी प्रकारके विस्मयके उन्हें विरोधी

शस्त्रास्त्रोंसे शान्त कर दिया॥ १२॥ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्रकी शान्तिके लिये ब्रह्मास्त्रका, वायव्यास्त्रके लिये पार्वतास्त्रका, आग्नेयास्त्रके लिये पर्जन्यास्त्रका और पाशुपतास्त्रके लिये नारायणास्त्रका प्रयोग किया॥ १३॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रसे (जिससे मनुष्यको जँभाई-पर-जँभाई आने लगती है) महादेवजीको मोहित कर दिया। वे युद्धसे विरत होकर जँभाई लेने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजीसे छुट्टी पाकर तलवार, गदा और बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे॥ १४॥ इधर प्रद्युम्नने बाणोंकी बौछारसे स्वामिकार्तिकको घायल कर दिया, उनके अङ्ग-अङ्गसे रक्तकी धारा बह चली, वे रणभूमि छोड़कर अपने वाहन मयूरद्वारा भाग निकले॥ १५॥ बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णको घायल कर दिया, वे रणभूमिमें गिर पड़े। इस प्रकार अपने सेनापतियोंको हताहत देखकर बाणासुरकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी॥ १६॥

जब रथपर सवार बाणासुरने देखा कि श्रीकृष्ण आदिके प्रहारसे हमारी सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया। उसने चिढ़कर सात्यकिको छोड़ दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण करनेके लिये दौड़ पड़ा॥ १७॥ परीक्षित्! रणोन्मत्त बाणासुरने अपने एक हजार हाथोंसे एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक-एकपर दो-दो बाण चढ़ाये॥ १८॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने एक साथ ही उसके सारे धनुष काट डाले और सारथि, रथ तथा घोड़ोंको भी धराशायी कर दिया एवं शङ्खध्वनि की॥ १९॥ कोटरा नामकी एक देवी बाणासुरकी धर्ममाता थी। वह अपने उपासक पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिये बाल-बिखेरकर नंग-धड़ंग भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयी॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णने इसलिये कि कहीं उसपर दृष्टि न पड़ जाय, अपना मुँह फेर लिया और वे दूसरी ओर देखने लगे। तबतक बाणासुर धनुष कट जाने और रथहीन हो जानेके कारण अपने नगरमें चला गया॥ २१॥

इधर जब भगवान् शङ्करके भूतगण इधर-उधर भाग गये, तब उनका छोड़ा हुआ तीन सिर और तीन पैरवाला ज्वर दसों दिशाओंको जलाता हुआ-सा भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा॥ २२॥ भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी ओर आते देखकर उसका मुकाबला करनेके लिये अपना ज्वर छोड़ा। अब वैष्णव और माहेश्वर दोनों ज्वर आपसमें लड़ने लगे॥ २३॥ अन्तमें वैष्णव ज्वरके तेजसे माहेश्वर ज्वर पीड़ित होकर चिल्लाने लगा और अत्यन्त भयभीत हो गया। जब उसे अन्यत्र कहीं त्राण न मिला, तब वह अत्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़कर शरणमें लेनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगा॥ २४॥

ज्वरने कहा—प्रभो! आपकी शक्ति अनन्त है। आप ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम महेश्वर हैं। आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं। आप अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण आप ही हैं। श्रुतियोंके द्वारा आपका ही वर्णन और अनुमान किया जाता है। आप समस्त विकारोंसे रहित स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ २५॥ काल, दैव (अदृष्ट), कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूत्रात्मा प्राण, अहङ्कार, एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चभूत—इन सबका संघात लिङ्गशरीर और बीजाङ्कुरन्यायके अनुसार उससे कर्म और कर्मसे फिर लिङ्गशरीरकी उत्पत्ति—यह सब आपकी माया है। आप मायाके निषेधकी परम अवधि हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ २६॥ प्रभो! आप अपनी लीलासे ही अनेकों रूप धारण कर लेते हैं और देवता, साधु तथा लोकमर्यादाओंका पालन-पोषण करते हैं। साथ ही उन्मार्गगामी और हिंसक असुरोंका संहार भी करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही हुआ है॥ २७॥ प्रभो! आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सह तेज ज्वरसे मैं अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ। भगवन्! देहधारी जीवोंको तभीतक ताप-सन्ताप रहता है, जबतक वे आशाके फंदोंमें फँसे रहनेके कारण आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करते॥ २८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'त्रिशिरा! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अब तुम मेरे ज्वरसे निर्भय हो जाओ। संसारमें जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा,

७४८ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६३

शस्त्रास्त्रोंसे शान्त कर दिया॥ १२॥ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्रकी शान्तिके लिये ब्रह्मास्त्रका, वायव्यास्त्रके लिये पार्वतास्त्रका, आग्नेयास्त्रके लिये पर्जन्यास्त्रका और पाशुपतास्त्रके लिये नारायणास्त्रका प्रयोग किया॥ १३॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रसे (जिससे मनुष्यको जँभाई-पर-जँभाई आने लगती है) महादेवजीको मोहित कर दिया। वे युद्धसे विरत होकर जँभाई लेने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजीसे छुट्टी पाकर तलवार, गदा और बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे॥ १४॥ इधर प्रद्युम्नने बाणोंकी बौछारसे स्वामिकार्तिकको घायल कर दिया, उनके अङ्ग-अङ्गसे रक्तकी धारा बह चली, वे रणभूमि छोड़कर अपने वाहन मयूरद्वारा भाग निकले॥ १५॥ बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णको घायल कर दिया, वे रणभूमिमें गिर पड़े। इस प्रकार अपने सेनापतियोंको हताहत देखकर बाणासुरकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी॥ १६॥

जब रथपर सवार बाणासुरने देखा कि श्रीकृष्ण आदिके प्रहारसे हमारी सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया। उसने चिढ़कर सात्यकिको छोड़ दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण करनेके लिये दौड़ पड़ा॥ १७॥ परीक्षित्! रणोन्मत्त बाणासुरने अपने एक हजार हाथोंसे एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक-एकपर दो-दो बाण चढ़ाये॥ १८॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने एक साथ ही उसके सारे धनुष काट डाले और सारथि, रथ तथा घोड़ोंको भी धराशायी कर दिया एवं शङ्खध्वनि की॥ १९॥ कोटरा नामकी एक देवी बाणासुरकी धर्ममाता थी। वह अपने उपासक पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिये बाल-बिखेरकर नंग-धड़ंग भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयी॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णने इसलिये कि कहीं उसपर दृष्टि न पड़ जाय, अपना मुँह फेर लिया और वे दूसरी ओर देखने लगे। तबतक बाणासुर धनुष कट जाने और रथहीन हो जानेके कारण अपने नगरमें चला गया॥ २१॥

इधर जब भगवान् शङ्करके भूतगण इधर-उधर भाग गये, तब उनका छोड़ा हुआ तीन सिर और तीन पैरवाला ज्वर दसों दिशाओंको जलाता हुआ-सा भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा॥ २२॥ भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी ओर आते देखकर उसका मुकाबला करनेके लिये अपना ज्वर छोड़ा। अब वैष्णव और माहेश्वर दोनों ज्वर आपसमें लड़ने लगे॥ २३॥ अन्तमें वैष्णव ज्वरके तेजसे माहेश्वर ज्वर पीड़ित होकर चिल्लाने लगा और अत्यन्त भयभीत हो गया। जब उसे अन्यत्र कहीं त्राण न मिला, तब वह अत्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़कर शरणमें लेनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगा॥ २४॥

ज्वरने कहा—प्रभो! आपकी शक्ति अनन्त है। आप ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम महेश्वर हैं। आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं। आप अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण आप ही हैं। श्रुतियोंके द्वारा आपका ही वर्णन और अनुमान किया जाता है। आप समस्त विकारोंसे रहित स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ २५॥ काल, दैव (अदृष्ट), कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूत्रात्मा प्राण, अहङ्कार, एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चभूत—इन सबका संघात लिङ्गशरीर और बीजाङ्कुरन्यायके अनुसार उससे कर्म और कर्मसे फिर लिङ्गशरीरकी उत्पत्ति—यह सब आपकी माया है। आप मायाके निषेधकी परम अवधि हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ २६॥ प्रभो! आप अपनी लीलासे ही अनेकों रूप धारण कर लेते हैं और देवता, साधु तथा लोकमर्यादाओंका पालन-पोषण करते हैं। साथ ही उन्मार्गगामी और हिंसक असुरोंका संहार भी करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही हुआ है॥ २७॥ प्रभो! आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सह तेज ज्वरसे मैं अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ। भगवन्! देहधारी जीवोंको तभीतक ताप-सन्ताप रहता है, जबतक वे आशाके फंदोंमें फँसे रहनेके कारण आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करते॥ २८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'त्रिशिरा! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अब तुम मेरे ज्वरसे निर्भय हो जाओ। संसारमें जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा,

उसे तुमसे कोई भय न रहेगा' ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर माहेश्वर ज्वर उन्हें प्रणाम करके चला गया। तबतक बाणासुर रथपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये फिर आ पहुँचा ॥ ३० ॥ परीक्षित् ! बाणासुरने अपने हजार हाथोंमें तरह-तरहके हथियार ले रक्खे थे। अब वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर चक्रपाणि भगवान्पर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बाणासुरने तो बाणोंकी झड़ी लगा दी है, तब वे छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे उसकी भुजाएँ काटने लगे, मानो कोई किसी वृक्षकी छोटी-छोटी डालियाँ काट रहा हो ॥ ३२ ॥ जब भक्तवत्सल भगवान् शङ्करने देखा कि बाणासुरकी भुजाएँ कट रही हैं, तब वे चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—प्रभो ! आप वेदमन्त्रोंमें तात्पर्यरूपसे छिपे हुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। शुद्धहृदय महात्मागण आपके आकाशके समान सर्वव्यापक और निर्विकार (निर्लेप) स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है और जल वीर्य। स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण है। चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र और मैं शिव आपका अहङ्कार हूँ। समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा ॥ ३५ ॥ धान्यादि ओषधियाँ रोम हैं, मेघ केश हैं और ब्रह्मा बुद्धि। प्रजापति लिङ्ग हैं और धर्म हृदय। इस प्रकार समस्त लोक और लोकान्तरोंके साथ जिसके शरीरकी तुलना की जाती है, वे परमपुरुष आप ही हैं ॥ ३६ ॥ अखण्ड ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके अभ्युदय—अभिवृद्धिके लिये हुआ है। हम सब भी आपके प्रभावसे ही प्रभावान्वित होकर सातों भुवनोंका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित हैं—एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं। मायाकृत जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंमें अनुगत और उनसे अतीत तुरीयतत्त्व भी आप ही हैं। आप किसी दूसरी वस्तुके द्वारा प्रकाशित नहीं होते, स्वयंप्रकाश हैं। आप सबके कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण है और न तो आपमें कारणपना ही है। भगवन् ! ऐसा होनेपर भी आप तीनों गुणोंकी विभिन्न विषमताओंको प्रकाशित करनेके लिये अपनी मायासे देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि शरीरोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ प्रभो ! जैसे सूर्य अपनी छाया बादलोंसे ही ढक जाता है और उन बादलों तथा विभिन्न रूपोंको प्रकाशित करता है उसी प्रकार आप तो स्वयंप्रकाश हैं, परन्तु गुणोंके द्वारा मानो ढक-से जाते हैं और समस्त गुणों तथा गुणाभिमानी जीवोंको प्रकाशित करते हैं। वास्तवमें आप अनन्त हैं ॥ ३९ ॥

भगवन् ! आपकी मायासे मोहित होकर लोग स्त्री-पुत्र, देह-गेह आदिमें आसक्त हो जाते हैं और फिर दुःखके अपार सागरमें डूबने-उतराने लगते हैं ॥ ४० ॥ संसारके मानवोंको यह मनुष्य-शरीर आपने अत्यन्त कृपा करके दिया है। जो पुरुष इसे पाकर भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं करता और आपके चरणकमलोंका आश्रय नहीं लेता—उनका सेवन नहीं करता, उसका जीवन अत्यन्त शोचनीय है और वह स्वयं अपने-आपको धोखा दे रहा है ॥ ४१ ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं। जो मृत्युका ग्रास मनुष्य आपको छोड़ देता है और अनात्म, दुःखरूप एवं तुच्छ विषयोंमें सुखबुद्धि करके उनके पीछे भटकता है, वह इतना मूर्ख है कि अमृतको छोड़कर विष पी रहा है ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्मा, सारे देवता और विशुद्ध हृदयवाले ऋषि-मुनि सब प्रकारसे और सर्वात्मभावसे आपके शरणागत हैं; क्योंकि आप ही हमलोगोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं ॥ ४३ ॥ आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। आप सबमें सम, परम शान्त, सबके सुहृद्, आत्मा और इष्टदेव हैं। आप एक, अद्वितीय और जगत्के आधार तथा अधिष्ठान हैं। हे प्रभो ! हम सब संसारसे मुक्त होनेके लिये आपका भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ देव ! यह बाणासुर मेरा परमप्रिय, कृपापात्र और सेवक है। मैंने इसे अभयदान दिया है। प्रभो ! जिस प्रकार इसके परदादा दैत्यराज

अ॰ ६३] * दशम स्कन्ध * ७४९

उसे तुमसे कोई भय न रहेगा' ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर माहेश्वर ज्वर उन्हें प्रणाम करके चला गया। तबतक बाणासुर रथपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये फिर आ पहुँचा ॥ ३० ॥ परीक्षित् ! बाणासुरने अपने हजार हाथोंमें तरह-तरहके हथियार ले रक्खे थे। अब वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर चक्रपाणि भगवान्पर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बाणासुरने तो बाणोंकी झड़ी लगा दी है, तब वे छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे उसकी भुजाएँ काटने लगे, मानो कोई किसी वृक्षकी छोटी-छोटी डालियाँ काट रहा हो ॥ ३२ ॥ जब भक्तवत्सल भगवान् शङ्करने देखा कि बाणासुरकी भुजाएँ कट रही हैं, तब वे चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—प्रभो ! आप वेदमन्त्रोंमें तात्पर्यरूपसे छिपे हुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। शुद्धहृदय महात्मागण आपके आकाशके समान सर्वव्यापक और निर्विकार (निर्लेप) स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है और जल वीर्य। स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण है। चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र और मैं शिव आपका अहङ्कार हूँ। समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा ॥ ३५ ॥ धान्यादि ओषधियाँ रोम हैं, मेघ केश हैं और ब्रह्मा बुद्धि। प्रजापति लिङ्ग हैं और धर्म हृदय। इस प्रकार समस्त लोक और लोकान्तरोंके साथ जिसके शरीरकी तुलना की जाती है, वे परमपुरुष आप ही हैं ॥ ३६ ॥ अखण्ड ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके अभ्युदय—अभिवृद्धिके लिये हुआ है। हम सब भी आपके प्रभावसे ही प्रभावान्वित होकर सातों भुवनोंका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित हैं—एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं। मायाकृत जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंमें अनुगत और उनसे अतीत तुरीयतत्त्व भी आप ही हैं। आप किसी दूसरी वस्तुके द्वारा प्रकाशित नहीं होते, स्वयंप्रकाश हैं। आप सबके कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण है और न तो आपमें कारणपना ही है। भगवन् ! ऐसा होनेपर भी आप तीनों गुणोंकी विभिन्न विषमताओंको प्रकाशित करनेके लिये अपनी मायासे देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि शरीरोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ प्रभो ! जैसे सूर्य अपनी छाया बादलोंसे ही ढक जाता है और उन बादलों तथा विभिन्न रूपोंको प्रकाशित करता है उसी प्रकार आप तो स्वयंप्रकाश हैं, परन्तु गुणोंके द्वारा मानो ढक-से जाते हैं और समस्त गुणों तथा गुणाभिमानी जीवोंको प्रकाशित करते हैं। वास्तवमें आप अनन्त हैं ॥ ३९ ॥

भगवन् ! आपकी मायासे मोहित होकर लोग स्त्री-पुत्र, देह-गेह आदिमें आसक्त हो जाते हैं और फिर दुःखके अपार सागरमें डूबने-उतराने लगते हैं ॥ ४० ॥ संसारके मानवोंको यह मनुष्य-शरीर आपने अत्यन्त कृपा करके दिया है। जो पुरुष इसे पाकर भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें नही करता और आपके चरणकमलोंका आश्रय नहीं लेता—उनका सेवन नहीं करता, उसका जीवन अत्यन्त शोचनीय है और वह स्वयं अपने-आपको धोखा दे रहा है ॥ ४१ ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं। जो मृत्युका ग्रास मनुष्य आपको छोड़ देता है और अनात्म, दुःखरूप एवं तुच्छ विषयोंमें सुखबुद्धि करके उनके पीछे भटकता है, वह इतना मूर्ख है कि अमृतको छोड़कर विष पी रहा है ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्मा, सारे देवता और विशुद्ध हृदयवाले ऋषि-मुनि सब प्रकारसे और सर्वात्मभावसे आपके शरणागत हैं; क्योंकि आप ही हमलोगोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं ॥ ४३ ॥ आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। आप सबमें सम, परम शान्त, सबके सुहृद्, आत्मा और इष्टदेव हैं। आप एक, अद्वितीय और जगत्के आधार तथा अधिष्ठान हैं। हे प्रभो ! हम सब संसारसे मुक्त होनेके लिये आपका भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ देव ! यह बाणासुर मेरा परमप्रिय, कृपापात्र और सेवक है। मैंने इसे अभयदान दिया है। प्रभो ! जिस प्रकार इसके परदादा दैत्यराज

प्रह्लादपर आपका कृपाप्रसाद है, वैसा ही कृपाप्रसाद आप इसपर भी करें॥ ४५॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! आपकी बात मानकर—जैसा आप चाहते हैं, मैं इसे निर्भय किये देता हूँ। आपने पहले इसके सम्बन्धमें जैसा निश्चय किया था—मैंने इसकी भुजाएँ काटकर उसीका अनुमोदन किया है॥ ४६॥ मैं जानता हूँ कि बाणासुर दैत्यराज बलिका पुत्र है। इसलिये मैं भी इसका वध नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दे दिया है कि मैं तुम्हारे वंशमें पैदा होनेवाले किसी भी दैत्यका वध नहीं करूँगा॥ ४७॥ इसका घमंड चूर करनेके लिये ही मैंने इसकी भुजाएँ काट दी हैं। इसकी बहुत बड़ी सेना पृथ्वीके लिये भार हो रही थी, इसीलिये मैंने उसका संहार कर दिया है॥ ४८॥ अब इसकी चार भुजाएँ बच रही हैं। ये अजर, अमर बनी रहेंगी। यह बाणासुर आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा। अब इसको किसीसे किसी प्रकारका भय नहीं है॥ ४९॥

श्रीकृष्णसे इस प्रकार अभयदान प्राप्त करके बाणासुरने उनके पास आकर धरतीमें माथा टेका, प्रणाम किया और अनिरुद्धजीको अपनी पुत्री ऊषाके साथ रथपर बैठाकर भगवान्‌के पास ले आया॥ ५०॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने महादेवजीकी सम्मतिसे वस्त्रालङ्कारविभूषित ऊषा और अनिरुद्धजीको एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आगे करके द्वारकाके लिये प्रस्थान किया॥ ५१॥ इधर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण आदिके शुभागमनका समाचार सुनकर झंडियों और तोरणोंसे नगरका कोना-कोना सजा दिया गया। बड़ी-बड़ी सड़कों और चौराहोंको चन्दन-मिश्रित जलसे सींच दिया गया। नगरके नागरिकों, बन्धु-बान्धवों और ब्राह्मणोंने आगे आकर खूब धूमधामसे भगवान्‌का स्वागत किया। उस समय शङ्ख, नगारों और ढोलोंकी तुमुल ध्वनि हो रही थी। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया॥ ५२॥

परीक्षित्! जो पुरुष श्रीशङ्करजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णका युद्ध और उनकी विजयकी कथाका प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, उसकी पराजय नहीं होती॥ ५३॥

चौंसठवाँ अध्याय

नृग राजाकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशी राजकुमार घूमनेके लिये उपवनमें गये॥ १॥ वहाँ बहुत देरतक खेल खेलते हुए उन्हें प्यास लग आयी। अब वे इधर-उधर जलकी खोज करने लगे। वे एक कूएँके पास गये; उसमें जल तो था नहीं, एक बड़ा विचित्र जीव दीख पड़ा॥ २॥ वह जीव पर्वतके समान आकारका एक गिरगिट था। उसे देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनका हृदय करुणासे भर आया और वे उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करने लगे॥ ३॥ परन्तु जब वे राजकुमार उस गिरे हुए गिरगिटको चमड़े और सूतकी रस्सियोंसे बाँधकर बाहर न निकाल सके, तब कुतूहलवश उन्होंने यह आश्चर्यमय वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया॥ ४॥ जगत्‌के जीवनदाता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण उस कूएँपर आये। उसे देखकर उन्होंने बायें हाथसे खेल-खेलमें—अनायास ही उसको बाहर निकाल लिया॥ ५॥ भगवान् श्रीकृष्णके करकमलोंका स्पर्श होते ही उसका गिरगिट-रूप जाता रहा और वह एक स्वर्गीय देवताके रूपमें परिणत हो गया। अब उसके शरीरका रंग तपाये हुए सोनेके समान चमक रहा था। और उसके शरीरपर अद्भुत वस्त्र, आभूषण और पुष्पोंके हार शोभा पा रहे थे॥ ६॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण जानते थे कि इस दिव्य पुरुषको गिरगिट-योनि क्यों मिली थी, फिर भी वह कारण सर्वसाधारणको मालूम हो जाय, इसलिये

७५० * श्रीमद्भागवत * [अ० ६४

प्रह्लादपर आपका कृपाप्रसाद है, वैसा ही कृपाप्रसाद आप इसपर भी करें॥ ४५॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! आपकी बात मानकर—जैसा आप चाहते हैं, मैं इसे निर्भय किये देता हूँ। आपने पहले इसके सम्बन्धमें जैसा निश्चय किया था—मैंने इसकी भुजाएँ काटकर उसीका अनुमोदन किया है॥ ४६॥ मैं जानता हूँ कि बाणासुर दैत्यराज बलिका पुत्र है। इसलिये मैं भी इसका वध नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दे दिया है कि मैं तुम्हारे वंशमें पैदा होनेवाले किसी भी दैत्यका वध नहीं करूँगा॥ ४७॥ इसका घमंड चूर करनेके लिये ही मैंने इसकी भुजाएँ काट दी हैं। इसकी बहुत बड़ी सेना पृथ्वीके लिये भार हो रही थी, इसीलिये मैंने उसका संहार कर दिया है॥ ४८॥ अब इसकी चार भुजाएँ बच रही हैं। ये अजर, अमर बनी रहेंगी। यह बाणासुर आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा। अब इसको किसीसे किसी प्रकारका भय नहीं है॥ ४९॥

श्रीकृष्णसे इस प्रकार अभयदान प्राप्त करके बाणासुरने उनके पास आकर धरतीमें माथा टेका, प्रणाम किया और अनिरुद्धजीको अपनी पुत्री ऊषाके साथ रथपर बैठाकर भगवान्‌के पास ले आया॥ ५०॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने महादेवजीकी सम्मतिसे वस्त्रालङ्कारविभूषित ऊषा और अनिरुद्धजीको एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आगे करके द्वारकाके लिये प्रस्थान किया॥ ५१॥ इधर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण आदिके शुभागमनका समाचार सुनकर झंडियों और तोरणोंसे नगरका कोना-कोना सजा दिया गया। बड़ी-बड़ी सड़कों और चौराहोंको चन्दन-मिश्रित जलसे सींच दिया गया। नगरके नागरिकों, बन्धु-बान्धवों और ब्राह्मणोंने आगे आकर खूब धूमधामसे भगवान्‌का स्वागत किया। उस समय शङ्ख, नगारों और ढोलोंकी तुमुल ध्वनि हो रही थी। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया॥ ५२॥

परीक्षित्! जो पुरुष श्रीशङ्करजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णका युद्ध और उनकी विजयकी कथाका प्रातःकाल उठकर स्मरण करता है, उसकी पराजय नहीं होती॥ ५३॥

चौंसठवाँ अध्याय

नृग राजाकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशी राजकुमार घूमनेके लिये उपवनमें गये॥ १॥ वहाँ बहुत देरतक खेल खेलते हुए उन्हें प्यास लग आयी। अब वे इधर-उधर जलकी खोज करने लगे। वे एक कूएँके पास गये; उसमें जल तो था नहीं, एक बड़ा विचित्र जीव दीख पड़ा॥ २॥ वह जीव पर्वतके समान आकारका एक गिरगिट था। उसे देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनका हृदय करुणासे भर आया और वे उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करने लगे॥ ३॥ परन्तु जब वे राजकुमार उस गिरे हुए गिरगिटको चमड़े और सूतकी रस्सियोंसे बाँधकर बाहर न निकाल सके, तब कुतूहलवश उन्होंने यह आश्चर्यमय वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया॥ ४॥ जगत्‌के जीवनदाता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण उस कूएँपर आये। उसे देखकर उन्होंने बायें हाथसे खेल-खेलमें—अनायास ही उसको बाहर निकाल लिया॥ ५॥ भगवान् श्रीकृष्णके करकमलोंका स्पर्श होते ही उसका गिरगिट-रूप जाता रहा और वह एक स्वर्गीय देवताके रूपमें परिणत हो गया। अब उसके शरीरका रंग तपाये हुए सोनेके समान चमक रहा था। और उसके शरीरपर अद्भुत वस्त्र, आभूषण और पुष्पोंके हार शोभा पा रहे थे॥ ६॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण जानते थे कि इस दिव्य पुरुषको गिरगिट-योनि क्यों मिली थी, फिर भी वह कारण सर्वसाधारणको मालूम हो जाय, इसलिये

उन्होंने उस दिव्य पुरुषसे पूछा—'महाभाग! तुम्हारा रूप तो बहुत ही सुन्दर है। तुम हो कौन? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हो॥ ७॥ कल्याणमूर्ते! किस कर्मके फलसे तुम्हें इस योनिमें आना पड़ा था? वास्तवमें तुम इसके योग्य नहीं हो। हमलोग तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं। यदि तुम हमलोगोंको वह बतलाना उचित समझो तो अपना परिचय अवश्य दो'॥ ८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने राजा नृगसे [क्योंकि वे ही इस रूपमें प्रकट हुए थे] इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अपना सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुट झुकाकर भगवान्‌को प्रणाम किया और वे इस प्रकार कहने लगे॥ ९॥

राजा नृगने कहा—प्रभो! मैं महाराज इक्ष्वाकुका पुत्र राजा नृग हूँ। जब कभी किसीने आपके सामने दानियोंकी गिनती की होगी, तब उसमें मेरा नाम भी अवश्य ही आपके कानोंमें पड़ा होगा॥ १०॥ प्रभो! आप समस्त प्राणियोंकी एक-एक वृत्तिके साक्षी हैं। भूत और भविष्यका व्यवधान भी आपके अखण्ड ज्ञानमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाल सकता। अतः आपसे छिपा ही क्या है? फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये कहता हूँ॥ ११॥ भगवन्! पृथ्वीमें जितने धूलिकण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और वर्षामें जितनी जलकी धाराएँ गिरती हैं, मैंने उतनी ही गौएँ दान की थीं॥ १२॥ वे सभी गौएँ दुधार, नौजवान, सीधी, सुन्दर, सुलक्षणा और कपिला थीं। उन्हें मैंने न्यायके धनसे प्राप्त किया था। सबके साथ बछड़े थे। उनके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था और खुरोंमें चाँदी। उन्हें वस्त्र, हार और गहनोंसे सजा दिया जाता था। ऐसी गौएँ मैंने दी थीं॥ १३॥ भगवन्! मैं युवावस्थासे सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणकुमारोंको—जो सद्गुणी, शीलसम्पन्न, कष्टमें पड़े हुए कुटुम्बवाले, दम्भरहित तपस्वी, वेदपाठी, शिष्योंको विद्यादान करनेवाले तथा सच्चरित्र होते—वस्त्राभूषणसे अलङ्कृत करता और उन गौओंका दान करता॥ १४॥ इस प्रकार मैंने बहुत-सी गौएँ, पृथ्वी, सोना, घर, घोड़े, हाथी, दासियोंके सहित कन्याएँ, तिलोंके पर्वत, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, गृह-सामग्री और रथ आदि दान किये। अनेकों यज्ञ किये और बहुत-से कूएँ, बावली आदि बनवाये॥ १५॥

एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेनेवाले), तपस्वी ब्राह्मणकी एक गाय बिछुड़कर मेरी गौओंमें आ मिली। मुझे इस बातका बिल्कुल पता न चला। इसलिये मैंने अनजानमें उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया॥ १६॥ जब उस गायको वे ब्राह्मण ले चले, तब उस गायके असली स्वामीने कहा—'यह गौ मेरी है।' दान ले जानेवाले ब्राह्मणने कहा—'यह तो मेरी है, क्योंकि राजा नृगने मुझे इसका दान किया है'॥ १७॥ वे दोनों ब्राह्मण आपसमें झगड़ते हुए अपनी-अपनी बात कायम करनेके लिये मेरे पास आये। एकने कहा—'यह गाय अभी-अभी आपने मुझे दी है' और दूसरेने कहा कि 'यदि ऐसी बात है तो तुमने मेरी गाय चुरा ली है।' भगवन्! उन दोनों ब्राह्मणोंकी बात सुनकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया॥ १८॥ मैंने धर्मसंकटमें पड़कर उन दोनोंसे बड़ी अनुनय-विनय की और कहा कि 'मैं बदलेमें एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा। आप लोग मुझे यह गाय दे दीजिये॥ १९॥ मैं आपलोगोंका सेवक हूँ। मुझसे अनजानमें यह अपराध बन गया है। मुझपर आपलोग कृपा कीजिये और मुझे इस घोर कष्टसे तथा घोर नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये'॥ २०॥ 'राजन्! मैं इसके बदलेमें कुछ नहीं लूँगा।' यह कहकर गायका स्वामी चला गया। 'तुम इसके बदलेमें एक लाख ही नहीं, दस हजार गौएँ और दो तो भी मैं लेनेका नहीं।' इस प्रकार कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया॥ २१॥ देवाधिदेव जगदीश्वर! इसके बाद आयु समाप्त होनेपर यमराजके दूत आये और मुझे यमपुरी ले गये। वहाँ यमराजने मुझसे पूछा—॥ २२॥ 'राजन्! तुम पहले अपने पापका फल भोगना चाहते हो या पुण्यका? तुम्हारे दान और धर्मके फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होनेवाला है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है'॥ २३॥ भगवन्! तब मैंने यमराजसे कहा—'देव! पहले मैं अपने पापका फल भोगना चाहता हूँ।' और उसी क्षण यमराजने कहा—'तुम गिर जाओ।' उनके ऐसा कहते ही मैं वहाँसे गिरा और गिरते ही समय मैंने

अ० ६४] * दशम स्कन्ध * ७५१

उन्होंने उस दिव्य पुरुषसे पूछा—'महाभाग! तुम्हारा रूप तो बहुत ही सुन्दर है। तुम हो कौन? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हो॥ ७॥ कल्याणमूर्ते! किस कर्मके फलसे तुम्हें इस योनिमें आना पड़ा था? वास्तवमें तुम इसके योग्य नहीं हो। हमलोग तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं। यदि तुम हमलोगोंको वह बतलाना उचित समझो तो अपना परिचय अवश्य दो'॥ ८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने राजा नृगसे [क्योंकि वे ही इस रूपमें प्रकट हुए थे] इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अपना सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुट झुकाकर भगवान्‌को प्रणाम किया और वे इस प्रकार कहने लगे॥ ९॥

राजा नृगने कहा—प्रभो! मैं महाराज इक्ष्वाकुका पुत्र राजा नृग हूँ। जब कभी किसीने आपके सामने दानियोंकी गिनती की होगी, तब उसमें मेरा नाम भी अवश्य ही आपके कानोंमें पड़ा होगा॥ १०॥ प्रभो! आप समस्त प्राणियोंकी एक-एक वृत्तिके साक्षी हैं। भूत और भविष्यका व्यवधान भी आपके अखण्ड ज्ञानमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाल सकता। अतः आपसे छिपा ही क्या है? फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये कहता हूँ॥ ११॥ भगवन्! पृथ्वीमें जितने धूलिकण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और वर्षामें जितनी जलकी धाराएँ गिरती हैं, मैंने उतनी ही गौएँ दान की थीं॥ १२॥ वे सभी गौएँ दुधार, नौजवान, सीधी, सुन्दर, सुलक्षणा और कपिला थीं। उन्हें मैंने न्यायके धनसे प्राप्त किया था। सबके साथ बछड़े थे। उनके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था और खुरोंमें चाँदी। उन्हें वस्त्र, हार और गहनोंसे सजा दिया जाता था। ऐसी गौएँ मैंने दी थीं॥ १३॥ भगवन्! मैं युवावस्थासे सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणकुमारोंको—जो सद्गुणी, शीलसम्पन्न, कष्टमें पड़े हुए कुटुम्बवाले, दम्भरहित तपस्वी, वेदपाठी, शिष्योंको विद्यादान करनेवाले तथा सच्चरित्र होते—वस्त्राभूषणसे अलङ्कृत करता और उन गौओंका दान करता॥ १४॥ इस प्रकार मैंने बहुत-सी गौएँ, पृथ्वी, सोना, घर, घोड़े, हाथी, दासियोंके सहित कन्याएँ, तिलोंके पर्वत, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, गृह-सामग्री और रथ आदि दान किये। अनेकों यज्ञ किये और बहुत-से कूएँ, बावली आदि बनवाये॥ १५॥

एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेनेवाले), तपस्वी ब्राह्मणकी एक गाय बिछुड़कर मेरी गौओंमें आ मिली। मुझे इस बातका बिल्कुल पता न चला। इसलिये मैंने अनजानमें उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया॥ १६॥ जब उस गायको वे ब्राह्मण ले चले, तब उस गायके असली स्वामीने कहा—'यह गौ मेरी है।' दान ले जानेवाले ब्राह्मणने कहा—'यह तो मेरी है, क्योंकि राजा नृगने मुझे इसका दान किया है'॥ १७॥ वे दोनों ब्राह्मण आपसमें झगड़ते हुए अपनी-अपनी बात कायम करनेके लिये मेरे पास आये। एकने कहा—'यह गाय अभी-अभी आपने मुझे दी है' और दूसरेने कहा कि 'यदि ऐसी बात है तो तुमने मेरी गाय चुरा ली है।' भगवन्! उन दोनों ब्राह्मणोंकी बात सुनकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया॥ १८॥ मैंने धर्मसंकटमें पड़कर उन दोनोंसे बड़ी अनुनय-विनय की और कहा कि 'मैं बदलेमें एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा। आप लोग मुझे यह गाय दे दीजिये॥ १९॥ मैं आपलोगोंका सेवक हूँ। मुझसे अनजानमें यह अपराध बन गया है। मुझपर आपलोग कृपा कीजिये और मुझे इस घोर कष्टसे तथा घोर नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये'॥ २०॥ 'राजन्! मैं इसके बदलेमें कुछ नहीं लूँगा।' यह कहकर गायका स्वामी चला गया। 'तुम इसके बदलेमें एक लाख ही नहीं, दस हजार गौएँ और दो तो भी मैं लेनेका नहीं।' इस प्रकार कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया॥ २१॥ देवाधिदेव जगदीश्वर! इसके बाद आयु समाप्त होनेपर यमराजके दूत आये और मुझे यमपुरी ले गये। वहाँ यमराजने मुझसे पूछा—॥ २२॥ 'राजन्! तुम पहले अपने पापका फल भोगना चाहते हो या पुण्यका? तुम्हारे दान और धर्मके फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होनेवाला है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है'॥ २३॥ भगवन्! तब मैंने यमराजसे कहा—'देव! पहले मैं अपने पापका फल भोगना चाहता हूँ।' और उसी क्षण यमराजने कहा—'तुम गिर जाओ।' उनके ऐसा कहते ही मैं वहाँसे गिरा और गिरते ही समय मैंने

देखा कि मैं गिरगिट हो गया हूँ॥ २४॥ प्रभो! मैं ब्राह्मणोंका सेवक, उदार, दानी और आपका भक्त था। मुझे इस बातकी उत्कट अभिलाषा थी कि किसी प्रकार आपके दर्शन हो जायँ। इस प्रकार आपकी कृपासे मेरे पूर्वजन्मोंकी स्मृति नष्ट न हुई॥ २५॥ भगवन्! आप परमात्मा हैं। बड़े-बड़े शुद्ध-हृदय योगीश्वर उपनिषदोंकी दृष्टिसे (अभेददृष्टिसे) अपने हृदयमें आपका ध्यान करते रहते हैं। इन्द्रियातीत परमात्मन्! साक्षात् आप मेरे नेत्रोंके सामने कैसे आ गये! क्योंकि मैं तो अनेक प्रकारके व्यसनों, दुःखद कर्मोंमें फँसकर अंधा हो रहा था। आपका दर्शन तो तब होता है, जब संसारके चक्करसे छुटकारा मिलनेका समय आता है॥ २६॥ देवताओंके भी आराध्यदेव! पुरुषोत्तम गोविन्द! आप ही व्यक्त और अव्यक्त जगत् तथा जीवोंके स्वामी हैं। अविनाशी अच्युत! आपकी कीर्ति पवित्र है। अन्तर्यामी नारायण! आप ही समस्त वृत्तियों और इन्द्रियोंके स्वामी हैं॥ २७॥ प्रभो! श्रीकृष्ण! मैं अब देवताओंके लोकमें जा रहा हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरा चित्त सदा आपके चरणकमलोंमें ही लगा रहे॥ २८॥ आप समस्त कार्यों और कारणोंके रूपमें विद्यमान हैं। आपकी शक्ति अनन्त है और आप स्वयं ब्रह्म हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी वासुदेव श्रीकृष्ण! आप समस्त योगोंके स्वामी, योगेश्वर हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ॥ २९॥

राजा नृगने इस प्रकार कहकर भगवान्‌की परिक्रमा की और अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर सबके देखते-देखते ही वे श्रेष्ठ विमानपर सवार हो गये॥ ३०॥

राजा नृगके चले जानेपर ब्राह्मणोंके परम प्रेमी, धर्मके आधार देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने क्षत्रियोंको शिक्षा देनेके लिये वहाँ उपस्थित अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा—॥ ३१॥ 'जो लोग अग्निके समान तेजस्वी हैं, वे भी ब्राह्मणोंका थोड़े-से-थोड़ा धन हड़पकर नहीं पचा सकते। फिर जो अभिमानवश झूठमूठ अपनेको लोगोंका स्वामी समझते हैं, वे राजा तो क्या पचा सकते हैं?॥ ३२॥ मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है। वस्तुतः ब्राह्मणोंका धन ही परम विष है; उसको पचा लेनेके लिये पृथ्वीमें कोई औषध, कोई उपाय नहीं है॥ ३३॥ हलाहल विष केवल खानेवालेका ही प्राण लेता है, और आग भी जलके द्वारा बुझायी जा सकती है; परन्तु ब्राह्मणके धनरूप अरणिसे जो आग पैदा होती है, वह सारे कुलको समूल जला डालती है॥ ३४॥ ब्राह्मणका धन यदि उसकी पूरी-पूरी सम्मति लिये बिना भोगा जाय तब तो वह भोगनेवाले, उसके लड़के और पौत्र—इन तीन पीढ़ियोंको ही चौपट करता है। परन्तु यदि बलपूर्वक हठ करके उसका उपभोग किया जाय, तब तो पूर्वपुरुषोंकी दस पीढ़ियाँ और आगेकी भी दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं॥ ३५॥ जो मूर्ख राजा अपनी राजलक्ष्मीके घमंडसे अंधे होकर ब्राह्मणोंका धन हड़पना चाहते हैं, समझना चाहिये कि वे जान-बूझकर नरकमें जानेका रास्ता साफ कर रहे हैं। वे देखते नहीं कि उन्हें अधःपतनके कैसे गहरे गड्ढेमें गिरना पड़ेगा॥ ३६॥ जिन उदारहृदय और बहुकुटुम्बी ब्राह्मणोंकी वृत्ति छीन ली जाती है, उनके रोनेपर उनके आँसूकी बूँदोंसे धरतीके जितने धूलिकण भीगते हैं, उतने वर्षोंतक ब्राह्मणके स्वत्वको छीननेवाले उस उच्छृङ्खल राजा और उसके वंशजोंको कुम्भीपाक नरकमें दुःख भोगना पड़ता है॥ ३७-३८॥ जो मनुष्य अपनी या दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणोंकी वृत्ति, उनकी जीविकाके साधन छीन लेते हैं, वे साठ हजार वर्षतक विष्ठाके कीड़े होते हैं॥ ३९॥ इसलिये मैं तो यही चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंका धन कभी भूलसे भी मेरे कोषमें न आये, क्योंकि जो लोग ब्राह्मणोंके धनकी इच्छा भी करते हैं—उसे छीननेकी बात तो अलग रही—वे इस जन्ममें अल्पायु, शत्रुओंसे पराजित और राज्यभ्रष्ट हो जाते हैं और मृत्युके बाद भी वे दूसरोंको कष्ट देनेवाले साँप ही होते हैं॥ ४०॥ इसलिये मेरे आत्मीयो! यदि ब्राह्मण अपराध करे, तो भी उससे द्वेष मत करो। वह मार ही क्यों न बैठे या बहुत-सी गालियाँ या शाप ही क्यों न दे, उसे तुमलोग सदा नमस्कार ही करो॥ ४१॥ जिस प्रकार मैं बड़ी

७५२ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६४

देखा कि मैं गिरगिट हो गया हूँ॥ २४॥ प्रभो! मैं ब्राह्मणोंका सेवक, उदार, दानी और आपका भक्त था। मुझे इस बातकी उत्कट अभिलाषा थी कि किसी प्रकार आपके दर्शन हो जायँ। इस प्रकार आपकी कृपासे मेरे पूर्वजन्मोंकी स्मृति नष्ट न हुई॥ २५॥ भगवन्! आप परमात्मा हैं। बड़े-बड़े शुद्ध-हृदय योगीश्वर उपनिषदोंकी दृष्टिसे (अभेददृष्टिसे) अपने हृदयमें आपका ध्यान करते रहते हैं। इन्द्रियातीत परमात्मन्! साक्षात् आप मेरे नेत्रोंके सामने कैसे आ गये! क्योंकि मैं तो अनेक प्रकारके व्यसनों, दुःखद कर्मोंमें फँसकर अंधा हो रहा था। आपका दर्शन तो तब होता है, जब संसारके चक्करसे छुटकारा मिलनेका समय आता है॥ २६॥ देवताओंके भी आराध्यदेव! पुरुषोत्तम गोविन्द! आप ही व्यक्त और अव्यक्त जगत् तथा जीवोंके स्वामी हैं। अविनाशी अच्युत! आपकी कीर्ति पवित्र है। अन्तर्यामी नारायण! आप ही समस्त वृत्तियों और इन्द्रियोंके स्वामी हैं॥ २७॥ प्रभो! श्रीकृष्ण! मैं अब देवताओंके लोकमें जा रहा हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरा चित्त सदा आपके चरणकमलोंमें ही लगा रहे॥ २८॥ आप समस्त कार्यों और कारणोंके रूपमें विद्यमान हैं। आपकी शक्ति अनन्त है और आप स्वयं ब्रह्म हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी वासुदेव श्रीकृष्ण! आप समस्त योगोंके स्वामी, योगेश्वर हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ॥ २९॥

राजा नृगने इस प्रकार कहकर भगवान्‌की परिक्रमा की और अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर सबके देखते-देखते ही वे श्रेष्ठ विमानपर सवार हो गये॥ ३०॥

राजा नृगके चले जानेपर ब्राह्मणोंके परम प्रेमी, धर्मके आधार देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने क्षत्रियोंको शिक्षा देनेके लिये वहाँ उपस्थित अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा—॥ ३१॥ 'जो लोग अग्निके समान तेजस्वी हैं, वे भी ब्राह्मणोंका थोड़े-से-थोड़ा धन हड़पकर नहीं पचा सकते। फिर जो अभिमानवश झूठमूठ अपनेको लोगोंका स्वामी समझते हैं, वे राजा तो क्या पचा सकते हैं?॥ ३२॥ मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है। वस्तुतः ब्राह्मणोंका धन ही परम विष है; उसको पचा लेनेके लिये पृथ्वीमें कोई औषध, कोई उपाय नहीं है॥ ३३॥ हलाहल विष केवल खानेवालेका ही प्राण लेता है, और आग भी जलके द्वारा बुझायी जा सकती है; परन्तु ब्राह्मणके धनरूप अरणिसे जो आग पैदा होती है, वह सारे कुलको समूल जला डालती है॥ ३४॥ ब्राह्मणका धन यदि उसकी पूरी-पूरी सम्मति लिये बिना भोगा जाय तब तो वह भोगनेवाले, उसके लड़के और पौत्र—इन तीन पीढ़ियोंको ही चौपट करता है। परन्तु यदि बलपूर्वक हठ करके उसका उपभोग किया जाय, तब तो पूर्वपुरुषोंकी दस पीढ़ियाँ और आगेकी भी दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं॥ ३५॥ जो मूर्ख राजा अपनी राजलक्ष्मीके घमंडसे अंधे होकर ब्राह्मणोंका धन हड़पना चाहते हैं, समझना चाहिये कि वे जान-बूझकर नरकमें जानेका रास्ता साफ कर रहे हैं। वे देखते नहीं कि उन्हें अधःपतनके कैसे गहरे गड्ढेमें गिरना पड़ेगा॥ ३६॥ जिन उदारहृदय और बहुकुटुम्बी ब्राह्मणोंकी वृत्ति छीन ली जाती है, उनके रोनेपर उनके आँसूकी बूँदोंसे धरतीके जितने धूलिकण भीगते हैं, उतने वर्षोंतक ब्राह्मणके स्वत्वको छीननेवाले उस उच्छृङ्खल राजा और उसके वंशजोंको कुम्भीपाक नरकमें दुःख भोगना पड़ता है॥ ३७-३८॥ जो मनुष्य अपनी या दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणोंकी वृत्ति, उनकी जीविकाके साधन छीन लेते हैं, वे साठ हजार वर्षतक विष्ठाके कीड़े होते हैं॥ ३९॥ इसलिये मैं तो यही चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंका धन कभी भूलसे भी मेरे कोषमें न आये, क्योंकि जो लोग ब्राह्मणोंके धनकी इच्छा भी करते हैं—उसे छीननेकी बात तो अलग रही—वे इस जन्ममें अल्पायु, शत्रुओंसे पराजित और राज्यभ्रष्ट हो जाते हैं और मृत्युके बाद भी वे दूसरोंको कष्ट देनेवाले साँप ही होते हैं॥ ४०॥ इसलिये मेरे आत्मीयो! यदि ब्राह्मण अपराध करे, तो भी उससे द्वेष मत करो। वह मार ही क्यों न बैठे या बहुत-सी गालियाँ या शाप ही क्यों न दे, उसे तुमलोग सदा नमस्कार ही करो॥ ४१॥ जिस प्रकार मैं बड़ी

सावधानीसे तीनों समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुमलोग भी किया करो। जो मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, उसे मैं क्षमा नहीं करूँगा, दण्ड दूँगा॥ ४२॥ यदि ब्राह्मणके धनका अपहरण हो जाय तो वह अपहृत धन उस अपहरण करनेवालेको—अनजानमें उसके द्वारा यह अपराध हुआ हो तो भी—अधःपतनके गड्ढेमें डाल देता है। जैसे ब्राह्मणकी गायने अनजानमें उसे लेनेवाले राजा नृगको नरकमें डाल दिया था॥ ४३॥ परीक्षित्! समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने महलमें चले गये॥ ४४॥

पैंसठवाँ अध्याय

श्रीबलरामजीका व्रजगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् बलरामजीके मनमें व्रजके नन्दबाबा आदि स्वजन-सम्बन्धियोंसे मिलनेकी बड़ी इच्छा और उत्कण्ठा थी। अब वे रथपर सवार होकर द्वारकासे नन्दबाबाके व्रजमें आये॥ १॥ इधर उनके लिये व्रजवासी गोप और गोपियाँ भी बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित थीं। उन्हें अपने बीचमें पाकर सबने बड़े प्रेमसे गले लगाया। बलरामजीने माता यशोदा और नन्दबाबाको प्रणाम किया। उन लोगोंने भी आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया॥ २॥ यह कहकर कि 'बलरामजी! तुम जगदीश्वर हो, अपने छोटे भाई श्रीकृष्णके साथ सर्वदा हमारी रक्षा करते रहो, उनको गोदमें ले लिया और अपने प्रेमाश्रुओंसे उन्हें भिगो दिया॥ ३॥ इसके बाद बड़े-बड़े गोपोंको बलरामजीने और छोटे-छोटे गोपोंने बलरामजीको नमस्कार किया। वे अपनी आयु, मेल-जोल और सम्बन्धके अनुसार सबसे मिले-जुले॥ ४॥ ग्वालबालोंके पास जाकर किसीसे हाथ मिलाया, किसीसे मीठी-मीठी बातें कीं, किसीको खूब हँस-हँसकर गले लगाया। इसके बाद जब बलरामजीकी थकावट दूर हो गयी, वे आरामसे बैठ गये, तब सब ग्वाल उनके पास आये। इन ग्वालोंने कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके लिये समस्त भोग, स्वर्ग और मोक्षतक त्याग रखा था। बलरामजीने जब उनके और उनके घरवालोंके सम्बन्धमें कुशलप्रश्न किया, तब उन्होंने प्रेम-गद्गद वाणीसे उनसे प्रश्न किया॥ ५-६॥ 'बलरामजी! वसुदेवजी आदि हमारे सब भाई-बन्धु सकुशल हैं न? अब आपलोग स्त्री-पुत्र आदिके साथ रहते हैं, बाल-बच्चेदार हो गये हैं; क्या कभी आपलोगोंको हमारी याद भी आती है?॥ ७॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि पापी कंसको आपलोगोंने मार डाला और अपने सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़े कष्टसे बचा लिया। यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि आपलोगोंने और भी बहुतसे शत्रुओंको मार डाला या जीत लिया और अब अत्यन्त सुरक्षित दुर्ग (किले) में आपलोग निवास करते हैं'॥ ८॥

परीक्षित्! भगवान् बलरामजीके दर्शनसे, उनकी प्रेमभरी चितवनसे गोपियाँ निहाल हो गयीं। उन्होंने हँसकर पूछा—'क्यों बलरामजी! नगर-नारियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण अब सकुशल तो हैं न?॥ ९॥ क्या कभी उन्हें अपने भाई-बन्धु और पिता-माताकी भी याद आती है? क्या वे अपनी माताके दर्शनके लिये एक बार भी यहाँ आ सकेंगे? क्या महाबाहु श्रीकृष्ण कभी हमलोगोंकी सेवाका भी कुछ स्मरण करते हैं?॥ १०॥ आप जानते हैं कि स्वजन-सम्बन्धियोंको छोड़ना बहुत ही कठिन है, फिर भी हमने उनके लिये माँ-बाप, भाई-बन्धु, पति-पुत्र और बहिन-बेटियोंको भी छोड़ दिया। परन्तु प्रभो! वे बात-की-बातमें हमारे सौहार्द और प्रेमका बन्धन काटकर, हमसे नाता तोड़कर परदेश चले गये; हमलोगोंको बिल्कुल ही छोड़ दिया। हम चाहतीं तो उन्हें रोक लेतीं; परन्तु जब वे कहते कि हम तुम्हारे ऋणी हैं—तुम्हारे

अ० ६५] * दशम स्कन्ध * ७५३

सावधानीसे तीनों समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुमलोग भी किया करो। जो मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, उसे मैं क्षमा नहीं करूँगा, दण्ड दूँगा॥ ४२॥ यदि ब्राह्मणके धनका अपहरण हो जाय तो वह अपहृत धन उस अपहरण करनेवालेको—अनजानमें उसके द्वारा यह अपराध हुआ हो तो भी—अधःपतनके गड्ढेमें डाल देता है। जैसे ब्राह्मणकी गायने अनजानमें उसे लेनेवाले राजा नृगको नरकमें डाल दिया था॥ ४३॥ परीक्षित्! समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने महलमें चले गये॥ ४४॥

पैंसठवाँ अध्याय

श्रीबलरामजीका व्रजगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् बलरामजीके मनमें व्रजके नन्दबाबा आदि स्वजन-सम्बन्धियोंसे मिलनेकी बड़ी इच्छा और उत्कण्ठा थी। अब वे रथपर सवार होकर द्वारकासे नन्दबाबाके व्रजमें आये॥ १॥ इधर उनके लिये व्रजवासी गोप और गोपियाँ भी बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित थीं। उन्हें अपने बीचमें पाकर सबने बड़े प्रेमसे गले लगाया। बलरामजीने माता यशोदा और नन्दबाबाको प्रणाम किया। उन लोगोंने भी आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया॥ २॥ यह कहकर कि 'बलरामजी! तुम जगदीश्वर हो, अपने छोटे भाई श्रीकृष्णके साथ सर्वदा हमारी रक्षा करते रहो, उनको गोदमें ले लिया और अपने प्रेमाश्रुओंसे उन्हें भिगो दिया॥ ३॥ इसके बाद बड़े-बड़े गोपोंको बलरामजीने और छोटे-छोटे गोपोंने बलरामजीको नमस्कार किया। वे अपनी आयु, मेल-जोल और सम्बन्धके अनुसार सबसे मिले-जुले॥ ४॥ ग्वालबालोंके पास जाकर किसीसे हाथ मिलाया, किसीसे मीठी-मीठी बातें कीं, किसीको खूब हँस-हँसकर गले लगाया। इसके बाद जब बलरामजीकी थकावट दूर हो गयी, वे आरामसे बैठ गये, तब सब ग्वाल उनके पास आये। इन ग्वालोंने कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके लिये समस्त भोग, स्वर्ग और मोक्षतक त्याग रखा था। बलरामजीने जब उनके और उनके घरवालोंके सम्बन्धमें कुशलप्रश्न किया, तब उन्होंने प्रेम-गद्गद वाणीसे उनसे प्रश्न किया॥ ५-६॥ 'बलरामजी! वसुदेवजी आदि हमारे सब भाई-बन्धु सकुशल हैं न? अब आपलोग स्त्री-पुत्र आदिके साथ रहते हैं, बाल-बच्चेदार हो गये हैं; क्या कभी आपलोगोंको हमारी याद भी आती है?॥ ७॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि पापी कंसको आपलोगोंने मार डाला और अपने सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़े कष्टसे बचा लिया। यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि आपलोगोंने और भी बहुतसे शत्रुओंको मार डाला या जीत लिया और अब अत्यन्त सुरक्षित दुर्ग (किले) में आपलोग निवास करते हैं'॥ ८॥

परीक्षित्! भगवान् बलरामजीके दर्शनसे, उनकी प्रेमभरी चितवनसे गोपियाँ निहाल हो गयीं। उन्होंने हँसकर पूछा—'क्यों बलरामजी! नगर-नारियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण अब सकुशल तो हैं न?॥ ९॥ क्या कभी उन्हें अपने भाई-बन्धु और पिता-माताकी भी याद आती है? क्या वे अपनी माताके दर्शनके लिये एक बार भी यहाँ आ सकेंगे? क्या महाबाहु श्रीकृष्ण कभी हमलोगोंकी सेवाका भी कुछ स्मरण करते हैं?॥ १०॥ आप जानते हैं कि स्वजन-सम्बन्धियोंको छोड़ना बहुत ही कठिन है, फिर भी हमने उनके लिये माँ-बाप, भाई-बन्धु, पति-पुत्र और बहिन-बेटियोंको भी छोड़ दिया। परन्तु प्रभो! वे बात-की-बातमें हमारे सौहार्द और प्रेमका बन्धन काटकर, हमसे नाता तोड़कर परदेश चले गये; हमलोगोंको बिल्कुल ही छोड़ दिया। हम चाहतीं तो उन्हें रोक लेतीं; परन्तु जब वे कहते कि हम तुम्हारे ऋणी हैं—तुम्हारे

उपकारका बदला कभी नहीं चुका सकते, तब ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो उनकी मीठी-मीठी बातोंपर विश्वास न कर लेती'॥ ११-१२॥ एक गोपीने कहा—'बलरामजी! हम तो गाँवकी गँवार ग्वालिनें ठहरीं, उनकी बातोंमें आ गयीं। परन्तु नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी चतुर होती हैं। भला, वे चञ्चल और कृतघ्न श्रीकृष्णकी बातोंमें क्यों फँसने लगीं; उन्हें तो वे नहीं छका पाते होंगे!' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी, श्रीकृष्ण बातें बनानेमें तो एक ही हैं। ऐसी रंग-बिरंगी मीठी-मीठी बातें गढ़ते हैं कि क्या कहना! उनकी सुन्दर मुसकराहट और प्रेमभरी चितवनसे नगर-नारियाँ भी प्रेमावेशसे व्याकुल हो जाती होंगी और वे अवश्य उनकी बातोंमें आकर अपनेको निछावर कर देती होंगी'॥ १३॥ तीसरी गोपीने कहा—'अरी गोपियो! हमलोगोंको उसकी बातसे क्या मतलब है? यदि समय ही काटना है तो कोई दूसरी बात करो। यदि उस निष्ठुरका समय हमारे बिना बीत जाता है तो हमारा भी उसीकी तरह, भले ही दुःखसे क्यों न हो, कट ही जायगा'॥ १४॥ अब गोपियोंके भाव-नेत्रोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णकी हँसी, प्रेमभरी बातें, चारु चितवन, अनूठी चाल और प्रेमालिङ्गन आदि मूर्तिमान् होकर नाचने लगे। वे उन बातोंकी मधुर स्मृतिमें तन्मय होकर रोने लगीं॥ १५॥

परीक्षित्! भगवान् बलरामजी नाना प्रकारसे अनुनय-विनय करनेमें बड़े निपुण थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयस्पर्शी और लुभावने सन्देश सुना-सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी॥ १६॥ और वसन्तके दो महीने—चैत्र और वैशाख वहीं बिताये। वे रात्रिके समय गोपियोंमें रहकर उनके प्रेमकी अभिवृद्धि करते। क्यों न हो, भगवान् राम ही जो ठहरे!॥ १७॥ उस समय कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर भीनी-भीनी वायु चलती रहती, पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी छिटककर यमुनाजीके तटवर्ती उपवनको उज्ज्वल कर देती और भगवान् बलराम गोपियोंके साथ वहीं विहार करते॥ १८॥ वरुणदेवने अपनी पुत्री वारुणीदेवीको वहाँ भेज दिया था। वह एक वृक्षके खोड़रसे बह निकली। उसने अपनी सुगन्धसे सारे वनको सुगन्धित कर दिया॥ १९॥ मधुधाराकी वह सुगन्ध वायुने बलरामजीके पास पहुँचायी, मानो उसने उन्हें उपहार दिया हो! उसकी महँकसे आकृष्ट होकर बलरामजी गोपियोंको लेकर वहाँ पहुँच गये और उनके साथ उसका पान किया॥ २०॥ उस समय गोपियाँ बलरामजीके चारों ओर उनके चरित्रका गान कर रही थीं, और वे मतवाले-से होकर वनमें विचर रहे थे। उनके नेत्र आनन्दमदसे विह्वल हो रहे थे॥ २१॥ गलेमें पुष्पोंका हार शोभा पा रहा था। वैजयन्तीकी माला पहने हुए आनन्दोन्मत्त हो रहे थे। उनके एक कानमें कुण्डल झलक रहा था। मुखारविन्दपर मुसकराहटकी शोभा निराली ही थी। उसपर पसीनेकी बूँदें हिमकणके समान जान पड़ती थीं॥ २२॥ सर्वशक्तिमान् बलरामजीने जलक्रीडा करनेके लिये यमुनाजीको पुकारा; परन्तु यमुनाजीने यह समझकर कि ये तो मतवाले हो रहे हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया; वे नहीं आयीं। तब बलरामजीने क्रोधपूर्वक अपने हलकी नोकसे उन्हें खींचा॥ २३॥ और कहा 'पापिनी यमुने! मेरे बुलानेपर भी तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके यहाँ नहीं आ रही है, मेरा तिरस्कार कर रही है! देख, अब मैं तुझे तेरे स्वेच्छाचारका फल चखाता हूँ। अभी-अभी तुझे हलकी नोकसे सौ-सौ टुकड़े किये देता हूँ'॥ २४॥ जब बलरामजीने यमुनाजीको इस प्रकार डाँटा-फटकारा, तब वे चकित और भयभीत होकर बलरामजीके चरणोंपर गिर पड़ीं और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगीं—॥ २५॥ 'लोकाभिराम बलरामजी! महाबाहो! मैं आपका पराक्रम भूल गयी थी। जगत्पते! अब मैं जान गयी कि आपके अंशमात्र शेषजी इस सारे जगत्को धारण करते हैं॥ २६॥ भगवन्! आप परम ऐश्वर्यशाली हैं। आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण ही मुझसे यह अपराध बन गया है। सर्वस्वरूप भक्तवत्सल! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी भूल-चूक क्षमा कीजिये, मुझे छोड़ दीजिये'॥ २७॥

अब यमुनाजीकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान्

७५४ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६५
उपकारका बदला कभी नहीं चुका सकते, तब ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो उनकी मीठी-मीठी बातोंपर विश्वास न कर लेती'॥ ११-१२॥ एक गोपीने कहा—'बलरामजी! हम तो गाँवकी गँवार ग्वालिनें ठहरीं, उनकी बातोंमें आ गयीं। परन्तु नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी चतुर होती हैं। भला, वे चञ्चल और कृतघ्न श्रीकृष्णकी बातोंमें क्यों फँसने लगीं; उन्हें तो वे नहीं छका पाते होंगे!' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी, श्रीकृष्ण बातें बनानेमें तो एक ही हैं। ऐसी रंग-बिरंगी मीठी-मीठी बातें गढ़ते हैं कि क्या कहना! उनकी सुन्दर मुसकराहट और प्रेमभरी चितवनसे नगर-नारियाँ भी प्रेमावेशसे व्याकुल हो जाती होंगी और वे अवश्य उनकी बातोंमें आकर अपनेको निछावर कर देती होंगी'॥ १३॥ तीसरी गोपीने कहा—'अरी गोपियो! हमलोगोंको उसकी बातसे क्या मतलब है? यदि समय ही काटना है तो कोई दूसरी बात करो। यदि उस निष्ठुरका समय हमारे बिना बीत जाता है तो हमारा भी उसीकी तरह, भले ही दुःखसे क्यों न हो, कट ही जायगा'॥ १४॥ अब गोपियोंके भाव-नेत्रोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णकी हँसी, प्रेमभरी बातें, चारु चितवन, अनूठी चाल और प्रेमालिङ्गन आदि मूर्तिमान् होकर नाचने लगे। वे उन बातोंकी मधुर स्मृतिमें तन्मय होकर रोने लगीं॥ १५॥

परीक्षित्! भगवान् बलरामजी नाना प्रकारसे अनुनय-विनय करनेमें बड़े निपुण थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयस्पर्शी और लुभावने सन्देश सुना-सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी॥ १६॥ और वसन्तके दो महीने—चैत्र और वैशाख वहीं बिताये। वे रात्रिके समय गोपियोंमें रहकर उनके प्रेमकी अभिवृद्धि करते। क्यों न हो, भगवान् राम ही जो ठहरे!॥ १७॥ उस समय कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर भीनी-भीनी वायु चलती रहती, पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी छिटककर यमुनाजीके तटवर्ती उपवनको उज्ज्वल कर देती और भगवान् बलराम गोपियोंके साथ वहीं विहार करते॥ १८॥ वरुणदेवने अपनी पुत्री वारुणीदेवीको वहाँ भेज दिया था। वह एक वृक्षके खोड़रसे बह निकली। उसने अपनी सुगन्धसे सारे वनको सुगन्धित कर दिया॥ १९॥ मधुधाराकी वह सुगन्ध वायुने बलरामजीके पास पहुँचायी, मानो उसने उन्हें उपहार दिया हो! उसकी महँकसे आकृष्ट होकर बलरामजी गोपियोंको लेकर वहाँ पहुँच गये और उनके साथ उसका पान किया॥ २०॥ उस समय गोपियाँ बलरामजीके चारों ओर उनके चरित्रका गान कर रही थीं, और वे मतवाले-से होकर वनमें विचर रहे थे। उनके नेत्र आनन्दमदसे विह्वल हो रहे थे॥ २१॥ गलेमें पुष्पोंका हार शोभा पा रहा था। वैजयन्तीकी माला पहने हुए आनन्दोन्मत्त हो रहे थे। उनके एक कानमें कुण्डल झलक रहा था। मुखारविन्दपर मुसकराहटकी शोभा निराली ही थी। उसपर पसीनेकी बूँदें हिमकणके समान जान पड़ती थीं॥ २२॥ सर्वशक्तिमान् बलरामजीने जलक्रीडा करनेके लिये यमुनाजीको पुकारा; परन्तु यमुनाजीने यह समझकर कि ये तो मतवाले हो रहे हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया; वे नहीं आयीं। तब बलरामजीने क्रोधपूर्वक अपने हलकी नोकसे उन्हें खींचा॥ २३॥ और कहा 'पापिनी यमुने! मेरे बुलानेपर भी तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके यहाँ नहीं आ रही है, मेरा तिरस्कार कर रही है! देख, अब मैं तुझे तेरे स्वेच्छाचारका फल चखाता हूँ। अभी-अभी तुझे हलकी नोकसे सौ-सौ टुकड़े किये देता हूँ'॥ २४॥ जब बलरामजीने यमुनाजीको इस प्रकार डाँटा-फटकारा, तब वे चकित और भयभीत होकर बलरामजीके चरणोंपर गिर पड़ीं और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगीं—॥ २५॥ 'लोकाभिराम बलरामजी! महाबाहो! मैं आपका पराक्रम भूल गयी थी। जगत्पते! अब मैं जान गयी कि आपके अंशमात्र शेषजी इस सारे जगत्को धारण करते हैं॥ २६॥ भगवन्! आप परम ऐश्वर्यशाली हैं। आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण ही मुझसे यह अपराध बन गया है। सर्वस्वरूप भक्तवत्सल! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी भूल-चूक क्षमा कीजिये, मुझे छोड़ दीजिये'॥ २७॥

अब यमुनाजीकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान्

बलरामजीने उन्हें क्षमा कर दिया और फिर जैसे गजराज हथिनियोंके साथ क्रीडा करता है, वैसे ही वे गोपियोंके साथ जलक्रीडा करने लगे॥ २८॥ जब वे यथेष्ट जल-विहार करके यमुनाजीसे बाहर निकले, तब लक्ष्मीजीने उन्हें नीलाम्बर, बहुमूल्य आभूषण और सोनेका सुन्दर हार दिया॥ २९॥ बलरामजीने नीले वस्त्र पहन लिये और सोनेकी माला गलेमें डाल ली। वे अङ्गराग लगाकर, सुन्दर भूषणोंसे विभूषित होकर इस प्रकार शोभायमान हुए मानो इन्द्रका श्वेतवर्ण ऐरावत हाथी हो॥ ३०॥ परीक्षित्! यमुनाजी अब भी बलरामजीके खींचे हुए मार्गसे बहती हैं और वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो अनन्तशक्ति भगवान् बलरामजीका यश-गान कर रही हों॥ ३१॥ बलरामजीका चित्त व्रजवासिनी गोपियोंके माधुर्यसे इस प्रकार मुग्ध हो गया कि उन्हें समयका कुछ ध्यान ही न रहा, बहुत-सी रात्रियाँ एक रातके समान व्यतीत हो गयीं। इस प्रकार बलरामजी व्रजमें विहार करते रहे॥ ३२॥

छाछठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् बलरामजी नन्दबाबाके व्रजमें गये हुए थे, तब पीछेसे करूष देशके अज्ञानी राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजकर यह कहलाया कि 'भगवान् वासुदेव मैं हूँ'॥ १॥ मूर्खलोग उसे बहकाया करते थे कि 'आप ही भगवान् वासुदेव हैं और जगत्की रक्षाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।' इसका फल यह हुआ कि वह मूर्ख अपनेको ही भगवान् मान बैठा॥ २॥ जैसे बच्चे आपसमें खेलते समय किसी बालकको ही राजा मान लेते हैं और वह राजाकी तरह उनके साथ व्यवहार करने लगता है, वैसे ही मन्दमति अज्ञानी पौण्ड्रकने अचिन्त्यगति भगवान् श्रीकृष्णकी लीला और रहस्य न जानकर द्वारकामें उनके पास दूत भेज दिया॥ ३॥ पौण्ड्रकका दूत द्वारका आया और राजसभामें बैठे हुए कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उसने अपने राजाका यह सन्देश कह सुनाया—॥ ४॥ 'एकमात्र मैं ही वासुदेव हूँ। दूसरा कोई नहीं है। प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो॥ ५॥ यदुवंशी! तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण कर रक्खे हैं। उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आओ और यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार न हो, तो मुझसे युद्ध करो'॥ ६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मन्दमति पौण्ड्रककी यह बहक सुनकर उग्रसेन आदि सभासद् जोर-जोरसे हँसने लगे॥ ७॥ उन लोगोंकी हँसी समाप्त होनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'तुम जाकर अपने राजासे कह देना कि 'रे मूढ़! मैं अपने चक्र आदि चिह्न यों नहीं छोड़ूँगा। इन्हें मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुझपर ही नहीं, तेरे उन सब साथियोंपर भी, जिनके बहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा है। उस समय मूर्ख! तू अपना मुँह छिपाकर—औंधे मुँह गिरकर चील, गीध, बटेर आदि मांसभोजी पक्षियोंसे घिरकर सो जायगा और तू मेरा शरणदाता नहीं, उन कुत्तोंकी शरण होगा, जो तेरा मांस चींथ-चींथकर खा जायँगे॥ ८-९॥ परीक्षित्! भगवान्का यह तिरस्कारपूर्ण संवाद लेकर पौण्ड्रकका दूत अपने स्वामीके पास गया और उसे कह सुनाया। इधर भगवान् श्रीकृष्णने भी रथपर सवार होकर काशीपर चढ़ाई कर दी। (क्योंकि वह करूषका राजा उन दिनों वहीं अपने मित्र काशिराजके पास रहता था)॥ १०॥

भगवान् श्रीकृष्णके आक्रमणका समाचार पाकर महारथी पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ

अ० ६६] * दशम स्कन्ध * ७५५

बलरामजीने उन्हें क्षमा कर दिया और फिर जैसे गजराज हथिनियोंके साथ क्रीडा करता है, वैसे ही वे गोपियोंके साथ जलक्रीडा करने लगे॥ २८॥ जब वे यथेष्ट जल-विहार करके यमुनाजीसे बाहर निकले, तब लक्ष्मीजीने उन्हें नीलाम्बर, बहुमूल्य आभूषण और सोनेका सुन्दर हार दिया॥ २९॥ बलरामजीने नीले वस्त्र पहन लिये और सोनेकी माला गलेमें डाल ली। वे अङ्गराग लगाकर, सुन्दर भूषणोंसे विभूषित होकर इस प्रकार शोभायमान हुए मानो इन्द्रका श्वेतवर्ण ऐरावत हाथी हो॥ ३०॥ परीक्षित्! यमुनाजी अब भी बलरामजीके खींचे हुए मार्गसे बहती हैं और वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो अनन्तशक्ति भगवान् बलरामजीका यश-गान कर रही हों॥ ३१॥ बलरामजीका चित्त व्रजवासिनी गोपियोंके माधुर्यसे इस प्रकार मुग्ध हो गया कि उन्हें समयका कुछ ध्यान ही न रहा, बहुत-सी रात्रियाँ एक रातके समान व्यतीत हो गयीं। इस प्रकार बलरामजी व्रजमें विहार करते रहे॥ ३२॥

छाछठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् बलरामजी नन्दबाबाके व्रजमें गये हुए थे, तब पीछेसे करूष देशके अज्ञानी राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजकर यह कहलाया कि 'भगवान् वासुदेव मैं हूँ'॥ १॥ मूर्खलोग उसे बहकाया करते थे कि 'आप ही भगवान् वासुदेव हैं और जगत्की रक्षाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।' इसका फल यह हुआ कि वह मूर्ख अपनेको ही भगवान् मान बैठा॥ २॥ जैसे बच्चे आपसमें खेलते समय किसी बालकको ही राजा मान लेते हैं और वह राजाकी तरह उनके साथ व्यवहार करने लगता है, वैसे ही मन्दमति अज्ञानी पौण्ड्रकने अचिन्त्यगति भगवान् श्रीकृष्णकी लीला और रहस्य न जानकर द्वारकामें उनके पास दूत भेज दिया॥ ३॥ पौण्ड्रकका दूत द्वारका आया और राजसभामें बैठे हुए कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उसने अपने राजाका यह सन्देश कह सुनाया—॥ ४॥ 'एकमात्र मैं ही वासुदेव हूँ। दूसरा कोई नहीं है। प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो॥ ५॥ यदुवंशी! तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण कर रक्खे हैं। उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आओ और यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार न हो, तो मुझसे युद्ध करो'॥ ६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मन्दमति पौण्ड्रककी यह बहक सुनकर उग्रसेन आदि सभासद् जोर-जोरसे हँसने लगे॥ ७॥ उन लोगोंकी हँसी समाप्त होनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'तुम जाकर अपने राजासे कह देना कि 'रे मूढ़! मैं अपने चक्र आदि चिह्न यों नहीं छोड़ूँगा। इन्हें मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुझपर ही नहीं, तेरे उन सब साथियोंपर भी, जिनके बहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा है। उस समय मूर्ख! तू अपना मुँह छिपाकर—औंधे मुँह गिरकर चील, गीध, बटेर आदि मांसभोजी पक्षियोंसे घिरकर सो जायगा और तू मेरा शरणदाता नहीं, उन कुत्तोंकी शरण होगा, जो तेरा मांस चींथ-चींथकर खा जायँगे॥ ८-९॥ परीक्षित्! भगवान्का यह तिरस्कारपूर्ण संवाद लेकर पौण्ड्रकका दूत अपने स्वामीके पास गया और उसे कह सुनाया। इधर भगवान् श्रीकृष्णने भी रथपर सवार होकर काशीपर चढ़ाई कर दी। (क्योंकि वह करूषका राजा उन दिनों वहीं अपने मित्र काशिराजके पास रहता था)॥ १०॥

भगवान् श्रीकृष्णके आक्रमणका समाचार पाकर महारथी पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ

शीघ्र ही नगरसे बाहर निकल आया॥ ११॥ काशीका राजा पौण्ड्रकका मित्र था। अतः वह भी उसकी सहायता करनेके लिये तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके पीछे-पीछे आया। परीक्षित्! अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकको देखा॥ १२॥ पौण्ड्रकने भी शङ्ख, चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्गधनुष और श्रीवत्सचिह्न आदि धारण कर रक्खे थे। उसके वक्षःस्थलपर बनावटी कौस्तुभमणि और वनमाला भी लटक रही थी॥ १३॥ उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रखे थे और रथकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न भी लगा रखा था। उसके सिरपर अमूल्य मुकुट था और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे॥ १४॥ उसका यह सारा-का-सारा वेष बनावटी था, मानो कोई अभिनेता रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो। उसकी वेष-भूषा अपने समान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे॥ १५॥ अब शत्रुओंने भगवान् श्रीकृष्णपर त्रिशूल, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया॥ १६॥ प्रलयके समय जिस प्रकार आग सभी प्रकारके प्राणियोंको जला देती है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने भी गदा, तलवार, चक्र और बाण आदि शस्त्रास्त्रोंसे पौण्ड्रक तथा काशिराजके हाथी, रथ, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेनाको तहस-नहस कर दिया॥ १७॥ वह रणभूमि भगवान्के चक्रसे खण्ड-खण्ड हुए रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे और ऊँटोंसे पट गयी। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह भूतनाथ शङ्करकी भयङ्कर क्रीडास्थली हो। उसे देख-देखकर शूरवीरोंका उत्साह और भी बढ़ रहा था॥ १८॥

अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकसे कहा—'रे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा कहलाया था कि मेरे चिह्न अस्त्र-शस्त्रादि छोड़ दो। सो अब मैं उन्हें तुझपर छोड़ रहा हूँ॥ १९॥ तूने झूठमूठ मेरा नाम रख लिया है। अतः मूर्ख! अब मैं तुझसे उन नामोंको भी छुड़ाकर रहूँगा। रही तेरे शरणमें आनेकी बात; सो यदि मैं तुझसे युद्ध न कर सकूँगा तो तेरी शरण ग्रहण करूँगा'॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार पौण्ड्रकका तिरस्कार करके अपने तीखे बाणोंसे उसके रथको तोड़-फोड़ डाला और चक्रसे उसका सिर वैसे ही उतार लिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पहाड़की चोटियोंको उड़ा दिया था॥ २१॥ इसी प्रकार भगवान्ने अपने बाणोंसे काशिनरेशका सिर भी धड़से ऊपर उड़ाकर काशीपुरीमें गिरा दिया, जैसे वायु कमलका पुष्प गिरा देती है॥ २२॥ इस प्रकार अपने साथ डाह करनेवाले पौण्ड्रकको और उसके सखा काशिनरेशको मारकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी राजधानी द्वारकामें लौट आये। उस समय सिद्धगण भगवान्की अमृतमयी कथाका गान कर रहे थे॥ २३॥ परीक्षित्! पौण्ड्रक भगवान्के रूपका, चाहे वह किसी भावसे हो, सदा चिन्तन करता रहता था। इससे उसके सारे बन्धन कट गये। वह भगवान्का बनावटी वेष धारण किये रहता था, इससे बार-बार उसीका स्मरण होनेके कारण वह भगवान्के सारूप्यको ही प्राप्त हुआ॥ २४॥

इधर काशीमें राजमहलके दरवाजेपर एक कुण्डलमण्डित मुण्ड गिरा देखकर लोग तरह-तरहका सन्देह करने लगे और सोचने लगे कि 'यह क्या है, यह किसका सिर है?'॥ २५॥ जब यह मालूम हुआ कि वह तो काशिनरेशका ही सिर है, तब रानियाँ, राजकुमार, राजपरिवारके लोग तथा नागरिक रो-रोकर विलाप करने लगे—'हा नाथ! हा राजन्! हाय-हाय! हमारा तो सर्वनाश हो गया'॥ २६॥ काशिनरेशका पुत्र था सुदक्षिण। उसने अपने पिताका अन्त्येष्टि-संस्कार करके मन-ही-मन यह निश्चय किया कि अपने पितृघातीको मारकर ही मैं पिताके ऋणसे उऋण हो सकूँगा। निदान वह अपने कुलपुरोहित और आचार्योंके साथ अत्यन्त एकाग्रतासे भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा॥ २७-२८॥ काशी नगरीमें उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने वर देनेको कहा। सुदक्षिणने यह अभीष्ट वर माँगा कि मुझे मेरे पितृघातीके वधका उपाय बतलाइये॥ २९॥ भगवान् शङ्करने कहा—'तुम ब्राह्मणोंके साथ मिलकर यज्ञके देवता ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्निकी अभिचारविधिसे आराधना करो। इससे वह अग्नि प्रमथगणोंके साथ प्रकट होकर यदि ब्राह्मणोंके

७५६ * श्रीमद्भागवत * [अ० ६६

शीघ्र ही नगरसे बाहर निकल आया॥ ११॥ काशीका राजा पौण्ड्रकका मित्र था। अतः वह भी उसकी सहायता करनेके लिये तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके पीछे-पीछे आया। परीक्षित्! अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकको देखा॥ १२॥ पौण्ड्रकने भी शङ्ख, चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्गधनुष और श्रीवत्सचिह्न आदि धारण कर रक्खे थे। उसके वक्षःस्थलपर बनावटी कौस्तुभमणि और वनमाला भी लटक रही थी॥ १३॥ उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रखे थे और रथकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न भी लगा रखा था। उसके सिरपर अमूल्य मुकुट था और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे॥ १४॥ उसका यह सारा-का-सारा वेष बनावटी था, मानो कोई अभिनेता रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो। उसकी वेष-भूषा अपने समान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे॥ १५॥ अब शत्रुओंने भगवान् श्रीकृष्णपर त्रिशूल, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया॥ १६॥ प्रलयके समय जिस प्रकार आग सभी प्रकारके प्राणियोंको जला देती है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने भी गदा, तलवार, चक्र और बाण आदि शस्त्रास्त्रोंसे पौण्ड्रक तथा काशिराजके हाथी, रथ, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेनाको तहस-नहस कर दिया॥ १७॥ वह रणभूमि भगवान्के चक्रसे खण्ड-खण्ड हुए रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे और ऊँटोंसे पट गयी। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह भूतनाथ शङ्करकी भयङ्कर क्रीडास्थली हो। उसे देख-देखकर शूरवीरोंका उत्साह और भी बढ़ रहा था॥ १८॥

अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकसे कहा—'रे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा कहलाया था कि मेरे चिह्न अस्त्र-शस्त्रादि छोड़ दो। सो अब मैं उन्हें तुझपर छोड़ रहा हूँ॥ १९॥ तूने झूठमूठ मेरा नाम रख लिया है। अतः मूर्ख! अब मैं तुझसे उन नामोंको भी छुड़ाकर रहूँगा। रही तेरे शरणमें आनेकी बात; सो यदि मैं तुझसे युद्ध न कर सकूँगा तो तेरी शरण ग्रहण करूँगा'॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार पौण्ड्रकका तिरस्कार करके अपने तीखे बाणोंसे उसके रथको तोड़-फोड़ डाला और चक्रसे उसका सिर वैसे ही उतार लिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पहाड़की चोटियोंको उड़ा दिया था॥ २१॥ इसी प्रकार भगवान्ने अपने बाणोंसे काशिनरेशका सिर भी धड़से ऊपर उड़ाकर काशीपुरीमें गिरा दिया, जैसे वायु कमलका पुष्प गिरा देती है॥ २२॥ इस प्रकार अपने साथ डाह करनेवाले पौण्ड्रकको और उसके सखा काशिनरेशको मारकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी राजधानी द्वारकामें लौट आये। उस समय सिद्धगण भगवान्की अमृतमयी कथाका गान कर रहे थे॥ २३॥ परीक्षित्! पौण्ड्रक भगवान्के रूपका, चाहे वह किसी भावसे हो, सदा चिन्तन करता रहता था। इससे उसके सारे बन्धन कट गये। वह भगवान्का बनावटी वेष धारण किये रहता था, इससे बार-बार उसीका स्मरण होनेके कारण वह भगवान्के सारूप्यको ही प्राप्त हुआ॥ २४॥

इधर काशीमें राजमहलके दरवाजेपर एक कुण्डलमण्डित मुण्ड गिरा देखकर लोग तरह-तरहका सन्देह करने लगे और सोचने लगे कि 'यह क्या है, यह किसका सिर है?'॥ २५॥ जब यह मालूम हुआ कि वह तो काशिनरेशका ही सिर है, तब रानियाँ, राजकुमार, राजपरिवारके लोग तथा नागरिक रो-रोकर विलाप करने लगे—'हा नाथ! हा राजन्! हाय-हाय! हमारा तो सर्वनाश हो गया'॥ २६॥ काशिनरेशका पुत्र था सुदक्षिण। उसने अपने पिताका अन्त्येष्टि-संस्कार करके मन-ही-मन यह निश्चय किया कि अपने पितृघातीको मारकर ही मैं पिताके ऋणसे उऋण हो सकूँगा। निदान वह अपने कुलपुरोहित और आचार्योंके साथ अत्यन्त एकाग्रतासे भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा॥ २७-२८॥ काशी नगरीमें उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने वर देनेको कहा। सुदक्षिणने यह अभीष्ट वर माँगा कि मुझे मेरे पितृघातीके वधका उपाय बतलाइये॥ २९॥ भगवान् शङ्करने कहा—'तुम ब्राह्मणोंके साथ मिलकर यज्ञके देवता ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्निकी अभिचारविधिसे आराधना करो। इससे वह अग्नि प्रमथगणोंके साथ प्रकट होकर यदि ब्राह्मणोंके

अभक्तपर प्रयोग करोगे तो वह तुम्हारा संकल्प सिद्ध करेगा।' भगवान् शङ्करकी ऐसी आज्ञा प्राप्त करके सुदक्षिणने अनुष्ठानके उपयुक्त नियम ग्रहण किये और वह भगवान् श्रीकृष्णके लिये अभिचार (मारणका पुरश्चरण) करने लगा॥ ३०-३१॥ अभिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्डसे अति भीषण अग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसके केश और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थे। आँखोंसे अंगारे बरस रहे थे॥ ३२॥ उग्र दाढ़ों और टेढ़ी भृकुटियोंके कारण उसके मुखसे क्रूरता टपक रही थी। वह अपनी जीभसे मुँहके दोनों कोने चाट रहा था। शरीर नंग-धड़ंग था। हाथमें त्रिशूल लिये हुए था, जिसे वह बार-बार घुमाता जाता था और उसमेंसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं॥ ३३॥ ताड़के पेड़के समान बड़ी-बड़ी टाँगें थीं। वह अपने वेगसे धरतीको कँपाता हुआ और ज्वालाओंसे दसों दिशाओंको दग्ध करता हुआ द्वारकाकी ओर दौड़ा और बात-की-बातमें द्वारकाके पास जा पहुँचा। उसके साथ बहुत-से भूत भी थे॥ ३४॥ उस अभिचारकी आगको बिल्कुल पास आयी हुई देख द्वारकावासी वैसे ही डर गये, जैसे जंगलमें आग लगनेपर हरिन डर जाते हैं॥ ३५॥ वे लोग भयभीत होकर भगवान्‌के पास दौड़े हुए आये; भगवान् उस समय सभामें चौसर खेल रहे थे, उन लोगोंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'तीनों लोकोंके एकमात्र स्वामी! द्वारका नगरी इस आगसे भस्म होना चाहती है। आप हमारी रक्षा कीजिये। आपके सिवा इसकी रक्षा और कोई नहीं कर सकता'॥ ३६॥ शरणागतवत्सल भगवान्‌ने देखा कि हमारे स्वजन भयभीत हो गये हैं और पुकार-पुकारकर विकलताभरे स्वरसे हमारी प्रार्थना कर रहे हैं; तब उन्होंने हँसकर कहा—'डरो मत, मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगा'॥ ३७॥

परीक्षित्! भगवान् सबके बाहर-भीतरकी जाननेवाले हैं। वे जान गये कि यह काशीसे चली हुई माहेश्वरी कृत्या है। उन्होंने उसके प्रतीकारके लिये अपने पास ही विराजमान चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी॥ ३८॥ भगवान् मुकुन्दका प्यारा अस्त्र सुदर्शनचक्र कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान जाज्वल्यमान है। उसके तेजसे आकाश, दिशाएँ और अन्तरिक्ष चमक उठे और अब उसने उस अभिचार-अग्निको कुचल डाला॥ ३९॥ भगवान् श्रीकृष्णके अस्त्र सुदर्शनचक्रकी शक्तिसे कृत्यारूप आगका मुँह टूट-फूट गया, उसका तेज नष्ट हो गया, शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँसे लौटकर काशी आ गयी तथा उसने ऋत्विज आचार्योंके साथ सुदक्षिणको जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार उसका अभिचार उसीके विनाशका कारण हुआ॥ ४०॥ कृत्याके पीछे-पीछे सुदर्शनचक्र भी काशी पहुँचा। काशी बड़ी विशाल नगरी थी। वह बड़ी-बड़ी अटारियों, सभाभवन, बाजार, नगरद्वार, द्वारोंके शिखर, चहारदीवारियों, खजाने, हाथी, घोड़े, रथ और अन्नोंके गोदामसे सुसज्जित थी। भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शनचक्रने सारी काशीको जलाकर भस्म कर दिया और फिर वह परमानन्दमयी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया॥ ४१-४२॥

जो मनुष्य पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्रको एकाग्रताके साथ सुनता या सुनाता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है॥ ४३॥

अ० ६६] * दशम स्कन्ध * ७५७

अभक्तपर प्रयोग करोगे तो वह तुम्हारा संकल्प सिद्ध करेगा।' भगवान् शङ्करकी ऐसी आज्ञा प्राप्त करके सुदक्षिणने अनुष्ठानके उपयुक्त नियम ग्रहण किये और वह भगवान् श्रीकृष्णके लिये अभिचार (मारणका पुरश्चरण) करने लगा॥ ३०-३१॥ अभिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्डसे अति भीषण अग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसके केश और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थे। आँखोंसे अंगारे बरस रहे थे॥ ३२॥ उग्र दाढ़ों और टेढ़ी भृकुटियोंके कारण उसके मुखसे क्रूरता टपक रही थी। वह अपनी जीभसे मुँहके दोनों कोने चाट रहा था। शरीर नंग-धड़ंग था। हाथमें त्रिशूल लिये हुए था, जिसे वह बार-बार घुमाता जाता था और उसमेंसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं॥ ३३॥ ताड़के पेड़के समान बड़ी-बड़ी टाँगें थीं। वह अपने वेगसे धरतीको कँपाता हुआ और ज्वालाओंसे दसों दिशाओंको दग्ध करता हुआ द्वारकाकी ओर दौड़ा और बात-की-बातमें द्वारकाके पास जा पहुँचा। उसके साथ बहुत-से भूत भी थे॥ ३४॥ उस अभिचारकी आगको बिल्कुल पास आयी हुई देख द्वारकावासी वैसे ही डर गये, जैसे जंगलमें आग लगनेपर हरिन डर जाते हैं॥ ३५॥ वे लोग भयभीत होकर भगवान्‌के पास दौड़े हुए आये; भगवान् उस समय सभामें चौसर खेल रहे थे, उन लोगोंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'तीनों लोकोंके एकमात्र स्वामी! द्वारका नगरी इस आगसे भस्म होना चाहती है। आप हमारी रक्षा कीजिये। आपके सिवा इसकी रक्षा और कोई नहीं कर सकता'॥ ३६॥ शरणागतवत्सल भगवान्‌ने देखा कि हमारे स्वजन भयभीत हो गये हैं और पुकार-पुकारकर विकलताभरे स्वरसे हमारी प्रार्थना कर रहे हैं; तब उन्होंने हँसकर कहा—'डरो मत, मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगा'॥ ३७॥

परीक्षित्! भगवान् सबके बाहर-भीतरकी जाननेवाले हैं। वे जान गये कि यह काशीसे चली हुई माहेश्वरी कृत्या है। उन्होंने उसके प्रतीकारके लिये अपने पास ही विराजमान चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी॥ ३८॥ भगवान् मुकुन्दका प्यारा अस्त्र सुदर्शनचक्र कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान जाज्वल्यमान है। उसके तेजसे आकाश, दिशाएँ और अन्तरिक्ष चमक उठे और अब उसने उस अभिचार-अग्निको कुचल डाला॥ ३९॥ भगवान् श्रीकृष्णके अस्त्र सुदर्शनचक्रकी शक्तिसे कृत्यारूप आगका मुँह टूट-फूट गया, उसका तेज नष्ट हो गया, शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँसे लौटकर काशी आ गयी तथा उसने ऋत्विज आचार्योंके साथ सुदक्षिणको जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार उसका अभिचार उसीके विनाशका कारण हुआ॥ ४०॥ कृत्याके पीछे-पीछे सुदर्शनचक्र भी काशी पहुँचा। काशी बड़ी विशाल नगरी थी। वह बड़ी-बड़ी अटारियों, सभाभवन, बाजार, नगरद्वार, द्वारोंके शिखर, चहारदीवारियों, खजाने, हाथी, घोड़े, रथ और अन्नोंके गोदामसे सुसज्जित थी। भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शनचक्रने सारी काशीको जलाकर भस्म कर दिया और फिर वह परमानन्दमयी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया॥ ४१-४२॥

जो मनुष्य पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्रको एकाग्रताके साथ सुनता या सुनाता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है॥ ४३॥